प्रकाशक
भार्गव पुस्तकालय, गायघाट,
बनारस सिटी।

मुद्रक
केशव प्रसाद खत्री,
इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स लि०,
इलाहाबाद।

भूमिका

किसी मौलिक लेखक की कृति की भूमिका लिखना सरल काम नहीं, और न मैं भूमिका लिखने के व्यापार में अपने को सिद्ध-हस्त ही पाता हूँ। परन्तु जब एक मित्र, लेखक के नाते, मुझे अपनी रचना पर अपने कुछ विचार प्रकट करने का आग्रह करता है तो मै उसकी आज्ञा का पालन अपना परम सौभाग्य समझता हूँ। इसी विचार से प्रेरित होकर मै आज श्री व्यथितहृदय जी के प्रस्तुत 'विवाह की कहानियाँ' नामक सग्रह पर कुछ निवेदन करने का साहस करता हूँ।

श्री व्यथित हृदय जी साहित्य क्षेत्र के अपरिचित व्यक्ति नहीं। इनकी प्रौढ़ लेखनी से प्रसूत अनेक रचनाएँ पाठकों का यथेष्ट मनोरंजन करती हुई, सर्वमत मे लोक प्रिय हो चुकी हैं। श्री व्यथित हृदय जी की प्रतिभा, सुरुचि और साहित्य सेवा से हिन्दी के लेखक, पाठक, किंवा हितैषी भलीभाति परिचित हैं। उनका परिचय देना पुनुरुक्ति और अतिशयोक्ति का अपराध करना होगा।

हिन्दी में कहानी साहित्य यद्यपि काफी सपन्न हो चला है, फिर भी अभी अन्य देशों को देखते हुए उसे बहुत कुछ सँवारना होगा। कहानी साहित्य का भी वर्गीकरण कर अनेक विषयों पर, अनेक दृष्टि से, कहानियो की सृष्टि करनी होगी। हमें यह देखकर अत्यन्त प्रसन्नता और सतोष हो रहा है कि श्री व्यथित हृदय जी ने जीवन के एक अत्यन्त महत्त्व पूर्ण विषय की ओर लक्ष्य कर अपनी लेखनी उठाई है। 'विवाह' प्राय: सभी देशों में मानव

जीवन का एक अत्यन्त समस्या पूर्ण, महत्व पूर्ण और अनिवार्य्य विषय है। हमारे देश में जहाँ हमारे सम्मुख जीवन की अनेक समस्याएँ उलझी हुई हैं, वहाँ 'विवाह' एक ऐसी समस्या है जिसके उलझन में पड़ कर हमारा जीवन ही संकटमय और दुखद हो रहा है। कारण स्पष्ट है कि अनेक रूढ़ियों और अंध विश्वासों के कारण जब हमारा राष्ट्रीय जीवन ही विकास शील, प्रगति शील नहीं है तो हम अपनी घरेलू समस्याओं में ही फँस कर जीवन भर उसमें उलझे रह जाते हैं।

ऐसे महत्व पूर्ण विषय 'विवाह' पर श्री व्यथित हृदय जी ने कहानियाँ लिखकर उनके बहाने विवाह संबंधी अनेक समस्याओं पर प्रकाश डाल कर साहित्य ही नहीं, वरन् समाज का बड़ा ही हितकर कार्य किया है। हम इस हेतु हृदय से उन्हें बधाई दिये बिना नहीं रह सकते।

कहानी-कला की दृष्टि से जब हम इस संग्रह की रचनाओं पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें श्री व्यथित हृदय जी की लेखनी का और भी कायल होना पड़ता है। कहानी के रूप मे उन्होंने बड़े ही नाजुक विषय का बड़ी सफलता से प्रतिपादन किया है। उनकी रचना में रोचकता भरी पड़ी है। भाषा मँजी हुई, विचार सुलझे हुये, कहानी में किसी प्रकार की खोट नहीं। यदि हम यहाँ एक एक कहानी की आलोचना करने लगें तो शायद यह अवसर उसके लिए उपयुक्त न होगा। परन्तु संक्षेप में यह कहना अनुचित न होगा कि उनकी एक एक कहानी हमारे वर्तमान समाज की विवाह विषयक एक एक समस्या का स्वाभाविक और सच्चा चित्र है। आवश्यकता है ऐसे ही लेखकों और कलाकारों की जो सोते हुए समाज को जगा सकें। कला-कला के नाम पर लिखी अथवा यथार्थवाद

के आदर्शा वाली रचनाओं की न तो इस समय भारत को जरूरत है, और न हम उसके कायल ही हैं। साहित्य जिसमें मानव जाति का कल्याण हो सके वही हमें चाहिए। जिससे मानव जाति ऊपर उठे, जो मनुष्य समाज का कल्याण कर सके वही सत्य है, वही शिव और वही सुन्दर भी है। भगवान व्यास कहते हैं—

"सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत्।
यद्भूत हितमत्यन्तं एतत्सत्यं मतं मम॥"

हमें पूर्ण विश्वास है श्री व्यथितहृदय जी की प्रस्तुत रचना 'विवाह की कहानियां' लोकप्रिय होगी और हम आशा करते हैं लेखक महोदय इस प्रकार की भारतीय समाज की अन्य समस्याओं पर भी अपनी लेखनी उठाने की कृपा करेंगे।

१७-४-४६ —"श्री भारतीय"

अन्तर्वेदी, नयाकटरा
प्रयाग

समर्पण

उसको

जो मुझे सब से अधिक प्रिय लगता है

दो शब्द

विवाह मानव जीवन का एक मधुर उद्गम-सा है। मनुष्य, चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष, यहीं से अपना जीवन प्रारंभ करता है। जीवन का यह उद्गम जितना मधुर और जितना प्रिय है, उतना ही महत्त्व पूर्ण और उपादेय भी है। दूसरे शब्दों में यदि यों कहें तो अधिक उपयुक्त होगा, कि इसका सारा माधुर्य, और इसकी सारी प्रियता इसकी उपादेयता के ही ज्ञान पर निर्भर है। अतः जीवन को इसके मधुर रसों से अभिषिक्त करने के लिये प्रत्येक स्त्री-पुरुष को इसके उस भाग से पूर्णतया परिचित होना आवश्यक है, जो अधिक महत्व पूर्ण और उपादेय है।

पाश्चात्य और यवन सभ्यता के कारण आज हमारे जीवन के अन्यान्य हिमकर-से शुभ्र अंगो में जैसे अनेक श्याम धब्बे पड़ गये हैं, उसी प्रकार हमारे जीवन का यह सबसे अधिक मधुर और प्रिय भाग भी आज कलंकित बनकर समस्या पूर्ण बन गया है। इन कहानियों में मैंने उन्हीं समस्याओं के चित्रांकन का प्रयत्न किया है। मुझे रंचमात्र भी दुख न होगा, यदि कहानी कला के मर्मज्ञों को कहानी कला की दृष्टि से इन कहानियों में 'कुछ' न मिले; किन्तु मैं इसे अपनी लेखनी का सबसे बड़ा अभाव मानूँगा, यदि इन कहानियों में विवाह की वर्तमान समस्याओं के चित्रण में कुछ भी कोर कसर रह गई हो। मैं पाठकों, आचार्यों, और कलाकारों से इसी कसौटी के आधार पर घृणा और प्रेम की यांचा करता हूँ। आशा है सुहृद् पाठक इन कहानियों को पढ़ते समय इस बात को न भूलेंगे।

श्रमिक निवास,
२३२ ए कटरा, प्रयाग।
१६—४—४६

विनीत
—व्यथितहृदय

कहानियों की सूची

—०:०:०—

विवाह की कहानियाँ

भूल न जाना

जाड़े के दिन थे। सन्ध्या हो रही थी। सूर्य की किरणें, जैसे हिम के भय से क्षितिज की ओट मे छिपती जा रही थी। पशु, पक्षी, और मनुष्य, सभी अपने-अपने को शीत से बचाने के लिए विभिन्न साधनो का अंचल पकड़ रहे थे। पशु कन्दरा खोज रहे थे, और पक्षी, अपना घोसला। मनुष्य का तो कुछ कहना ही नहीं ? उसने तो पशु-पक्षियों से कहीं अधिक ऊँचे ज्ञान के आसन पर बैठ कर अपने शरीर की रक्षा के लिये, या यों कहिये कि अपने शरीर को सुख पहुँचाने के लिये ज्ञान के अनेक ताने-बाने बुन रक्खे हैं।

पर इन्ही मनुष्यों मे बहुत से ऐसे भी होते है, जो पशु-पक्षियों से भी कहीं अधिक असहाय जीवन बिताते हैं। जाड़े के दिनों में जब रात मे हिम बरसने लगता है, और पशु कन्दरा खोज लेते है, पक्षी घोसला, तथा मनुष्य ऊनी सूती कंबलो और लिहाफो में

लिपटा हुआ सुख की नींद सोता है, तब वे खुले हुए आकाश की छत के नीचे, फटे कंबल या टाट का टुकड़ा अपने शरीर पर डाल कर, आह-ऊह करते हुये सड़क की पटरियों पर पड़े रहते हैं। उनकी आह-ऊह से आकाश के तारे तक धुँधले पड़ जाते हैं, प्रकृति सहानुभूति के टुकड़े काट-काटकर पत्तों और तिनकों पर रख देती है, पर मनुष्य? वह सभ्यता और ज्ञान की गठरी अपनी बगल में दबाये हुये अपनी राह पर चला ही जाता है, और उन्हें देखते हुये भी उनकी ओर नहीं देखता।

पर अंजना जाड़े की उस चूती हुई सन्ध्या में, जब वह अपने पिता के साथ घूम कर लौट रही थी, उसकी ओर से अपनी दृष्टि हटा न सकी। उसके पिता उससे कुछ दूर चले गये, पर वह सड़क की पटरी पर सिकुड़ कर पड़े हुए उस वृद्ध की ओर देखती ही रह गई। जैसे उस वृद्ध की सूखी हड्डियों में कोई लसदार चीज़ हो, और अंजना के आँखों की पखड़ियाँ उसी में चिपक गई हों। अंजना उसे देखते ही देखते उसके पास जाकर बोल उठी—बाबा, तुम्हें जाड़ा लग रहा है?

वृद्ध ने कुछ उत्तर न दिया। उसने फटे टाट के टुकड़े से अपना मुँह बाहर निकाल कर अंजना की ओर देखा। अंजना को उसके नेत्रों में न जाने क्या झलका? अंजना ने झट अपना लंबा कोट उतार कर उसके ऊपर डाल दिया। अंजना के पिता, जो उससे कुछ दूर निकल गये थे, पीछे की ओर देखकर उसी समय बोल उठे—अंजना! यह क्या? यह क्या?

पर अंजना कुछ न बोली। वह अपना लंबा कोट वृद्ध के ऊपर डाल कर कुछ देर तक विस्मृतावस्था में खड़ी-खड़ी उसी ओर देखती रही। फिर जब सजग हुई, तब उसने देखा कि उसके आस-पास कुछ स्त्री-पुरुष खड़े हैं। कोई कह रहा है—बड़ी अच्छी लड़की है, कोई कह रहा है—बड़ी होने पर संसार में अवश्य नाम पैदा करेगी। अंजना प्रशंसा के इन बड़े-बड़े शब्दों को सुनने के लिये तैयार न थी। जैसे प्रशंसा के ये बड़े-बड़े शब्द उसे एक बहुत बड़े भार की तरह ज्ञात हुये, और वह उन्हें वहीं छोड़कर चुपचाप अपने घर की ओर चल पड़ी। उसका मन कुछ उदास था, और जैसे उसके हृदय-पटल पर कुछ अंकित-सा हो गया था। रास्ते में उसके पिता ने उससे कई बार पूछा, 'अंजना तुमने अपना कोट उस वृद्ध के ऊपर क्यों डाल दिया ?' पर अंजना ने कुछ भी उत्तर न दिया।

अंजना के प्रशंसक अब उसके साथ न थे। सबके सब प्रशंसा के अपने शब्दों को उसके सुकुमार कन्धे पर रख कर अपनी अपनी राह पकड़ चुके थे। पर जलज अब भी अंजना के पीछे-पीछे चल रहा था। जब उस वृद्ध को कोट दे देने के कारण सब अंजना की प्रशंसा कर रहे थे, तब जलज भी उन्हीं के बीच में खड़ा होकर चुपचाप अंजना की ओर देख रहा था। सबके ओठ हिल रहे थे, पर जलज की आँखें। जलज बड़ी गंभीरता से अपनी आँखों की काली पुतली को मध्य में रोक कर अंजना की ओर देख रहा था। कभी कभी उसकी आँखें वृद्ध के शरीर पर

पड़े हुये कोट पर भी जा पहुंचती थीं, पर वे वहाँ अधिक देर तक न ठहर कर अंजना के पास वापस चली आती थीं। अंजना जब उस प्रशंसक जन-समूह को छोड़कर अपने घर की ओर चली, तब जलज भी उसके साथ-साथ पीछे पीछे चलने लगा।

सड़क पर बिजली की बत्तियाँ जल चुकी थीं, और बिजली बत्तियों के आस-पास, शीत की उपेक्षा करके, प्रणयी पतिंगे अपना सुमधुर संगीत सुना रहे थे। अंजना सड़क की एक पटरी में अपने पिता के साथ-साथ बस्ती की ओर जा रही थी, और जलज उसकी दाहिनी ओर से, उसी के समान गति से उसी की दिशा में जा रहा था। उसकी आँखें उसी पर लगी हुई थीं। वह इस प्रयत्न में था, कि यदि वह उसकी ओर देखती तो वह उससे पूछता कि तू कौन है जी? कहाँ रहती है? उसका रोम-रोम आकुल सा हो रहा था, कि किसी प्रकार उससे उसका परिचय हो जाय! कई बार उसने उसका ध्यान अपनी ओर खींचने का प्रयत्न किया, और इसी प्रयत्न में वह सड़क की पटरी पर ठोकर खाकर गिरते-गिरते बचा, पर अंजना से परिचय करने का उसे भरपूर अवसर न मिला। दो-एक बार अजना ने उसकी ओर देखा अवश्य, पर देखकर फिर अपनी दृष्टि खींचली। अंजना के दृष्टि-निक्षेप से जलज के बन्धन कुछ और दृढ़ हो गये; पर अंजना को कुछ पता ही न चला, कि कौन और क्यों उसकी दृष्टि के तारों में बँधा चला आ रहा है।

बस्ती अब निकट आचुकी थी, और साथ ही अब जलज की

आकुलता भी पूरे वेग से बन्धन तोड़ने लगी थी। कौन जाने बस्ती में प्रवेश करते ही यह किस ओर चली जाय, और फिर अवसर मिले या न मिले? जलज अब उसके और अधिक पास-पास होकर चलने लगा। उसने जलज की ओर देखा। इस बार उसकी दृष्टि में जलज को कुछ दिखाई पड़ा। जलज आशा से उत्साहित होकर बोल उठा—तुम्हारा वह कोट बड़ा अच्छा था जी!

अंजना ने जलज की ओर देखा। जलज उसी की वय का आठ-दस वर्ष का सौम्य बालक। अंजना की आँखें अपनी पखड़ियों पर आश्चर्य और उत्सुकता का भार लादे हुए उस पर रुक गईं। आश्चर्य नहीं, अंजना जलज की बातों का कुछ उत्तर देती, किन्तु इसी समय जलज के स्वर से अंजना के पिता उसकी ओर देख उठे, और जलज की ओर देख कर फिर अंजना की ओर देखकर कह उठे—'अंजना पिछड़ क्यों गई? आ, जल्दी-जल्दी आ!'

अंजना जलज की ओर देख कर जल्दी-जल्दी अपने पिता के साथ लग गई, और बस्ती में, एक गली में घुस कर जलज के दृष्टि-पथ से ओझल हो गई। जलज देर तक गली के मोड़ पर उदास मन से खड़ा रहा। जैसे उसका कुछ खो गया हो—कुछ नहीं, बहुत कुछ!!

[२]

रात्रि में जलज जब सोया, तब उसकी अँखड़ियाँ कल्पनाओं के भार से थकी थीं। वह देर तक बहुत कुछ सोचता रहा। जैसे

सोचना उसे अधिक प्रिय लग रहा हो, और वह चाहता यह हो, कि नींद उसकी पलकों पर अपना परिधान न डाले, और उसकी आँखें इसी प्रकार बराबर विचारों के साथ चक्कर खाती—सोचती चली जायँ। पर जलज को न जाने कब नींद आ गई, और वह नींद के नन्दन में कल्पनाओं का झूला डाल कर झूलने लगा !

रात्रि के दो बज रहे थे । भीतर और बाहर, चारों ओर निस्तब्धता । जगने वाले भी चुपचाप लिहाफ मे दुबके पड़े हुये भीतर ही भीतर स्वर्ग और पाताल एक कर रहे थे। जलज ने निस्तब्धता के इस महासागर मे जैसे एक कंकरीट-सी फेंक दी। वह नींद मे ही सोया-सोया बोल पड़ा—'तुम्हारा वह कोट बड़ा अच्छा था जी !'

जलज का यह स्वर निस्तब्धता के उस महासागर मे बिलकुल कंकरीट गिरने ही के समान था। उसमे कहीं एक भी हिलोर तो न उठी। केवल जलज के पिता, जो उसके पास ही सोये हुए थे, उसके शरीर को हिलाते हुये बोल उठे—जलज ! जलज !! क्या बक रहा है ? किसका कोट अच्छा था !!

जलज के स्वप्न के तार टूट पड़े और वह जग पड़ा। उस जागृत-अवस्था मे भी, जैसे उसका स्वप्न उसकी आँखो के सामने बिखर पड़ा हो। उसे ऐसा लगा, जैसे वह सड़क की पटरी पर उस बालिका के साथ-साथ चल रहा हो, और उससे जान-पहचान करने की आकुलता में कह रहा हो, 'तुम्हारा वह कोट बड़ा

अच्छा था जी !' जलज उसके संबंध मे सोचने लगा—"वह कौन है ? कहाँ रहती है, और नाम क्या है उसका ? नाम !............ नाम उसका अंजना है । कितना अच्छा नाम है, और वह भी तो बड़ी अच्छी है । जाड़े से ठिठुरते हुये उस वृद्ध को उसने किस प्रकार उदारता से अपना कोट उतार कर दे दिया । यदि किसी प्रकार उससे जान-पहचान हो जाती ! उसके साथ खेलता, बैठकर किताबें पढ़ता और कहानियाँ कहता । कितनी अच्छी लड़की है वह !"

जलज रात भर सोचता रहा, और फिर उसे नींद न आई । प्रभात होने पर वह फिर उसी ओर गया, जिस ओर सन्ध्या-समय घूमने गया था । उसने सोचा, कदाचित् उससे वहीं भेंट हो जाय; पर उससे तो भेंट न हुई, हाँ सड़क की पटरी पर वह वृद्ध अवश्य उसका कोट ओढ़ कर पड़ा हुआ था । जलज उसके पास खड़ा होकर उसके कोट की ओर देखने लगा । जलज को ऐसा लगा, जैसे वह उस कोट मे से झाँक रही हो । जलज ने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया । अभी उसका हाथ कोट तक पहुँचा न था, कि वृद्ध सगबगा उठा । जलज ने अपना आगे वढ़ा हुआ हाथ खींच लिया, और साथ ही उसके हृदय पर एक उदासीनता भी डोल गई । जलज उदासीनता से लिपटी हुई आँखों से कुछ देर तक उस कोट की ओर देखता रहा और फिर अपने घर की ओर चल पड़ा ।

जलज के हृदय मे उस उदासीनता ने घर कर लिया । वह

बराबर अंजना के संबंध में सोचता, उसके लिये सायं-प्रातः इधर-उधर घूमने जाता, और उसे जब न पाता, तो उदास हो जाता। वर्षों बीत गये, पर अंजना की स्मृति और उसके अभाव की उदासीनता जलज के हृदय में बराबर बनी रही। जैसे उसके अन्तस्तल में अंजना की स्मृति कील-सी गड़ गई हो और समय का झंझावात भी उसे हिलाने में अपने को असमर्थ पा रहा हो।

दो वर्ष के पश्चात्, वही जाड़े के दिन थे, और दोपहर का समय। रविवार का दिन था, स्कूल में छुट्टी थी। जलज अपने कई साथियों के घर इसलिये गया, कि वह उन्हें अपने साथ लेकर अमरूद के बगीचे में अमरूद खाने के लिये जायगा। पर कोई जलज का साथ देने के लिये तैयार न हुआ। किसी किसी ने स्वयं भय से मुँह बनाकर कहा, 'ना भाई, हम न जायँगे। आज कल शहर मे बच्चे चुराने वाले आये हैं। अभी कल्ह ही हमारे पड़ोस का एक लड़का गायब हो गया है।' कोई जाने को तैयार भी हुआ तो उसके माँ-बाप ने डपट दिया। इसमें सन्देह नहीं, कि यदि जलज अपने माँ-बाप से कह कर आता तो उसे भी इस प्रकार बस्ती से बाहर निकलने की आज्ञा न मिलती; किन्तु वह तो छिप कर आया था। बच्चे चुराने वालो का नगर में आतंक होने पर भी भय उसके हृदय को बाँध न सका। साथियों का सहयोग न मिलने पर भी वह बस्ती के बाहर अमरूद के बगीचे की ओर चल पड़ा। जलज इसी प्रकार बराबर अवसर पाने पर बस्ती के बाहर, अकेले या साथियों के साथ घूमने के लिये जाया

करता था। जैसे बस्ती के बाहर उसके मन के लिये कोई प्रलोभन हो, और वही उसके मन को चुम्बक की भाँति बराबर खींचता रहता हो !!

दोपहर का समय था। नगर के बाहर, मैदान में निस्तब्धता का राज्य था। जलज आम्र की बारी के मध्य मार्ग से होता हुआ अमरूद के बगीचे की ओर बढ़ रहा था। अभी वह अमरूद के बगीचे से कुछ दूर ही पर था, कि उसे वृक्षों के झुरमुट में किसी के सिसकने की आवाज़ सुनाई पड़ी। जलज सशंकित चित्त से खड़ा हो गया, और कान लगा कर सुनने लगा। भय से उसके रोंगटे खड़े हो गये, और वह इधर-उधर देखने लगा। पर आस-पास उसे कोई दिखाई न पड़ा। जलज फिर आगे की ओर बढ़ा। अभी दो ही चार डग आगे बढ़ पाया था, कि सकरुण रुदन के साथ कोई कह उठा—"छोड़ दे मुझे, छोड़ दे !"

जलज आश्चर्य-चकित होकर इधर-उधर देखने लगा। उसके भय और आश्चर्य की सीमा न रही, जब उसने देखा कि वृक्षों के झुरमुट से जो नाला होकर गया है, कोई उसी में एक बालिका को पकड़ कर बैठा है। जलज कुछ देर तक उसी ओर बड़े ध्यान से देखता रहा, और फिर सहसा उसके मुख से निकल पड़ा—"अरे अंजना"।

जलज की आँखों के सामने शीघ्र ही एक चित्र-सा खिंच गया। उसने उस चित्र में देखा, एक शिशु अपहरण करने वाला नगर से अंजना को उठा लाया है, और इस नाले में बैठ कर भाग जाने के

लिये अवसर की बाट देख रहा है।' जलज के हृदय का कोना-कोना झनझना उठा। उसे ऐसा लगा, जैसे महाशक्ति की प्रबल आँधी बरबस उसे उसी ओर ढकेल रही हो। जलज हाथ में पत्थर का एक टुकड़ा उठाकर शीघ्र उसी ओर दौड़ पड़ा, और कुछ दूर पर खड़ा होकर उसकी ओर पत्थर तान कर बोला—'छोड़ दे शैतान उसे!'

उसने जलज की ओर तीव्र दृष्टि से देखा। उसकी आँखों में साफ-साफ जलज को राक्षस की भयानक मूर्ति दिखाई पड़ी। किन्तु जलज रंचमात्र भी विचलित न हुआ। उसके कुछ और समीप जाकर, तन कर बोला—'छोड़ता है, कि शोर मचाऊँ।'

वह उठा और जलज की ओर लपका। जलज ने खींच कर पत्थर मार दिया। पत्थर सीधा आँख के ऊपरी हिस्से में लगा और वह दूसरे हाथ से आँख पकड़े हुये दूसरी तरफ भाग कर अदृश्य हो गया। अंजना अब उठ कर खडी हो चुकी थी। अवसर मिलते ही एक बार उसके मन ने कहा, कि वह भाग जाय, पर जब उसकी दृष्टि जलज पर पड़ी, तब जैसे उसके उठे हुये पैर रुक गये। वह जलज की ओर दृष्टि गड़ा कर देखने लगी। जैसे, वह जलज में कुछ देख रही हो। जलज शीघ्र ही उसके समीप पहुँच कर बोल उठा—अंजना क्या वह तुम्हें चुरा लाया था?

अंजना ने कुछ उत्तर न दिया। वह केवल जलज की ओर देखती रही। जलज ने भी उसकी ओर देखा, और कुछ देर तक देखा। फिर अपने ही आप बोल उठा—"तुम मुझे नही पहचानती

अंजना ! वही उस दिन रात मे जब तुमने अपना कोट उस वृद्ध के ऊपर डाल दिया था, और मैंने तुमसे कहा था, कि तुम्हारा वह कोट बड़ा अच्छा था जी !"

जलज अपनी बात समाप्त कर अंजना की ओर देखने लगा। उसे आशा थी, कि अंजना कुछ बोलेगी, किन्तु अंजना के अधर न खुले। हाँ, उसकी दोनो अँखड़ियाँ विस्मय से लद गईं, और वह चकित होकर जलज की ओर देखने लगी। जलज उसे अपनी ओर देखता हुआ देख कर बोल उठा—मुझे उस दिन की बात अच्छी तरह याद है अंजना ! तुम कितनी अच्छी हो ! तुम्हारी तरह मेरे साथियो मे कोई नही है'' ' ''पर अंजना, अब चलो, यहाँ से भाग चलें। कौन जाने वह ......!

अजना और जलज, दोनों बस्ती की ओर चल पड़े। दोनो मार्ग मे आपस मे कुछ न बोले, पर उस मौनिमा मे ही दोनों आपस मे एक-दूसरे के इतने निकट हो गये, कि अब दूर रहना उन्हे अधिक खलने लगा !

[३]

सन्ध्या के पाँच बज रहे थे। जलज स्कूल से लौट कर अपनी माँ के पास बैठ कर खाना खा रहा था। वह खाना खा रहा था, पर उसका ध्यान अंजना के घर की ओर था। आज तीन दिन हो गये,जब वह अंजना के घर गया था। भला अंजना क्या सोचती होगी अपने मन मे ! पर आज खाना खा कर वह अवश्य अंजना के घर जायगा, और दो दिन न आने के लिए उससे क्षमा माँगेगा। जलज

जल्दी-जल्दी भोजन का ग्रास अपने गले के नीचे उतार रहा था।

वह खाना खा कर अभी हाथ-मुँह धो ही रहा था, कि उसके पिता नलिनीरंजन आफिस से आगये। उनकी आकृति उदास, कुछ मुरझाई हुई-सी थी। आते ही आँगन में बिछी हुई चारपाई पर, लाल फीते से बँधी हुई फाइल रखकर, बैठते हुये लंबी साँस लेकर बोल उठे—'कई वर्षों के बाद इस नगर को छोड़ते हुये बड़ा दुख हो रहा है।'

जलज की माँ, जो आँगन में बैठी-बैठी सन्ध्या के भोजन का सामान कर रही थी, नलिनीरंजन की ओर देखकर आश्चर्य के स्वर में बोल उठी—क्या हुआ ?

हुआ क्या ?—नलिनीरंजन ने दीर्घ निश्वास छोड़ते हुये कहा—कानपुर के लिये बदली हो गई है। आदेश हुआ है, कि एक सप्ताह के भीतर ही भीतर चला जाना होगा।

नलिनीरंजन कुछ गंभीर-से हो गये। स्पष्टतः उनकी आँखें उदासीनता के आवरण से ढँक गईं। वे कुछ देर तक मन ही मन सोचते रहे। फिर अपने ही आप बोल उठे—यह नौकरी भी क्या बला है ? मनुष्य किसी स्थान में बड़ी कठिनाई से प्रेम और सहानुभूति के दीपक जलाता है, पर यह नौकरी कब सोचती है ? अपने जलाये हुये दीपकों को बुझाने के लिये यह उसे विवश कर देती है। अफसोस, यहाँ जो मैंने हेल-मेल पैदा किया है, वह सब समाप्त हो जायगा !

नलिनीरंजन की बात से जलज की माँ को भी अधिक दुःख

हुआ। उसकी आँखों के सामने भी एक चित्र घूम गया, जिसमें वह देखने लगी, कि उससे मिलने-जुलने वाली सभी स्त्रियाँ उससे विलग हो रही है। वह कुछ देर तक, अपने मन मे उभरी हुई विषाद-भावना से खेलती रही। फिर नलिनीरंजन की ओर देखकर कुछ कहने ही जा रही थी, कि उसके कहने के पूर्व ही अपने पिता की बात को आश्चर्य के साथ सुनकर, जलज बोल उठा—'तो क्या यह शहर छोड़ देना पड़ेगा पिता जी !'

हाँ बेटा !—नलिनीरंजन ने चारपाई से उठते-उठते कहा—नौकरी एक मुसाफिरत की तरह होती है। आज यहाँ तो कल वहाँ। इतने दिन यहाँ रहे, अब कानपुर में रहेंगे।

जगत से खेले हुये नलिनीरंजन उसे यों कह कर टाल सकते है, पर जलज, जिसने संसार को न अभी देखा, और न समझा, वह उसे क्या समझे ? उसके कोमल हृदय मे एक कील-सी चुभ गई। अन्तर के कोने-कोने से एक आँधी उठी, और शरीर के रग-रग मे दौड़ गई। उसने केवल अभी हृदय को जुटते हुये देखा था। हृदय जुट कर टूट भी जाता है, जलज को यह क्या मालूम ? आज जब नलिनीरंजन की नौकरी के साथ-साथ उसका अंजना के हृदय के साथ जुटा हुआ हृदय भी विलग हो रहा है, तब उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, और दुःख ! वह उसे क्या समझे, और क्या न समझे ? नलिनीरंजन की तरह उसके पास बुद्धि और हृदय तो है नहीं, कि वह उस बुद्धि का अंचल पकड़ कर उस हृदय को समझा ले। वह चुप रहा। कुछ देर तक

खड़ा-खड़ा सोचता रहा; फिर घर से निकल कर एक ओर को चल पड़ा !!

पहले अंजना के घर जाने के लिये उसकी एक-एक इच्छा में पंख लग रहे थे, पर अब उसकी इच्छा के सारे पंख कट गये थे, और अब वह उसके हृदय के दोनों कूलों के मध्य में तड़पड़ा रही थी। जलज अपनी उसी बिलखती हुई आकांक्षा से मन ही मन खेलता हुआ धीरे-धीरे एक ओर को बढ़ा जा रहा था। उसकी इच्छा न थी, कि आज वह अंजना के पास जाय। अंजना के पास जाकर वह उससे कहेगा क्या? क्या वह उससे यह कहे, कि उसके पिता की बदली हो गई है, और अब वह कानपुर जायगा। बेचारी अंजना! भला वह इस बात को कैसे सुन सकेगी? वह सुने भी तो क्या, वह इस बात को अपने मुख से निकाल सकता है? नहीं, नहीं, यह बात उसके मुख से न निकल सकेगी! जलज अपने मन ही मन सोचता हुआ सड़क की पटरी पर चला जा रहा था। सहसा किसी ने उसे पुकार कर उसकी विचार-धारा भंग कर दी। जलज ने सिर ऊपर उठा कर आश्चर्य से देखा, अंजना 'सलमे-सितारे' से कढ़ी हुई साड़ी पहन कर अपने द्वार पर खड़ी है, और उसे पुकार रही है।

जलज ने आश्चर्य-चकित होकर अंजना और उसके घर की ओर देखा। कहीं उससे भूल तो नहीं हो रही है! क्योंकि आज तो वह अंजना के घर आने वाला नहीं था! फिर वह कैसे चला आया? जलज अंजना की ओर देखता हुआ खड़ा-खड़ा सोचता

रहा। अजना उसे सोचता हुआ देख कर पुनः बोल उठी—"आओ जलज. आओ न !!"

जलज अंजना की ओर देखकर धीरे-धीरे उसकी ओर चल पड़ा। उसके पैरो मे न उत्साह था, और न मन मे उमंग। जैसे किसी दुर्दम पीड़ा ने उसके पैरो को कस कर बॉध रक्खा हो। पर जब वह अंजना के पास पहुँचा, तब उसने देखा कि अंजना रेशम की कढ़ी हुई साड़ी से लक दक है, और जैसी उसके शरीर पर साड़ी झिलमिला रही है, वैसा ही उसके भीतर उसका मन भी तो हॅस-हॅस कर ज्योति फेंक रहा है। जलज एक आहत उत्फुल्लता अधरो पर लाकर बोल उठा—'वाह ! आज तो तुमने बडी अच्छी साड़ी पहन रक्खी है अंजना !'

अंजना कुछ न बोल कर केवल अधरो के बीच मे मुसुकुरा पडी। जलज को अंजना की आज की मुसुकुराहट मे कुछ नवीनता-सी दृष्टिगोचर हुई। ऐसी मुसुकुराहट उसने अंजना के अधरो पर कभी न देखी थी। यद्यपि भीतर ही भीतर उसके हृदय का कगार कटा जा रहा था, पर अंजना के अधरों की मुसुकुराहट को देखकर वह उसे भूल गया, और कुछ प्रसन्नता के स्वर मे बोल उठा—'सच बताओ अंजना, आज बात क्या है ?'

अच्छा बताती हूँ, देखो चले मत जाना !—यह कह कर अंजना हॅसती हुई घर के भीतर चली गई, और कुछ ही देर के बाद, आकर, जलज की ओर एक मिठाई बढ़ाती हुई बोल उठी—पहले इसे खालो, जो बताऊँ।

जलज ने आश्चर्य-चकित दृष्टि से अंजना की ओर देखा। अंजना फिरहिरी हो रही थी। जलज आँखों में विस्मय भरकर अंजना की ओर देखता रहा। फिर बोल उठा—यह कैसी मिठाई है अंजना!

"पहले खालो!"—अंजना ने मुसुकुराते हुये कहा—मैंने दो दिन से इसे तुम्हारे लिये रख छोड़ा है।

जलज के हाथ अपने आप आगे बढ़ पड़े, और अब मिठाई उसके हाथ में थी। जलज मिठाई मुँह में डालते हुये बोल उठा—लो खा लिया अंजना, अब बताओ!

अंजना पुन. मुसुकुरा उठी, और उसके कपोलो पर लज्जा की-सी एक लालिमा दौड़ गई। जलज को बड़ा आश्चर्य हुआ, और साथ ही कुतूहल भी। अंजना को वह अनेक बार देख चुका था, और वह प्रति दिन ही तो उसे देखता था। पर आज की सी अंजना उसने कभी न देखी थी। वह ज्यों-ज्यों अंजना को जानना चाहता था, त्यों-त्यो अंजना उसके लिये रहस्य बनती जा रही थी। जलज रहस्य के उसी महासागर में डूबा-डूबा बोल पड़ा—बताओ न अंजना! न बताओगी?

अंजना फिर मुसुकुराई, और अपनी साड़ी की एक छोर को उँगुली मे बाँधते-बाँधते, सिर झुका कर बोल उठी—परसों मेरी सगाई हुई है जलज! यह मिठाई उसी सगाई में आई थी।

सगाई हुई है!—जलज ने विस्मय के साथ कहा।

हाँ जलज!—अंजना ने उसी तरह उत्तर दिया—देखो, यह

साड़ी ! पिता जी कह रहे थे जलज, कि सगाई के बाद मेरा विवाह होगा, और मैं यहाँ से चली जाऊँगी।

जलज ने कुछ उत्तर न दिया। जैसे, वह अंजना की बात सुन कर अपने को बिलकुल भूल-सा गया हो। अंजना जलज को भावों के समुद्र में डूबा हुआ देख कर बोल उठी—क्यों, बोलते क्यों नहीं जलज ? क्या अप्रसन्न हो गये ? अरे, मै जाऊँगी तो जल्दी चली भी आऊँगी, और फिर तुम्हारी भी तो सगाई होगी, तुम भी विवाह के बाद जाओगे। हम दोनों खूब आपस में चिट्ठियाँ लिखा करेंगे जलज, और जब लौट कर आयेंगे तो देर तक घुल-घुल कर बातें किया करेंगे। तुम अपनी सुनाना, और मैं अपनी। बड़ा आनन्द आयेगा जलज, क्यों ?

हाँ अंजना !—जलज ने गंभीरता के साथ सोचते हुये उत्तर दिया।

जलज फिर मौन होकर सोचने लगा ; और अंजना, वह तो जैसे लट्टू बन रही थी ! लट्टू की ही भाँति प्रसन्नता के चक्र पर नाचती-नाचती बोल उठी—देखो जलज जब मै यहाँ से चली जाऊँ, तब तुम मुझे भूल न जाना !

जलज ने आँखों में आश्चर्य और उत्सुकता भर कर अंजना की ओर देखा। जलज तो कुछ न बोला, किन्तु उसकी आँखें साफ-साफ कह रही थीं कि अंजना, क्या तुम भी कभी भूल सकती हो ? अंजना जलज की मौनिमा से अब कुछ खीझ-सी

उठी थी, और वह फिर कुछ कहने ही जा रही थी, कि कोई भीतर से पुकार उठा—'अंजना !'

अंजना ने जलज की ओर देखा, और कहा—'माता जी बुला रही है जलज, जाती हूँ। देखो, भूल न जाना। कल्ह फिर आना, भला !'!

अंजना घर के भीतर चली गई। जलज कुछ देर तक खड़ा-खड़ा सोचता रहा। जैसे उसकी सुध-बुध खो गई हो ! सचमुच उसकी सुध-बुध खो गई थी। वह जब अंजना के घर से अपने घर की ओर चला, तो सड़क पर दो बार मोटर के नीचे जाते-जाते बचा ! उसका कोमल हृदय ! संसार ने उसे अपने हाथ में लेकर मसल दिया था।

[४]

गर्मी के दिन थे और रात का समय। आकाश से चाँदनी बरस रही थी। उस चाँदनी में बिलासपुर नगर के बाहर बने हुये सेवा-शिविर ऐसे लगते थे, मानों साधकों के उज्वल हृदय हो। प्रत्येक शिविर के द्वार पर, बाहर दो-एक चारपाइयाँ पड़ी थीं, और उनपर सोये हुये लोगों में कुछ तो निद्रा से अठखेलियाँ कर रहे थे, और कुछ अपनी कल्पनाओं से। डाक्टर जलज भी ऐसे ही लोगों में थे, जो कल्पनाओं के सागर में छपकियाँ खेल रहे थे। वे चारपाई पर पड़े-पड़े कुछ सोच रहे थे। जैसे कुछ अधिक चिन्तित हो, अधिक उन्मन हों ! आश्चर्य नहीं, चिन्ता उनकी पलकों को भी थका देती, और वे भी कुछ देर के पश्चात्

निद्रा के रथ पर बैठ जाते, पर सहसा एक स्वयंसेवक ने पहुँच कर उनमे जागरूकता ला दी। उसने उन्हे अभिवादन करके कहा—डाक्टर साहब, रमेश बाबू की तबीयत अधिक खराब हो गई है।

डाक्टर जलज रमेश के ही संबंध मे सोच रहे थे, उसे दो-तीन दिन से हैजा हो गया था। बिलासपुर के आस-पास के गाँवो मे हैजे का भीषण प्रकोप था। गाँव के गाँव उजड़ चुके थे, और जो बचे थे, वे भी उजड़ते जा रहे थे। इतनी अधिक संख्या मे लोग प्रतिदिन मर रहे थे, कि मुर्दे पड़े ही पड़े सड़ जाते और फेंकने तथा सहायता करने वाले उनके पास भी न पहुँच पाते। दिन मे ही स्यार और भेड़िये गाँव मे चक्कर लगाते, और घरों मे घुस-घुस कर मुर्दों को बाहर निकाल ले जाते। ऐसे अवसरो पर वन के ये हिंसक जीव मनुष्यों से कहीं अधिक उपयोगी प्रमाणित होते हैं। क्योंकि ऐसे अवसरो पर जब मनुष्य, मनुष्य से घृणा करने लगता है, तब बन के ये हिंसक जीव उन्हे खींचकर अपनी बस्ती में ले जाते हैं।

डाक्टर जलज सरकारी डाक्टर थे। उदार विचार के, आँखो मे रहम रखते थे। बिलासपुर जिले के गाँवों में जब हैजे का प्रकोप बढ़ा, तब सरकार ने डाक्टर जलज को तीन-चार डाक्टरो के साथ इसलिये बिलासपुर भेजा, कि वे जाकर गाँव के मनुष्यो को हैजे का टीका लगायें। डाक्टर जलज ने अपने डाक्टरी दल और कुछ स्वयंसेवकों के साथ जाकर बिलासपुर नगर के बाहर अपना डेरा डाल दिया। पर अभी तीन ही चार दिन बीत पाये

थे, कि डाक्टर जलज के आधीन काम करने वाले डाक्टरों में से एक डाक्टर, रमेश को कालरा हो गया। डाक्टर जलज इसी रमेश को लेकर बराबर चिन्ता के लोक में विचरण किया करते थे। जब से रमेश को कालरा हुआ है, तब से डाक्टर जलज का खाना-पीना हराम हो गया था। उपचार पर उपचार कर रहे थे, पर कोई लाभ न हो रहा था।

डाक्टर जलज अभी अपने शिविर के द्वार पर जाकर लेटे ही थे कि स्वयंसेवक ने जाकर उन्हें रमेश की बुरी हालत की सूचना दी। डाक्टर जलज शीघ्र ही उठकर रमेश के शिविर मे गये, और उसकी चारपाई के पास कुर्सी पर बैठ कर उसके दाहिने हाथ की नाड़ी देखने लगे। कुछ देर तक नाड़ी पर हाथ रखने के पश्चात् डाक्टर जलज रमेश की ओर देखते हुए बोल उठे—"रमेश बाबू कैसी तबीयत है ?"

रमेश ने अपनी बन्द आँखे खोल कर डाक्टर जलज की ओर देखा। रमेश की आँखें सूनी, और पथराई हुई, जैसे अब उनमें कुछ अवशेष ही न रहा हो। आँखें खुली, और फिर बन्द हो गई। डाक्टर जलज के हृदय को एक कर्कश आघात-सा लगा। वे उसी आघात से अपने को भूल कर बोल उठे—रमेश बाबू ! आपके घर तार दे दें !

रमेश ने फिर अपनी सूनी आँखें खोलकर जलज की ओर देखा, और फिर बन्द कर लिया। जलज कुछ देर तक सोचते रहे। उन्हे ऐसा लगा, जैसे अब रमेश के जीवन का कगार कट

कर गिरना ही चाहता है। उन्होंने शीघ्र ही एक आदमी को रमेश के घर तार देने के लिये भेज कर अपने साथी डाक्टरों को बुलाया। डाक्टर जलज अपने साथी डाक्टरों के साथ कुछ देर तक रमेश की परीक्षा करते रहे। फिर सब की राय से यह निश्चय हुआ कि यदि रमेश के शरीर में मनुष्य का रक्त पहुँचाया जाय तो रमेश की हालत सुधर सकती है।

मनुष्य का रक्त! डाक्टर जलज चिन्ता में पड़ गये। कौन ऐसा है, जो रमेश के जीवन के लिये अपना रक्त देगा? हो सकता है, रक्त देने पर वह जीवित रह सके, और यह भी हो सकता है, कि वह न भी जीवित रहे। तो क्या·······तो क्या···· ···? डाक्टर जलज का मन चिन्ता के चक्र पर घूमने लगा।

डाक्टर साहब! भूल न जाइयेगा!—रमेश ने डाक्टर जलज की ओर देख कर इसी समय क्षीण आवाज से कहा, और फिर अपनी आँखें बन्द कर लीं।

डाक्टर जलज की चिन्ता-साधना भंग हो गई। वे झट-रमेश की नाड़ी पर हाथ रखते हुये बोल उठे—रमेश, रमेश!!

नाड़ी धीमी-धीमी गति से चल रही थी। रमेश ने पुनः अपनी पथराई हुई आँखें खोलकर क्षीण स्वर में कहा—हाँ, डाक्टर साहब, देखिये भूल न जाइयेगा!

रमेश ने पुनः अपनी आँखें बन्द कर लीं। पर डाक्टर जलज के अन्तर के तार-तार झनझना-से उठे, साथ ही उनकी आँखों के सामने एक चित्र भी घूम गया। वे उस चित्र में देखने

लगे :—"बिलासपुर जिले के गाँवों में हैजे का भीषण प्रकोप है। हैजा क्या है, जैसे मृत्यु की आँधी-सी आ गई है। सरकार ने डाक्टर जलज को आदेश दिया, कि वे अमुक-अमुक डाक्टरों के साथ शीघ्र बिलासपुर पहुँच जायँ। डाक्टर जलज ने सबको ठीक समय पर बिलासपुर पहुँच जाने की सूचना दे दी। उन्हीं में से यह एक रमेश भी है, जिसे कालरा हो गया है।

किन्तु रमेश ने उत्तर मे डाक्टर जलज को लिखा कि आप इसी तरफ से आइये तो बड़ा अच्छा हो। वैसे तो डाक्टर जलज न भी जाते, किन्तु उन्हें नागपुर में कुछ औषधियाँ लेनी थीं। अतः वे नागपुर में उतर कर डाक्टर रमेश के घर गये। जब डाक्टर जलज रमेश के घर खाना खाने बैठे, तो किसी ने भीतर से जलज के सामने आते हुये कहा—जलज! भूल न जाना! वह मिठाई याद है न!!

जलज ने सिर ऊपर उठाकर देखा; अंजना, और उनके मुख से सहसा निकल पड़ा—'अंजना!'

हाँ जलज!—मैं ही हूँ अंजना!—अंजना ने उत्तर दिया—"जीवन का ऐसा ही विचित्र प्रवाह है। पर अब जाने दो उस बात को जलज! देखो, यह रमेश तुम्हारे साथ जा रहा है। अभी बालक है। इसका ध्यान रखना। भूल न जाना, भला!"

जलज की आँखों के सामने एक चित्र-सा खिंच उठा। वही चित्र जिसमें अंजना सलमे और सितारे वाली साड़ी पहनकर खड़ी है, और जलज को खाने के लिये अपनी सगाई की मिठाई दे रही

है। उससे कह रही है, कि सगाई के बाद उसका विवाह होगा, और वह यहाँ से चली जायगी। पर देखो, तुम भूल न जाना भला !"

आज रमेश की चारपाई के पास बैठे हुये डाक्टर जलज को फिर ऐसा लगा, कि मानों अंजना सलमे और सितार से कढ़ी हुई साड़ी पहन कर खड़ी है, और वह जलज से कह रही है, कि देखो, भूल न जाना भला ! इसके बाद ही डाक्टर जलज को ऐसा भी लगा, मानों वे रमेश के घर खाना खा रहे हैं, और अंजना उनसे कह रही है, कि यह रमेश तुम्हारे साथ जा रहा है। अभी बालक है। उसका ध्यान रखना। भूल न जाना भला !" डाक्टर जलज अपने आप ही बोल उठे—'नहीं, मैं रमेश के जीवन-कगार, को न गिरने दूँगा। मैं उसे बचाऊँगा, अवश्य बचाऊँगा !!

डाक्टर जलज ने शीघ्र अपने साथी डाक्टरों को बुलाकर आदेश दिया, कि वे उनके शरीर का रक्त निकाल कर रमेश के शरीर में उसका संचरण कर दें।

× × ×

सन्ध्या का समय था, सूर्य की किरणें अस्त हो रही थीं। डाक्टर जलज के साथी डाक्टर उनकी चारपाई के पास चिन्ता-ग्रस्त बैठे हुये सोच रहे थे। डाक्टर जलज कभी आँखें बन्द कर लेते, और कभी आँखें खोलकर अपने चिन्ताग्रस्त साथियों की ओर देख लिया करते थे। ऐसा लगता था, मानों उनकी आँखें जीवन की आँखमिचौनी का खेल रही हों।

डाक्टर जलज की आँखें अभी बन्द ही हो रही थीं, कि पद-ध्वनि से फिर खुल गईं ! डाक्टर जलज ने देखा, रमेश के पिता कौशलेन्द्र, और उसकी माँ अंजना।

डाक्टर जलज अंजना की ओर देखकर बोल उठे—'अंजना, मेरी सगाई हो गई हूँ। मैं अब जा रहा है। देखो, भूल न……जाना……भला !!

अंजना की आँखों से टप-टप आँसू गिर पड़े। उन आँसुओं में कितनी मर्मांतक व्यथा थी, यह कौन कह सकता है !!

विष पान

आकाश पर सन्ध्या खेल रही थी, और नीचे पृथ्वी पर बरसात। आकाश के ऊपर घुमड़-घुमड़कर बादल गरज रहे थे, और नीचे पृथ्वी पर नदी, ताल, सरोवर और नाले। ऐसे लगता था, मानो सन्ध्या और बरसात ने पृथ्वी और आकाश को अधिक तम मय बनाने के लिये साथ कर लिया हो। सचमुच दोनो ने साथ कर लिया था। यद्यपि सूर्य की किरणें अभी अवशेष थी, और बादलों के घूँघट-पट से उनकी आभा साफ-साफ दृष्टिगोचर हो रही थी, पर ऐसा लगता था, मानों पृथ्वी और आकाश पर तम की चादर फैल चुकी है, और उस पर धीरे-धीरे कोई गहरा श्याम रंग डाल रहा है।

रंजन तुंगभद्रा नदी के तट पर खड़ा होकर बड़ी तन्मयता से आकाश और पृथ्वी की छवि को देख रहा था। आकाश काले-काले बादलों का परिधान पहन कर गरज रहा था, और पृथ्वी हरे-हरे तिनकों का दुकूल ओढ़े हुये संगीत गा रही थी। मानों

पृथ्वी और आकाश, दोनों ने ही अधिक से अधिक श्यामता की छवि धारण करके अपने को अधिक गुंजित बनाने की होड़-सी लगा ली हो। रंजन ने श्याम रंग में डूबी हुई पृथ्वी और आकाश को बड़े ध्यान से देखा। फिर उसका ध्यान हर-हर की ध्वनि के साथ सर्प की तरह भागती हुई तुंगभद्रा पर चला गया। तुंगभद्रा पूरे वेग पर थी। उसका गँदला बरसाती जल ऐसा फुफकार मार रहा था, मानों उसी की फूत्कार से पृथ्वी और आकाश, दोनों ही काले पड़ते जा रहे हों !!

रंजन उमड़ कर भागती हुई तुंगभद्रा को देखकर सोचने लगा—'यह तुंगभद्रा आज उमड़ कर बह रही है। कितनी ऐंठ है इसमें ? अपनी दोनों सीमाओं को तोड़कर किस तरह आगे निकल आई है, और छोटे-छोटे पेड़-पौधों को जड़ से उखाड़ती, कगारों को काटती, और जीव जन्तुओं के जगत में प्रलय मचाती हुई हर-हर करके भागी जा रही है, पर कल्ह जब इसमें जल न रहेगा, और इसका उभार शान्त हो जायगा, तब कछुये भी जल की कमी के कारण इसे अभिशाप देंगे। तुंगभद्रा, यदि तू समझ सकती, तो समझती अपने आज और कल्ह के रूप को ! पर जब सज्ञान होकर मनुष्य ही नहीं समझता, तब तू जड़ नदी होकर क्या समझेगी ? जा, बहती जा, इसी तरह ! कल्ह तो तुझे सूख जाना ही है !!'

रंजन सोचते-सोचते कुछ रुक-सा गया, और तुंगभद्रा की गति की ओर देखने लगा। तुंगभद्रा की प्रबल गति को देखकर

उसके मन में एक नई कल्पना ने जन्म लिया, और वह अपने हृदय के तार ठीक कर उसे उस पर साधने लगा। अभी वह दोनों के स्वरों को मिला ही रहा था, कि पास की झाड़ी के झुर-मुट से कोई चीज छपाक से नदी में जा गिरी और उसके गिरने के शब्द ने रंजन के हृदय के तार-तार झनझना दिये।

रंजन आश्चर्य-चकित होकर उस ओर देख उठा। उसे कुछ दिखाई तो न पड़ा, पर उसने देखा, कि झाड़ी के पास ही नदी में पानी भँवर दे रहा है। रंजन की दृष्टि अभी पानी के भँवर पर ही थी, कि जैसे नदी के पानी ने किसी चीज को अपने भीतर से पूरे जोर से ऊपर फेंक दिया हो। वह चीज नदी के ऊपर जल की सतह पर आई, और कुछ देर तक उफनाती हुई लहरों के कारण इधर-उधर वह कर फिर बहाव के साथ बह चली।

रंजन उसे देखकर पहले आश्चर्य-चकित सा हो उठा। फिर ध्यान से देखते ही सहसा उसके मुख से निकल पड़ा—"अरे, कोई मनुष्य!"

बात समाप्त होते ही होते रंजन तुंगभद्रा के जल में था, और लहरों के साथ बहा चला जा रहा था। पर उसके बहाव में तुंगभद्रा के बहाव से लड़ने की शक्ति थी, चेतना थी, सजगता थी। उसने तुंगभद्रा की लहरों से लड़-झगड़ कर कुछ ही दूर पर जाकर उसे पकड़ लिया। स्वयं तुंगभद्रा ने भी उसकी सहायता की। जब वह वस्तु तुंगभद्रा की सर्प गति के साथ लिपटी हुई आगे बढ़ी, तब तुंगभद्रा ने उसे अपने साथ न लेकर उसे अपने तरंग-

करों से तट की ओर ठेल दिया। मानों रंजन के संकल्प को जान-कर जड़ तुंगभद्रा उस पर प्रसन्न हो उठी हो, और उसने उसे तट की ओर ठेल कर रंजन के मार्ग को अधिक सरल बना दिया हो !!

रंजन बड़ी कठिनाई से उसे किनारे पर लाया, और उसे ध्यान से देखकर अपने आप बोल उठा—'अरे, कोई युवती !' उसके खुले हुये बाल, वस्त्र अस्त-व्यस्त, आँखें मुँदी हुई, शरीर संज्ञा हीन ! रंजन मन ही मन अपना कर्त्तव्य स्थिर करने लगा। पर कर्त्तव्य स्थिर करने का अधिक समय कहाँ था ? उधर आकाश लोक से उतर कर रजनी पृथ्वी पर अपना ताना-बाना फैला रही थी, और इधर युवती का संज्ञा-हीन शरीर मृत्यु की तमिस्रा से ढँकता जा रहा था। रंजन के हृदय से एक बात उठी, और वह संकल्प-विकल्प छोड़कर प्राथमिक चिकित्सा में लग गया।

युवती संज्ञा-हीन अवश्य थी, पर ऐसा लगता था, मानों तुंगभद्रा ने उसे अपनी गोद में लेकर सुला लिया हो, और जब रंजन उसे पकड़ने के लिये बहाव के रथ पर चढ़ कर दौड़ा, तब उसने अपने-आप उसे सिपुर्द कर दिया हो। रंजन के आंशिक प्रयत्न से ही युवती का शरीर गर्म हो उठा और उसने अपनी आँखें खोलकर एक कराह-सी ली।

उसकी कराह के साथ ही आकाश में बादल गरज उठे, और विद्युत् ने चमक कर अपना हास्य बादलों के अधरों पर अंकित कर दिया। कौन जाने बिजली की यह हँसी उसके किस भाव का

द्योतक थी ? उसने अपने इस हास्य के द्वारा उसकी जागृत अवस्था पर अपनी प्रसन्नता प्रगट की थी, या किया था, उसके भावी जीवन पर व्यंग्य ! पर रंजन को तो अधिक सुख ही हुआ। उसके प्राणों मे सुख का ऐसा पुलक हुआ, जैसा पुलक जीवन और संसार मे बहुत कम लोगों को हुआ करता है। रंजन अपने चिर सुख के इस पुलक से मन ही मन विभोर हो उठा, अधिक विभोर !!

[२]

बरसात की अंधकार पूर्ण रात्रि थी। ऐसा लगता था, मानों आकाश से वादल पानी नहीं, तम बरस रहे हैं। पृथ्वी पर पैर रखने के लिये उठाओ तो कह नहीं सकते, कि वह किस चीज़ पर पडेगा ? समतल स्थान मे या खन्दक में, काले विषधर सर्प पर, या और किसी जीव-जन्तु पर ? जैसे, पृथ्वी और आकाश, दोनों ने संसार को अधिक तम मय बनाने के लिये, आपस मे सलाह करके काली चादर ओढ ली हो। चारो ओर निस्तब्धता का साम्राज्य ! पर निस्तब्धता के उस साम्राज्य मे दादुरो की ध्वनि और झिल्लियों की झंकारें ऐसी लगती थीं, मानों निस्तब्धता के काले सिंहासन पर वे बरसात का अभिपेक कर रहे हों, और अपने-अपने स्वरों में उसी के गुणो की गीत गा रहे हों।

बारह बज रहे थे, बरसात की सीरी-सीरी हवा से लोग अपने-अपने घरों मे दुबके हुये पड़े थे। ऐसे अवसरों पर, जब नगरों में बिजली की बत्तियाँ हँसती रहती है, तब बड़े-बड़े गाँवो

में भी प्रकाश का कहीं कोई चिह्न तक दिखाई नहीं देता। तुंग भद्रा नदी के तट पर बसे हुये उस मणिपुर नामक गाँव में भी कहीं प्रकाश की छाया नहीं झलक रही थी। सारा गाँव तम की कन्दरा मे बैठा हुआ समाधि-सा लगाये हुये था। बीच-बीच में आकाश में जो बिजली चमक उठती थी, केवल उसी से इस समाधिस्थ गाँव के अस्तित्त्व की सूचना मिलती थी।

गाँव के उत्तरी छोर पर देवाधिदेव महादेव का एक विशाल मन्दिर था, जो गृहस्थियों के घरो की भाँति ही उस बरसाती रात मे अंधकार की गोद मे सोया हुआ था। हो सकता है, अंधकार की गोद मे सोये हुये मन्दिर में, देवाधिदेव महादेव के हृदय मे ज्योति हो, पर उस ज्योति से संसार का क्या वास्ता ? क्योंकि देवाधिदेव महादेव भी, इस संसार में उस ज्योति से काम न लेकर, अपनी मूर्ति के ऊपर घी के कृत्रिम दीपक से ही उजाला किया करते हैं।

मन्दिर के पुजारी जी मन्दिर का कपाट बन्द कर अभी महादेव का नाम लेकर चारपाई पर लेटे ही थे, कि किसी ने कपाट पर थपकी दी।

पुजारी जी चारपाई पर लेटे ही लेटे बोल उठे—कौन है भाई !

मैं हूँ बाबा !—बाहर से आवाज आई—द्वार खोलिये।

स्वर कुछ परिचित-सा जान पड़ा। पुजारी जी ने चारपाई से उठकर मिट्टी के जलते हुये दीपक की बत्ती कुछ और उकसाई; और द्वार पर जाकर किवाड़ खोल दिये। पुजारी जी ने दीपक के

धुँधले प्रकाश मे उस व्यक्ति को बड़े ध्यान से देखा, और फिर उनके मुख से सहसा निकल पड़ा—बेटा रंजन, इतनी रात गये !!

पुजारी जी के आश्चर्य की सीमा उस समय अधिक बढ़ गई, जब उन्होने रंजन के पीछे खड़ी एक युवती को देखा। रंजन गॉव के जमीदार बलवन्त सिह का एकमात्र पुत्र था। सरल चित्त का, उदार और शिक्षित युवक। पुजारी जी कुछ देर तक रंजन की ओर आश्चर्य-चकित दृष्टि से देखते रहे। कभी-कभी पुजारी जी की दृष्टि रंजन के पीछे खड़ी युवती की ओर भी चली जाती थी। रंजन पुजारी जी को आश्चर्य से अपनी ओर देखता हुआ बोल उठा—बाबा, क्या मन्दिर मे आने की आज्ञा है ?

पर........पर बेटा रंजन !—पुजारी जी ने आश्चर्य-चकित दृष्टि से रंजन की ओर देखते हुये कहा।

मै समझ गया बाबा !—रंजन ने नम्रता के स्वर मे उत्तर दिया —यह एक दु:खिनी है बाबा ! मेरी भद्रता पर विश्वास कीजिये !

पुजारी रंजन की प्रकृति से भली-भाति परिचित थे। पुजारी की दृष्टि मे भी रंजन 'युवक' था, वास्तविक 'युवक' था। पुजरी जी ने जब रंजन के साथ रात मे एक अपरिचित युवती को देखा, तब पहले उनके हृदय में संदेह की एक छोटी-सी आँधी अवश्य दौड़ गई। पर रंजन की भद्रता की शर्त नें पुजारी जी के हृदय मे उठी हुई उस ऑधी को शान्त कर दिया, और फिर रंजन गॉव के जमीदार का पुत्र। पुजारी जी द्वार के सामने से

हट गये। रंजन और युवती ने मन्दिर के भीतर प्रवेश किया। पुजारी जी द्वार का कपाट बन्द कर अपने कमरे में गये, और दीपक काठ के बने हुये दीवट पर रखते हुये बोल उठे—बैठो, बेटा रंजन, कहो क्या बात है!

रंजन पुजारी जी की चारपाई के पास रक्खी हुई काठ की चौकी पर एक दीर्घ निश्वास लेकर बैठ गया; किन्तु युवती अभी खंभे की ओट में सिकुड़ी हुई खड़ी ही थी। मानों, वह दीपक के उस प्रकाश में अपने को रंजन और पुजारी की दृष्टि से बचाना चाहती हो। रंजन उसकी ओर एक मर्मांतक दृष्टि फेक कर, फिर पुजारी जी की ओर देखता हुआ बोल उठा—कुछ नहीं बाबा, केवल इतना ही, कि आज रात भर मन्दिर मे इस दु:खिनी को रहने दीजिये!

मन्दिर में!—पुजारी जी ने एक बार आश्चर्य से युवती की ओर देखकर फिर रंजन की ओर देखते हुये विस्मित स्वर में कहा।

हाँ बाबा! मन्दिर में!—रंजन ने अपने हृदय की स्वर-प्यालियों मे पीड़ा का रस घोलते हुये उत्तर दिया—देवाधिदेव महादेव के मन्दिर में। जानते हैं बाबा, उनका एक नाम शिव भी है। जब वे सारे जगत का कल्याण करते हैं तब फिर उनके मन्दिर में एक दु:खिनी के लिये स्थान माँगने पर आप विस्मित क्यों हो गये बाबा!

पुजारी जी ने रंजन की ओर देखा। उन्हें ऐसा लगा, जैसे रंजन के नेत्रों से ज्ञान की अजस्र वर्षा-सी हो रही हो। पुजारी ने

जैसे अपने को उस वर्षा से भीगा हुआ-सा पाया। वे कुछ देर तक सिर झुका कर सोचते रहे। फिर बोल उठे—तुम ठीक तो कह रहे हो रंजन, पर...... .....पर रंजन, यह देवी . ... यह युवती कौन ... ...।

पुजारी की बात अभी पूरी भी न हो पाई थी, कि रंजन बीच ही में बोल उठा—यह न पूछिये बाबा, बड़ी सकरुण कहानी है। फिर बताऊँगा। इस समय केवल इतना ही बाबा, कि भगवान् शंकर के नाम पर उनके मन्दिर में इसे थोड़ी-सी जगह दे दीजिये।

साठ-सत्तर वर्ष के वृद्ध पुजारी! भगवान शंकर के मन्दिर मे उन्ही की सेवा करते-करते उनके शरीर की चमड़ियाँ लटक गई थी, और सिर के बाल बन गये थे, बर्फ के पतले लच्छे। उन्हे ऐसा ज्ञात हुआ, जैसे भीतर ही भीतर कोई उनसे कह रहा हो, रंजन अनुचित नही कह रहा है बाबा। पुजारी जी के मन मे उठी हुई विरोध की आँधी जैसे उन्हीं को दबाती हुई-सी ज्ञात हुई, और जैसे विद्रोह का स्वर कंठ मे आते ही आते पिघल कर बह उठा हो! पुजारी जी कुछ देर तक मन ही मन सोचते रहे। फिर हाथ मे दीपक लेकर आगे-आगे चल पड़े।

एक कोठरी के द्वार पर पहुँच कर बोल उठे—रंजन यह कोठरी—! "इसमे एक चटाई भी है। लो, यह दीपक .... !"

पुजारी जी कोठरी के द्वार पर दीपक रखकर चुपचाप सोचते हुये चले आये, और चारपाई पर बैठ कर चिन्ता की लहरियो मे गोते मारने लगे। चिन्ता की लहरो के साथ खेलते-ही-खेलते उनके

मन में एक बार आया, कि वे भगवान शंकर की मूर्ति के सामने जाकर उनसे पूछें कि यह सब क्या है देवाधिदेव ? पुजारी जी अपने मन की इसी प्रेरणा से चारपाई से उठे, पर अभी दो डग भी आगे नहीं बढ़ पाये थे, कि रंजन ने पुजारी जी के पास पहुँच कर कहा—कहाँ जा रहे हैं बाबा !

कहीं नहीं, बेटा रंजन,कहीं नही !—पुजारी जी ने रुकते हुये अर्द्ध प्रस्फुटित स्वर में उत्तर दिया—·······हाँ बेटा, रंजन, कहो सब ठीक है न !

हाँ बाबा !—रंजन ने कृतज्ञता के स्वर में कहा—आपको बड़ा पुण्य होगा। मैंने उसे सुला दिया है। दीपक जल रहा है, और अब मैं जाता हूँ बाबा !

तुम जा रहे हो रंजन !—पुजारी जी ने आश्चर्य-चकित दृष्टि से रंजन की ओर देखते हुये कहा।

हाँ बाबा, मैं जा रहा हूँ—रंजन ने पुजारी की ओर देखते हुये उत्तर दिया—रात अधिक बीत गई है, और मेरे शरीर में कुछ पीड़ा भी हो रही है। आप घबड़ाइए न बाबा, प्रातःकाल होते ही मैं इसका अवश्य प्रबन्ध कर दूँगा।

घबड़ाता तो नहीं था रंजन—पुजारी जी ने अपने स्वरों में दुःख घोलकर कहा,—पर अब जब तुम जा रहे हो, तब मेरा मन अवश्य कुछ काँप-सा रहा है रंजन ! देखो, कहीं मेरे श्वेत बालों में कालिमा न पुत जाय।

रंजन ने पुजारी जी की ओर देखा। पुजारी जी का मन

संसार के भय से कट-कट कर गिरता-सा जा रहा था। रंजन अपने स्वरों मे साहस लिपेट कर बोल उठा—आप डर रहे हैं बाबा, शक्ति-पुंज शंकर के मन्दिर मे, प्रकाश के आकर देवाधिदेव महादेव के देवालय मे ! मैं कहता हूँ बाबा, कि यदि आप शरीर, मन और कर्म से पूत हैं, तो यह सारा जगत अपनी सारी कालिमा का रस घोल करके भी आपके बालों को काला न कर सकेगा !

वृद्ध पुजारी का मस्तक रंजन के सामने झुक गया। पुजारी जी को ऐसा ज्ञात हुआ, मानो रंजन के मुख से स्वयं भगवान शंकर ही उन्हें साहस का स्तोत्र सुना रहे हो। पुजारी जी ने अपने नेत्रों मे विस्मय के साथ और न जाने क्या-क्या भर कर रंजन की ओर देखा। रंजन कुछ देर तक चुप रह कर पुनः बोल उठा—अच्छा तो बाबा, आज्ञा दीजिये !

पुजारी जी के मुख से कुछ भी फूट न सका। उन्होंने केवल जलता हुआ दीपक हाथ मे उठा भर लिया। पुजारी जी जलता हुआ दीपक हाथ में लेकर मन्दिर के द्वार तक गये, और द्वार का कपाट बन्द कर फिर चारपाई पर जाकर पड़ रहे। नींद उन्हें कब आई, यह कौन कह सकता है ?

× × ×

सन्ध्या का समय है। सूर्य अस्त हो रहा है। समुद्र की लहरें ऐसी उठ रही हैं, मानो ऊपर उठकर आकाश को चूम लेना चाहती हों ! तट से कुछ दूर, विस्तृत मैदान की गोद में एक

झोपड़ी बनी है जिसके द्वार पर अस्त होते हुये सूर्य की ओर मुँह करके एक साधु साधना में संलग्न है। सहसा अस्त-व्यस्त वस्त्रों और केशों को सँभालती हुई एक युवती साधु के समीप पहुँचकर बोल उठी—बाबा, मुझे आश्रय चाहिये।

साधु ने कुछ उत्तर न दिया। साधना का रस पीती हुई उसकी बन्द आँखें बन्द ही रहीं। युवती अपने स्वरों में दीनता लिपेट कर पुनः बोल उठी—बाबा, मैं विपन्न हूँ। विपन्न को आश्रय देना जगत में सब से बड़ी साधना है।

साधु के नेत्र अपने आप खुल गये, और उसने युवती की ओर देखा—बीस-बाइस वर्ष का वय, शरीर में सौन्दर्य, और आँखों में रस! पर सब को जैसे किसी ने कुचल दिया हो। साधु के हृदय में एक करुणा सी उभड़ पड़ी; किन्तु फिर भी उसने आश्चर्य प्रगट करते हुये कहा—मेरी कुटी में. ..तुम....!!

हाँ बाबा!—युवती बोल उठी—क्या कोई आश्चर्य है? संसार से ठुकराये गये विपन्नों का आप की साधना की कुटी के द्वार पर आकर आश्रय माँगना आश्चर्य नहीं है बाबा! देख रहे हैं न आप मेरी ओर! पापी संसार ने बलात् पाप की सृष्टि तो कर दी, किन्तु अब वह अपने इस पाप को अपनी गोद में लेने से डरता है बाबा! फिर मैं उसे लेकर कहाँ जाऊँ?

साधु ने ध्यान से युवती के शरीर की ओर देखा। मानों वह अपनी दृष्टि को कुछ अधिक तीव्र करके युवती के शरीर में कुछ देखने का प्रयास कर रहा हो! जैसे साधु की आँखों के सामने

युवती के जीवन का, क्षण मात्र मे ही, एक चित्र-सा खिंच गया। साधु कुछ देर तक उस चित्र को देखता रहा। फिर युवती की ओर देख कर बोल उठा—ऐसी दशा में, तुम मेरी कुटी मे !

क्या आप को भी पाप से लड़ने मे भय हो रहा है बाबा !—युवती ने साधु की ओर देखते हुये कहा—अच्छा, मै जाती हूँ, और अब सामने लहराते हुये जड़ समुद्र के द्वार पर खड़ी होकर उससे आश्रय मागूँगी। मेरा विश्वास है बाबा, कि मानवो की भाँति अपने ज्ञान और शक्ति की ड्योंड़ी न पीटनेवाला वह मूक और बधिर समुद्र मुझे अवश्य अपनी गोद में स्थान देगा !

युवती धीरे-धीरे समुद्र की ओर चल पड़ी। साधु को ऐसा लगा, जैसे मानो वह उसके जीवन की संपूर्ण साधना लेकर उसे समुद्र मे डुबोने जा रही हो। साधु कुछ देर तक सोच कर उसे पुकारता हुआ बोल उठा—समुद्र के द्वार पर आश्रय के लिये न जा बेटी ! मेरी झोपड़ी का द्वार तुम्हारे लिये खुला हुआ है।

निशा के अवसान के पश्चात् जब सूर्य की किरणे फूटीं, तब प्रकाश के ही साथ साथ साधु की कुटी नवजात बालक के क्रन्दन से गूॅज उठी; और जैसे मदारी की डुगडुगी सुनकर बच्चे दौड़ पड़ते है, उसी प्रकार नवजात शिशु के क्रन्दन तथा उसके भूमिष्ठ होने का सम्वाद सुनकर लोग साधु की कुटी की ओर दौड़ पड़े। साधु कुटी क द्वार पर बैठा हुआ उदय होते हुये सूर्य की ओर मुँह करके मत्र जप रहा था। लोग साधु के समीप पहुँच कर उससे उस युवती और बालक के संबंध मे तरह-तरह के प्रश्न करने

लगे। पर साधु ने कोई उत्तर न दिया। साधु से कोई उत्तर न पाकर भीड़ के संतोष के तार टूट पड़े, और भीड़ मे से ही किसी ने चिल्ला कर कहा—'पापी है।' आकाश, पृथ्वी, सूर्य, और सामने फैला हुआ विस्तृत मैदान किसी ने भी भीड़ की बात का समर्थन न किया; किन्तु मनुष्य जब शक्ति की सुरा पी लेता है, तब उसे अपने समर्थन की चिन्ता कहाँ रहती है ? भीड़ ने 'पापी' के स्तोत्र के साथ साधु पर ईंट और पत्थर बरसाना आरंभ कर दिये। दूसरे ही क्षण, हाथ मे जप की माला लिये, रक्त से भीगा हुआ साधु भूमि पर पड़ा था, और बालक उसकी झोपड़ी में किलकारियाँ मार-मार कर उसकी विजय के गीत गा रहा था।"

"साधु पर ईंटो और पत्थरों की वर्षा!" चारपाई पर सोये हुये पुजारी जी एक बार जोर से काँपे, और फिर जोर से चौक कर उन्होंने निद्रा के बंधनो से अपने को छुड़ा लिया। कुछ देर तक, पुजारी जी संज्ञा-हीन अवस्था में रहे। साँसें जोर-जोर से चल रही थीं, और शरीर स्वेदमय हो उठा था। अभी पुजारी जी अपनी चेतना के तारतम्य को ठीक भी न कर पाये थे, कि सहसा एक नवजात बालक के रुदन की क्षीण आवाज से मन्दिर का आँगन ध्वनित-सा हो उठा। पुजारी जी उस आवाज को सुनकर अपनी सुप्त और जागृत अवस्था का तारतम्य ठीक करने लगे। वह समुद्र, समुद्र के तट पर वह कुटी, कुटी के द्वार पर बैठा हुआ वह साधु, और साधु के सिर पर ईंटों-पत्थरों की वर्षा करती हुई वह भीड़! क्या अब भी मैं वहीं हूँ ?" पुजारी जी

ने अपनी आँखों को दोनों हाथों से भली प्रकार मल कर इधर-उधर देखा—वही मन्दिर, मन्दिर का वही आँगन, आँगन से लगा हुआ उनके सोने का वही स्थान, वही चौकी, और वही जलता हुआ दीपक ! फिर फिर...

पुजारी जी अभी सोच ही रहे थे, कि बालक का क्षीण रुदन बार-बार आकर उनके हृदय के तारों को झंकृत करने लगा। जैसे वह उनकी सोई हुई चेतना को खोद खोद कर जगा रहा हो ! पुजारी जी चारपाई पर उठ बैठे, और हाथ में दीपक लेकर आँगन से होते हुये कोठरी की ओर चल पड़े।

पुजारी जी की आँखों के सामने अब एक चित्र सा खिंच गया था, और आँगन को पार करते-करते वे यह समझ सा रहे थे, कि आज के प्रभात का स्वप्न उनके जीवन में सत्य होकर रहेगा। नवजात बालक अब भी अपने क्रन्दन से निस्तब्धता को भंग कर रहा था। पर जैसे अब उसका स्वर धीरे-धीरे क्षीण पड़ता जा रहा था। पुजारी जी ने कोठरी के द्वार पर पहुँच कर कोठरी के भीतर की ओर ध्यान से देखा। कोठरी के भीतर दीपक जल रहा था। पर उसका प्रकाश ऐसा धूमिल था, मानों वह सिसक-सिसक कर रो रहा हो। बालक युवती की गोद में था, और युवती कभी बालक की ओर देखती, और कभी उसका हाथ बालक के कंठ पर जा पहुँचता। पुजारी के हाथ से दीपक छूट कर गिर पड़ा, और वे बिजली की भाँति कोठरी के भीतर घुस कर कड़कते हुये बोल उठे—हत्यारिनी, देवाधिदेव महादेव के मन्दिर में बाल हत्या !"

पुजारी जी ने अपनी बात समाप्त करते ही करते युवती की गोद से बालक छीन लिया। युवती ने कुछ विरोध न किया, और वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ बन कर बैठी रही। पुजारी जी बालक को अपनी गोद मे लेकर युवती की भर्त्सना करते हुये पुनः रोष के स्वर में बोल उठे—पापिनी, पाप करते समय यह नहीं सोचा था, कि उसका क्या परिणाम होगा ? आज जब पाप तुम्हारी गोद में किलकारियाँ मार रहा है, तब तू उसका सामना करने से भयभीत हो रही है !

मैं भयभीत नहीं हो रही हूँ बाबा !—युवती ने दबे कंठ से उत्तर दिया—भयभीत होता है आपका वह समाज, जिसके पुरुष भोली-भाली बालिकाओ के जीवन से खेल कर पवित्रता का तिलक लगाये फिरते है, और अपना सारा पाप उसी के अंचल से बाँध कर उसे यातना की झाड़ी में घसीटने में ही अपने पुरुषार्थ का गौरव समझते हैं।

पर पिशाचिनी!—पुजारी जी ने अपने उसी आवेग मे कहा—तू इस नवजात का—इस निर्बोध सृष्टि का गला क्यों टीप रही थी ? इसका गला टीपते हुये तुम्हारी छाती फटकर दो टूक नही हो गई, और तुम्हारी उँगलियाँ कट कर गिर नही पड़ी !

आँखें होतीं तो आप देखते बाबा !—युवती ने अपने स्वरो में कुछ साहस उँडेल कर कहा—हृदय फट कर दो टूक हो चुका है, और उँगुलियाँ सड़कर गिर चुकी हैं। मुझे दुःख है बाबा, मैं इस अभागे का गला टीप न सकी, और यह अब भी अपने

रुदन से पृथ्वी और आकाश को ध्वनित कर रहा है। बदन-सीब, तुम्हे समाज की भर्त्सना—अग्नि में अवश्य जलना पड़ेगा, अवश्य !!

पर पिशाचिनी !—पुजारी जी ने उसी आवेग के स्वर मे कहा—तेरे इस निन्दित कर्म का कभी प्रायश्चित्त न होगा, और तू तड़प-तड़प कर, गल-गल कर मरेगी।

मै मरने से नहीं डरती बाबा !—युवती ने कुछ ऊँचे स्वर मे उत्तर दिया—आज जब अपने ही रक्त का गला अपने ही हाथो टीप रही थी, तो क्या आपकी वरद मृत्यु इससे भी भयानक होगी बाबा ! कितना अच्छा होता, यदि आप मुझे पिशाचिनी कहने के साथ ही साथ उसे भी पिशाच के नाम से पुकारते, जो आज मेरे जीवन पर कालिमा पोत कर पुण्य की टट्टी लगाये हुये बैठा है, और जो आज मुझे नरक की इस भयानक अग्नि में डाल कर सुख की शीतल शय्या बिछाये हुये बैठा है। मै आपके अभिशापो को अंचल फैला कर लेती बाबा, यदि आप नरक के इस जलते हुये महा भयानक कुण्ड मे उसे भी घसीट कर ला देते, और उसे भी मेरे साथ ही अपने वचन-बाणो की शय्या पर सुलाकर दोनो के बदन में तेज काँटे चुभोते ! है बाबा आप में इतनी सामर्थ्य !

पुजारी जी को ऐसा लगा, जैसे युवती के प्रति उनकी भर्त्सना कम होती जा रही हो, और जैसे युवती की मर्मांतक वाणी ने उन्हे अप्रतिहत-सा कर दिया हो। पुजारी जी सिर उठा कर

सोचने लगे। उन की आँखो के सामने कई चित्र बने और मिट गये। वे कुछ देर तक अपने मन के उन्हीं चित्रों से खेलते रहे। फिर अपने स्वर में कुछ आर्द्रता लाकर बोल उठे—पर युवती, तुम्हें ऐसा नही चाहिये था! ओह, सोचते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं!

मैं जानती हूँ बाबा!—युवती ने आँखों में वेदना उँडेल कर उत्तर दिया—पर आप ने यह भी सोचा बाबा, कि मैं ऐसा क्यों करने जा रही थी? देखिये बाबा, देखिये, इसकी अँतड़ियाँ निकालने के लिये समाज अपनी छूरियाँ तीव्र कर रहा है, इसके जीवन को भस्म करने के लिये समाज के नाम-धारी व्यक्ति अपनी क्रूर आँखों में विष की ज्वाला उँडेल कर इसकी ओर देख रहे हैं, और तैयार कर रहे हैं इसके लिये अपने अभिशापों की शूली। क्या समाज में ऐसी कोई गोद है बाबा, जिसमें यह सुख की नींद सो सके, क्या समाज में है ऐसा कोई हृदय बाबा, जिसकी सहानुभूति मानव के समस्त विरोधों के अंचल को उठा कर इसकी ओर झाँक सके। मैं कहती हूँ बाबा, जिस नवजात के लिये समाज की गोद में केवल यंत्रणा ही यंत्रणा है, उसका गला टीप कर उसे मार ही देना चाहिये, और उसका शव उसकी छाती पर पटक कर उससे कहना चाहिये, कि ले, अब उसकी अँतड़ियाँ निकाल कर अपने मुख पर डाल ले!

युवती के आवेग का बाँध टूट पड़ा, और वह अपनी बात समाप्त करते-करते बिखर कर फूट पड़ी। पुजारी जी भी उसकी

आँखों से फूटी हुई वेदना की धारा में वह चले, और आत्म-विस्मृत-से हो गये। पर पुजारी के हाथों की शय्या पर, अपने रुदन से आकाश के हृदय में चोट करता हुआ शिशु पुजारी की आत्म-विस्मृति के तारों को रह-रह कर तोड़ रहा था, और पुजारी के ध्यान को रह-रह कर अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। मानों अपने क्रन्दन के मिस पुजारी से अपने लिये उनके हृदय की सहानुभूति माँग रहा हो !!

पुजारी के हृदय में न जाने क्यों, उसके लिये सहानुभूति जाग ही उठी, और उन्होंने अपने प्यार का अंचल उठाया, कि वे इसके ऊपर डाल दे, कि मन्दिर का मुख्य द्वार बाहर से खटखटा उठा। पुजारी जी की दृष्टि अपने आप ही पीछे की ओर जा पडी। प्रभात हो गया था, और सूर्य की किरणें मन्दिर के आँगन में खेल रही थीं। इधर-उधर आश्चर्य चकित दृष्टि से देखकर पुजारी ने पुनः बालक की ओर देखा। मानों सूर्य की किरणों ने निकल कर पुजारी के लिये बालक को एक समस्या बना दिया हो। पुजारी जी चिन्ता-ग्रस्त होकर सोचने लगे।

कोठरी में चुपचाप बैठी हुई युवती, जो पुजारी की आकृति की ओर बडे ध्यान से देख रही थी, बोल उठी—इसी लिये तो मै कह रही थी बाबा, कि मुझे इसका गला टीप देने दीजिये। मैं अब तक कभी इसका गला टीप कर, इसे अपनी छाती पर सुलाकर नदी की गोद में सो गई होती बाबा !

पुजारी जी ने तीव्र दृष्टि से युवती की ओर देखा। पर अब

इस दृष्टि में घृणा और भर्त्सना के स्थान पर, मानवता के मुख पर कालिमा पोतने के प्रयत्न पर रोष था। पुजारी जी युवती की ओर देखकर फिर कुछ कहने ही जा रहे थे, कि मुख्य द्वार की बाहरी साँकल पुनः जोर से खटखटा उठी।

साँकल की आवाज सुनकर, पुजारी जी के कुछ कहने के पूर्व ही युवती बोल उठी—खोल दीजिये मन्दिर का द्वार बाबा! देवाधिदेव, भगवान शंकर का पवित्र दर्शन समाज की आँखों में अब तक भी ज्ञान की ज्योति न बिखेर सका, कदाचित् आज इस मन्दिर में 'नरक' और 'पाप' को देखकर समाज के हृदय के तार-तार झनझना उठें! डरिये न बाबा, साहस कीजिये। समाज अपनी सारी कालिमा उंडेल करके भी आपके उज्वल स्वरूप को कुत्सित न बना सकेगा।

पुजारी ने एक बार युवती की ओर देखा, और फिर वे बच्चे को उसी प्रकार गोद में लिये हुये द्वार की ओर चल पड़े। उन्होंने मन्दिर का द्वार खोल कर देखा—'देवाधिदेव भगवान शंकर के दर्शनार्थियों की भीड़!

दर्शनार्थी पुजारी जी की गोद में रक्त से लथपथ नवजात शिशु देखकर आश्चर्य-चकित हो उठे। कुछ लोग छूत के भय से कुछ पीछे हटे, और कुछ लोग उत्सुकता वश और समीप चले गये। पुजारी जी नम्र स्वर मे बोल पड़े—आप प्रति दिन प्रभात में मौन शंकर का दर्शन करते थे। आज ऐसे शंकर का दर्शन

कीजिये, जो अपनी अस्पष्ट डमरू की ध्वनि से आकाश-पाताल को एक कर रहे है !'

पुजारी जी ने अपनी बात समाप्त कर दर्शनार्थियो की ओर दुख भरी दृष्टि से देखा। दर्शनार्थी कुछ देर तक मौन होकर पुजारी जी की ओर देखते रहे। फिर सब की जबाने एक साथ ही चल पड़ीं—"किसका बच्चा है यह पुजारी जी ! कहाँ मिला, यह आपको !! अभी - अभी का तो पैदा हुआ जान पड़ता है !" कोई-कोई पुजारी जी की बगल से मन्दिर में भी घुस गया, और मन्दिर के भीतर से निकल कर किसी-किसी ने कहा—अजी कलियुग है, कलियुग !! अब जब मन्दिर में भी पाप का अभिनय होने लगा, तो संसार कैसे रह सकेगा ? बात मुँह से निकली और पंख फैलाकर चारों ओर फैल गई। जिसे देखिये, वही मन्दिर में दौड़ा चला आ रहा है, और मन्दिर की कोठरी में बैठी हुई युवती तथा पुजारी जी की गोद मे खेलते हुये शिशु को घूर-घूर कर देख रहा है। साथ ही दोनों पर तरह-तरह के प्रश्नों की बौछार ! कोई कुछ कह रहा है, तो कोई कुछ; पर पुजारी जी निरुत्तर ! नवजात बालक को गोद में लिये हुये भीड़ के सामने चुपचाप खड़े हैं, और वह नवजात बालक मानों पुजारी जी की गोद में दुबक कर उनसे अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना कर रहा हो !!

मन्दिर में यह पाप लीला !—कोई भीड़ मे प्रवेश करते हुआ बोल उठा। लोगों ने देखा, गाँव के जमीदार बलवन्त सिह।

भीड़ ने भी स्तोत्र की तरह उन्हीं की वाणी का जाप किया, और फिर इसके पश्चात् जो कुछ हुआ, उसे लिखते समय लेखनी की नोक मुड़ जाती है।

[३]

प्रभात का समय था। सूर्य की किरणें सारे जगत को अपने रंग मे रँग रही थीं। युवक अपने कमरे में चारपाई पर पड़ा हुआ ज्वर से तड़प रहा था। उसने कई बार चारपाई से उठने का प्रयत्न किया किन्तु ज्वर ने उसे ऐसा आक्रान्त कर लिया था कि वह उठ न सका। वह कभी विवश की भाँति खिड़की की ओर देखता, और कभी पीड़ा से कराह उठता। अभी वह एक कराह के साथ करवट बदल रहा था, कि उसकी माँ ने कमरे में प्रवेश करके धीरे से कहा—बेटा रंजन, तुमने कुछ सुना!

क्या है माँ!—रंजन ने अपनी माँ की आकृति पर दृष्टि डालते हुये पूछा।

बड़े दुख की बात है बेटा!—रंजन की माँ ने अपने नेत्रों मे दुख के साथ घृणा उँडेलते हुये कहा—वह मन्दिर का पुजारी! सुना है बेटा, उसने मन्दिर में एक औरत रख छोड़ी थी और उसे आज रात मे बच्चा पैदा हुआ है। कितना पापी था यह पुजारी! गाँव वालों ने उसे मन्दिर से बाहर निकाल दिया है!

रंजन की रग-रग में एक बिजली-सी दौड़ पड़ी। कुछ देर पहले जो वह प्रयास करने पर भी उठ न पाता था, एक झोंके में

ही चारपाई पर उठकर बैठ गया और कह उठा—क्या तुम सच कह रही हो माँ।

हाँ बेटा!—रंजन की माँ ने रंजन की ओर देखते हुये उत्तर दिया—सारा गाँव मन्दिर पर एकत्र है। इस पुजारी को और कहीं कोई स्थान न मिला। अधम ने पूर्वजों के बनाये हुये शंकर के मन्दिर को भ्रष्ट कर डाला।

रंजन की माँ की बात अभी समाप्त भी न हो पाई थी, कि जैसे सुइच दबाने से बिजली की लहरें दौड़ पड़ती हैं, उसी प्रकार रंजन चारपाई से उठ कर बाहर की ओर दौड़ पड़ा। रंजन की माँ ने आँखों में आश्चर्य भर कर जोर से कहा—बेटा रंजन, बेटा रंजन, तुम्हें ज्वर, तुम्हें ज्वर!!

पर रंजन कदाचित् ही अपनी माँ की बात को सुन पाया हो। वह आँधी ही की भाँति उठा, और आँधी ही की भाँति चल कर मन्दिर पर जा पहुँचा। मन्दिर के बाहर पुजारी, और युवती को घेर कर भीड़ खड़ी थी। कोई उन दोनों को पापी कह रहा था, और कोई नारकी। कुछ ऐसे लोग भी थे, जो दोनों के ऊपर मुँह का थूक उगल कर अधिक धार्मिक होने की सूचना दे रहे थे। रंजन भीड़ को चीरता हुआ बीच में जा पहुँचा, और रोष भरी दृष्टि से सब की ओर देखता हुआ बोल उठा—क्या करते हो दुष्टो!!

रंजन की वाणी से भीड़ कुछ क्षण के लिये निस्तब्ध हो उठी,

और फिर कोई भीड़ में से चिल्ला कर बोल उठा—यह पापी है, इसने मन्दिर को भ्रष्ट किया है।

कौन पापी है!—रंजन कड़क कर बोल उठा—तुम, जो एक नवजात शिशु और प्रसूता को यंत्रणा की झाड़ी में घसीट रहे हो, या यह बाबा, जिन्होंने इस अभागिनी को अपने स्नेह के आँचल मे आश्रय दिया है। आश्चर्य है, तुम सब शंकर के मन्दिर के पास, उन्ही की आँखों के सामने, ऐसा अमानवी कृत्य कर रहे हो, और फिर भी शंकर भगवान मौन है। उनकी तीसरी आँख खुल कर तुम सब को जला कर भस्म क्यों नही कर देती!

भीड़ मे से कोई अधिकार-सूचक स्वर मे बोल उठा—रंजन!

रंजन ने देखा, उसके पिता बलवन्त सिंह। पर वह रंच मात्र भी विचलित न हुआ, और पुनः आवेग के स्वर में बोल उठा—मैं ठीक कह रहा हूँ पिता जी! यह मानवता के लिये कलंक है, भीषण कलंक है। मैं भगवान शंकर के सामने मानवता की छाती पर ऐसा गर्हित कलंक कभी न लगने दूँगा। लाइये बाबा, बच्चे को मेरी गोद में दीजिये। यह मेरा है, यह मेरा है!

पुजारी जी ने आश्चर्य से रंजन की ओर देखा। रंजन ने भीड़ के सामने बच्चे को अपनी गोद में ले लिया और पुजारी जी की ओर देखते हुये वह बोल उठा—बाबा! आपको विस्मय होता होगा। आप सोचते होंगे, यह रंजन मानवता के पवित्र अंचल मे काले सितारे टाँकने वाला कैसा नारकी युवक है। पर मै भगवान शंकर की शपथ खाकर कहता हूँ बाबा, कि कल के पूर्व मैंने इस

युवती को कभी देखा भी नहीं था। पर आज जब समाज ने अपने पापों के समुद्र को मथ कर विष निकाला है, तब उसे पान करने वाला कोई तो होना ही चाहिये। भगवान शंकर के आदेश से मैं आज उस विष का पान कर रहा हूँ। यह बच्चा मेरा है, और यह युवती मेरी स्त्री। चलिये बाबा, भगवान शंकर की मूर्ति के सामने हम दोनों के जीवन की गाँठ जोड़ दीजिये!

कुछ ही क्षणों के पश्चात् पुजारी जी रंजन और युवती को लेकर शंकर की मूर्ति की ओर जा रहे थे, और भीड़ टकटकी लगा कर आश्चर्य-चकित दृष्टि से उनकी ओर देख रही थी।

काँच की चूड़ियाँ

उन दोनों की ही दृष्टि उस पर थी। उसी पर—नैना पर। चौदह-पन्द्रह वर्ष का वय, गौर वर्ण, बड़ी-बड़ी आँखें, और शरीर के अंग-अंग में यौवन का उभार। नैना जब घाँघरा पहन कर, सिर पर ओढ़नी डाले हुये, तालाब पर पानी लेने के लिये जाती तो उसे देखते ही दोनों के हृदय में हलचल-सी मच जाती। दोनों को भीतर ही भीतर ऐसा लगता, मानों नैना की आँखों ने उनके हृदय के प्यालों में कोई मादक रस घोल दिया हो, और उनका मन उसी में डूबा जा रहा हो! रागी कभी-कभी उसी रस की विभोरता में कुछ गा उठता, और कभी-कभी नैना की आँखों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये संकेत भी कर देता। कभी वह नैना की ओर देख कर अपनी भरी हुई भुजाओं की ओर भी देखता, और कभी-कभी अपनी श्यामल गाढ़ी रेख पर हाथ भी फेरता, पर चन्दन जब नैना को देखता, तो यह सब कुछ न करता। वह जब नैना को देखता, तो उसकी ओर देखता ही रह जाता। नैना की आँखों में छलकती हुई

मदकता से भर तो चन्दन का हृदय भी जाता; पर उसके अधरों से कुछ फूटता न ! ऐसा लगता, मानों वह भीतर ही भीतर उसी में अपने मन को डुबो रहा हो।

नैना रागी और चन्दन, दोनो की गति विधि को देखती। दोनो उसी की बिरादरी के थे, और दोनों ही अपने-अपने हृदय मे यह आकांक्षा लेकर उसके जीवन मे प्रवेश कर रहे थे, कि यह नैना, जो अब कुसुमित हो उठी है, उनकी होकर अपना पराग उनके जीवन-अंचलमे डाल दे; पर नैना न जाने क्यों, रागी की गति-विधि को देखकर खीझ उठती, और उसके हृदय मे घृणा की एक लहर भी दौड़ पड़ती। कभी-कभी रागी जब नैना को आकर्षित करने के लिये संकेत करता, तो पहले तो नैना उसकी ओर देखती न; किन्तु जब देखती तो व्यंग्य से उसे चिढ़ा दिया करती थी। रागी नैना के इस व्यंग्य का न जाने क्या अर्थ लगा कर मुसुकुरा देता ! पर नैना उसकी मुसुकुराहट को देख कर घृणा से भर जाती; और इस प्रकार अपना मुँह फेर लेती; मानों अपने हृदय की उपेक्षा निकाल कर उसके मुँह पर पटक रही हो।

पर नैना जब चन्दन की ओर देखती तो उसमे साहस न होता, कि वह अपनी पलको का कपाट बन्द कर ले। वह जब उसे देखती तो कुछ क्षणो तक देखती ही रह जाती थी। उसकी पलको की कपाट उसे देखने के लिये बार-बार ऐसी खुली पड़ती थी, मानों उसके नेत्रों मे कोई आँधी चल रही हो। कभी नैना और चन्दन की आँखे' जब 'चार' हो जाती, तो चन्दन के अधरों

पर मुसुकुराहट आने के पूर्व ही नैना हँस दिया करती थी। कभी-कभी जब दोनों एकान्त में बगीचे और तालाब पर मिलते, तो चन्दन उसकी ओर देखता हुआ पूछ बैठता—"कहो नैना अच्छी तो हो!"

चन्दन की बात को सुन कर नैना कुछ उत्तर तो न देती: किन्तु इस प्रकार मुसुकुरा देती, मानो अपनी मुसुकुराहट की भाषा में ही वह कह रही हो—"हाँ अच्छी तो हूँ, और तुम!" नैना के अधरों पर मुसुकुराहट देख कर चन्दन भी मुसुकुरा देता। इसी मुसुकुराहट ने तो चन्दन और नैना के मन का गठ-बन्धन कर दिया। मन का ही नहीं, हृदय और प्राण का भी।

श्रावण और भाद्र के दिन थे। आम्र की वारी 'झर' कर कंगाल हो चुकी थी। आकाश में काले-काले मेघ और नीचे हरी चादर का अवगुंठन डाले हुये प्रकृति! चन्दन आम्र की एक झुकी हुई डाल पर बैठा हुआ बड़ी तन्मयता से प्रकृति के अव-गुंठन की ओर देख रहा था। एक ओर लहराता हुआ स्वच्छ ताल, और दूसरी ओर पृथ्वी के अंचल से मुँह निकाल कर झाँकते हुये धान के हरे-हरे पौदे। चन्दन की आँखें. और उसका मन भी, मखमल की भाँति सामने बिछी हुई हरीतिमा से नाच उठा, और आनन्द की उसी विभोरता में उसने अपनी बाँसुरी उठाई, और अपने अधरों पर लगा ली।

आकाश में छाये हुये बादलों और प्रकृति की हरीतिमा को देखकर कोयल के हृदय में भी गुदगुदी उत्पन्न हो उठी थी; और

वह भी अपनी विभोरता मे 'कू-कू' कर रही थी। एक दूसरी ओर पपीहा भी 'पी कहॉ, 'पी कहॉ' की ध्वनि के रूप मे अपनी एकान्तता की वेदना को अनन्त के पट पर लिख रहा था। अब चन्दन की वॉसुरी का रव भी आम्र की वारी मे विखर पड़ा। वह अपनी वॉसुरी के उसी रव मे झूम-झूम कर गाने लगा—"आया सावन का महीना, जिया न माने हमार !"

गीत का स्वर वॉसुरी के स्वरो मे लिपटा हुआ दूर तक गूॅज गया। कोकिल भी चुप हो गया, और पपीहा भी। सामने मैदान में चरती हुई गायें सिर उठा कर आम्र की वारी की ओर निहार उठीं। मानों चन्दन की वॉसुरी ने उनके हृदय मे पूर्व संस्कार जागृत कर दिये हों, और उन्हें 'गोपाल'की भ्रान्ति हो गई हो। 'गोपाल' तो नहीं थे; हॉ उनका चीन्हा-पहिचाना 'चन्दन' आम्र की डाल पर वैठा हुआ वॉसुरी वजा रहा था! गायें फिर चरने लगीं; पर वॉसुरी के स्वरों में चन्दन के हृदय का जो दर्द लिपटा हुआ था, उससे गायें वीच-वीच मे उसकी ओर निहार ही उठती थीं।

चन्दन की वाँसुरी अभी वज रही थी, कि पीछे से कोयल कूक उठी—"कू-कू"! चन्दन अपने आनन्द के प्रवाह में वहा जा रहा था—वही, "आया सावन का महीना, जिया न माने हमार!" कहॉ कोयल कूकती है, और कहॉ पपीहा! चन्दन चारों ओर से वेखवर होकर केवल अपने में तन्मय था; पर फिर उसके पीछे

कोयल कूक उठी—"कू-कू"।

चन्दन को ऐसा लगा, मानो उसके संगीत का क्रम बिखर गया हो, और अब वह बाँसुरी भी कह रही हो "कू-कू"। चन्दन को ऐसा भी लगा, मानों कोयल की यह 'कू कू' उसके अधिक सन्निकट आती जा रही है। चन्दन कुछ क्षणों के लिये बाँसुरी बजाना बन्द करके सोचने लगा; किन्तु कुछ ही क्षणों के पश्चात् पुनः उसकी बाँसुरी बज उठी, और पुनः वही "कू-कू"! चन्दन आश्चर्य-चकित होकर पीछे की ओर निहार उठा—वृक्ष की ओट से नैना झाँक रही थी!

चन्दन और नैना, दोनों की आँखें एक दूसरे से मिल गईं, और दोनों ही की आँखें, और अधर हँसने के साथ ही उनका मन भी हँस पड़ा। नैना वृक्ष की ओट से बाहर निकल आई। धानी रंग का लहँगा, और उसी से मिलते-जुलते रंग की ओढ़नी। प्रकृति के उस हरे आँगन में नैना बड़ी भली लग रही थी। चन्दन कुछ देर तक उसे देखता रहा, और फिर बोल उठा—नैना! तू कहाँ जा रही है?

वाह!—नैना ने आँखें नचा कर उत्तर दिया—तुम भी कैसे आदमी हो जी! बाँसुरी बजाकर बुलाते हो, और पूछते हो, कहाँ जा रही हो नैना!!

नैना और चन्दन, दोनो ही एक दूसरे की ओर देखकर हँस पड़े। नैना अब तक वृक्ष की डाल के समीप पहुँच गई थी। चन्दन आँखों में हास्य भर कर नैना की ओर कुछ देर तक

देखता रहा। फिर कुछ सोच कर बोल उठा—नैना, तू जानती है, हम दोनों किस ओर बढ़े जा रहे हैं!

मैं यह तो नही जानती!—नैना ने चन्दन की ओर देख कर उत्तर दिया—किन्तु इतना जानती हूँ, कि हम और तुम किसी ओर बढ़े अवश्य जा रहे हैं। किस ओर जा रहे हैं, कहाँ जा रहे हैं, यह तो मैं नहीं जानती चन्दन!!

चन्दन अपनी बात समाप्त करके कुछ सोचने-सा लगा था। नैना की बात उसने सुनी या नही, किन्तु जब नैना अपनी बात समाप्त कर चुकी, तब चन्दन उसकी ओर देख कर पुनः बोल उठा—मान लो नैना, हम तुम दोनो जिस पगदंडी पर चल रहे है, लोग उसे देख न सकें, और बिगाड़ दें, या यही करें, कि हम दोनों में से किसी को बलात् पकड़ कर विलग कर दें!

चन्दन ने अपनी बात समाप्त करके एक दीर्घ निश्वास ली। मानों चन्दन के भीतर से निकली हुई वह निश्वास वह हवा हो, जो समुद्र से भाप उड़ा कर ऊपर ले जाती है, और उसे बादलो के रूप मे ढाल देती है। इधर चन्दन के हृदय से दीर्घ निश्वास निकली, और उधर नैना की ऑखो में दुख की बदली-सी छा गई। चन्दन ने देखा, नैना की ऑखों की ओर। नैना की आँखें उमड़ी चली आ रही थी। चन्दन पुनः बोल उठा—नैना तुम उदास हो गई! सच कहता हूँ नैना, कभी-कभी मेरा हृदय यह सोच कर कॉप उठता है, कि तुम्हारे बापू तुम्हारा विवाह रागी के साथ न कर दें; क्योकि तुम जानती

हो नैना, रागी फौज में नौकर है, और वह रुपया भी कमाता है।

नैना की आँखो मे जो दुःख की बदली छाई हुई थी, वह अब बूँद-बूँद मे बरसने-सी लगी। चन्दन उसकी आँखों को बरसती हुई देख कर पुनः बोल उठा—तुम रो रही हो नैना! सचमुच नैना, यदि कहीं ऐसा हुआ तो फिर, तो फिर''''''!!

चन्दन कुछ और कहना चाहता था, किन्तु जैसे उसकी वाणी अवरुद्ध-सी हो उठी हो, और उसके कंठ मे इतनी वेदना उमड़ आई हो, कि वह अब कुछ भी कहने मे असमर्थ बन गया हो। नैना ने अपनी भरी हुई आँखों से चन्दन की ओर देखा, और फिर वह अधिक आर्द्र कंठ से बोल उठी—क्या ऐसा भी हो सकता है चन्दन! तुम्हारा मन कैसे इस बात को सोच सका चन्दन!!

नैना कहते-कहते बिखर पड़ी। ऐसा ज्ञात हुआ, मानों चन्दन ने जो बात कही, उसकी नैना के हृदय मे कल्पना तक न थी, और उसने नैना के हृदय मे वेदना का ज्वार उत्पन्न कर दिया हो। चन्दन शीघ्र नैना की ओर देखता हुआ बोल उठा—क्षमा करो नैना! मुझे ज्ञात न था, कि वियोग के कथन-मात्र से तुम्हारे हृदय को इतना कष्ट होगा! आज मैने समझा नैना, कि अब हम दोनों को संसार की कोई शक्ति विलग न कर सकेगी!!

चन्दन ने अपना रुमाल उठाया, कि वह उससे नैना की भरी हुई आँखो को पोछ दे, पर वह पत्रों के खड़कने से रुक गया।

और इधर-उधर देखने लगा। नैना ने भी तुरन्त अपनी आंखों के आँसू पोंछ लिये; और इधर-उधर देख कर वह बोल उठी—अच्छा, अब जाती हूँ चन्दन!

चन्दन ने एक बार इधर-उधर दृष्टि घुमा कर देखा; और फिर वह बोल उठा—अभी न जाओ नैना! कुछ देर और रुको।

नैना कुछ कहने ही जा रही थी, कि चन्दन जेब से हरे रंग की आठ-दस कॉच की चूड़ियां निकाल कर बोल उठा—नैना, कल्ह मैं श्रावणी के मेले मे गया था। ये चूड़ियाँ तुम्हारे लिये लाया हूँ। कल्ह से ही मै तुम्हे खोज रहा था नैना; किन्तु तुम न मिली। ये अच्छी तो हैं! तुम्हारी कलाई मे ये चूड़ियां बड़ी भली लगेंगी नैना!

नैना ने कुछ उत्तर न दिया। वह केवल ध्यान से चूड़ियों की ओर देखती भर रही। मानो चुप चाप चन्दन की बात का प्रतिपादन कर रही हो! चन्दन ने हाथ आगे बढ़ा कर नैना की कलाई पकड़ ली, और उसके दोनो हाथो में दो-दो चूड़ियाँ डाल कर वह उसे इस प्रकार देखने लगा, मानों उसके जीवन की समस्त आकांक्षा उसी मे निवास करती हो। नैना ने एक बार चन्दन की ओर देखा, और फिर अपनी कलाई मे पड़ी हुई चूड़ियों की ओर। नैना चूड़ियों की ओर देखती हुई कुछ देर तक सोचती रही, फिर वह बोल उठी—चन्दन, चूड़ियां तो तुमने मुझे पहना दीं; किन्तु देखो इन चूड़ियों को तुम भूल मत जाना!

और तुम भी इन चूड़ियों की लाज रखना नैना !—चन्दन बोल उठा !

चन्दन की बात समाप्त ही हो पाई थी, कि कोई पीछे से बोल उठा—'क्यों न लाज रक्खेगी चन्दन ! तुम्हारे हाथ की पहनाई हुई चूड़ियाँ और नैना लाज न रक्खे !!

चन्दन और नैना, दोनों ने ही आश्चर्य-चकित होकर पीछे की ओर देखा—"रागी !" नैना रागी को देखते ही खिसक गई, और रागी चन्दन के समीप से तीव्र आँखों से उसे देखता हुआ इस प्रकार निकल गया, मानों मौन रूप में उससे कह गया हो, चन्दन, सावधान ! चन्दन ने अपने हृदय पर हाथ रख कर देखा, तो उसका हृदय धक्-धक् कर रहा था। ऐसा लग रहा था, मानों उसके हृदय-प्रदेश में भूचाल आ गया हो ! चन्दन आत्म-विस्मृत होकर अपना हृदय दबाये आम की उसी डाल पर बैठा रहा। इस आत्म-विस्मृति में उसकी बाँसुरी नीचे गिर पड़ी थी, और धवल रंग की एक धेनु रह-रह कर उसे मुख से उठा रही थी ! मानों वह उसे गोपाल की बाँसुरी समझ कर अपने अधरों पर रखने का प्रयत्न कर रही हो; पर वह बाँसुरी बार-बार उसके मुख से नीचे गिर कर उसकी भ्रान्ति प्रकट कर रही हो !

[२]

यमुना तट से कुछ दूर, व्रज में गूजरों का वह एक छोटा सा ग्राम ! कृत्रिम जीवन से दूर प्रकृति की गोद में सब रहते हैं, और प्राकृतिक साधनों से ही अपने तन का अभिसार भी करते हैं।

प्रकृति की गोद में जो रहता है, उसके पास चाहे और कोई वस्तु न हो, पर प्रकृति अपने महाप्रसाद के रूप में उसे बल, स्वास्थ्य, और पौरुष अवश्य प्रदान करती है। उस गाँव के युवकों की तो कोई बात ही नहीं, बूढ़े भी प्रकृति के इस महाप्रसाद के फल-स्वरूप अपनी छाती पर पहाड़ उठाने में 'हाँ' 'ना' नहीं करते! युद्ध हो, या शान्ति; ऐसे मनुष्य सर्वत्र सब काल में बड़े कारगर सिद्ध होते हैं। युद्ध के दिनों में तो ऐसे मनुष्यों पर सर्व प्रथम निगाह उठती है। कहना न होगा, कि गत महा युद्ध जब आरंभ हुआ, तो इस गाँव के कई युवक सेना में भरती हो गये। कई तो ट्रेनिंग पाने पर दूर-सुदूर देश में भी लड़ने के लिये भेज दिये गये! उनमें कई युद्ध-भूमि में आहत होकर सदा के लिये साँस तोड़ गये, और कई पंगु बन कर घर लौट आये; पर रागी सेना में भरती होने पर भी जिला के कैम्प में ही रहा! रागी का बाप गाँव का चौधरी था, और उसने आस-पास के सैकड़ों उठते हुये युवकों को सेना में भरती कराकर 'साहबों' के दिल में अपने लिये एक थोड़ी सी जगह बना ली थी। 'रागी' का जिला कैम्प में यह रहना 'साहबों' की इसी प्रसन्नता का एक छोटा-सा कण था!

कई बार चन्दन के भी सेना में भरती होने की बात उठी। चौधरी ने कई बार उससे भी कहा, कि चन्दन! तू सेना में भरती हो जा। भाग्य ने यदि साथ दिया तो शीघ्र ही हवलदार बन जायगा; पर चन्दन का मन कभी राजी न हुआ। आम्र की हरी-

हरी बारियाँ, तरह-तरह के अनाजों के हरे-भरे पौदों से लहराते हुये खेत, गाँव के किनारे का वह तालाब, और सूर्य अस्त होने पर 'सेवार' में जाकर बाँसुरी का बजाना; और अब तो इन सब से अधिक नैना का आकर्षण ! चन्दन का मन गाँव छोड़ने को न करता। जब चौधरी उससे सेना में भरती होने के लिये कहता, तो चन्दन यह कह कर उसे शान्त कर दिया करता था—"काका, किसी को गाँव में भी तो रहना चाहिये। आखिर सब सेना में ही भरती होकर गाँव के बाहर चले जायँगे, तो तुम बूढ़ों की सेवा कौन करेगा ?"

सेवा-सुश्रुषा की बात से तो नहीं, किन्तु चन्दन जिस ढंग से बात कहता, उससे अवश्य चौधरी चुप हो जाता; पर वह आज कई दिनों से चन्दन से खीझा-सा हुआ था। चन्दन जब उससे पालागन करता, तो या तो वह उत्तर न देता, और यदि उत्तर देता तो बहुत ही मन्द स्वर से उपेक्षा के साथ। चन्दन मन ही मन सोचता, चौधरी कुछ असन्तुष्ट-सा जान पड़ता है, पर क्यों और किस लिये ? चन्दन अपने मन मे घुस कर अपने प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ता, और अधिक ढूँढ़ता, किन्तु उसे किसी कोने में भी कुछ न प्राप्त होता। प्राप्त तो न होता; किन्तु चन्दन का हृदय धड़क अवश्य उठता था। किसी भावी आशंका से, या चौधरी के भय से, कह नहीं सकते !

प्रकृति के मंच पर सन्ध्या खेल रही थी। यद्यपि सूर्य भगवान अभी अस्त न हुये थे, पर उनकी लाल-लाल किरणों, जो क्षितिज

झरोखे से झाँक रही थी, साफ-साफ सूर्य के अस्त होने की घोषणा कर रही थीं। चन्दन ने अपनी बाँसुरी इस विचार से उठाई, कि जब पक्षी चहचहा रहे हैं, और प्रकृति सोने के लिये अलसाई हुई-सी है, वह भी सेवार मे जाकर अपनी बाँसुरी की मधुर धारा बहाये। नैना ने भी तो उससे कहा है कि वह सन्ध्या समय सेवार में उससे मिलेगी। सन्ध्या के समय का एकान्तपूर्ण प्रकृति का आँगन, बाँसुरी की मधुर धारा, और नैना के साथ वह! स्मृति मात्र से ही चन्दन का हृदय आनन्द-उन्माद से भर गया, और वह 'सेवार' में जाने के लिये 'बाँसुरी' लेकर घर से बाहर निकला। अभी वह अपने द्वार से दस-ही पन्द्रह पग आगे बढ़ पाया था, कि कोई पीछे से बोल उठा—चन्दन!

चन्दन ने पीछे फिर कर देखा—"चौधरी!" चन्दन कुछ देर तक विस्मय की दृष्टि से चौधरी की ओर देखता रहा। फिर उसी की ओर देखता-देखता बोल उठा—पालागन काका! कहिये क्या बात है?

चौधरी ने चन्दन के वाक्य के प्रारंभिक अंश को सुना या नहीं, किन्तु वह उसके पालागन के संबंध में कुछ भी न कह कर बोल उठा—चन्दन! तुम्हें सूबेदार साहब ने बुलाया है। कल्ह सवेरे मेरे साथ चलना, भला!

सूबेदार साहब ने! चन्दन के शरीर के भीतरी तार-तार झन-झना उठे, और उसे ऐसा लगा, मानो किसी भयानक अंधड़ ने उसकी हृदय-लता को हिला दिया हो! चन्दन जब तक कुछ पूछे,

पूछे; उसने देखा, चौधरी चला जा रहा है। मानो सूबेदार का आदेश सुना कर उससे कह गया हो, चन्दन, चौधरी के लड़के रागी के 'धन' को छीन कर तू कहाँ रहेगा !

चन्दन के पैर मे पत्थर-सा बँध गया। कुछ देर पूर्व उसके मन में उन्माद की जो धारा वह रही थी, वह मन के भीतर ही भीतर ऐसी अदृश्य हो गई, जैसे कोई नदी बहते-बहते रेगिस्तान के अंचल में मुँह छिपा लेती है ! चन्दन खड़ा-खड़ा सोचने लगा—'यह सूबेदार ! क्यों बुलाया होगा उसने मुझे ? अवश्य रागी ने चौधरी से मेरी शिकायत की है, और चौधरी ने नमक-मिर्च लगा कर उसके कान भरे है ! तो क्या यह गाँव, गाँव के ये हरे-भरे खेत. और खेतो की मेड़ो पर चित्र पट की भाँति डोलती हुई नैना ! सब के सब अब मुझसे छूट जायँगे ! नैना, कैसे छोड़ सकूँगा मैं नैना को !! नहीं, नहीं, मैं नैना से विलग न हो सकूँगा ! सूबेदार के पास जाकर साफ-साफ कह दूँगा, साहब मैं अपने गाँव से कहीं न जाऊँगा—"पर यह चौधरी !"

चन्दन का हृदय पत्ते की भाँति काँप उठा। उसके एक मन ने कहा, कि वह आज 'सेवार' न जाय, और निराशा के अंचल में मुँह छिपा कर अंधकार में सो जाय; किन्तु उसके दूसरे मन के भीतर से नैना झाँक उठी ! नैना, वह सेवार में उसकी प्रतीक्षा करती होगी ! उसकी बाँसुरी के मधुर स्वर को सुनने के लिये अपने कानो के परदे खोल कर बैठी होगी ! यदि वह न जायगा, तो क्या सोचेगी नैना अपने मन में !

चन्दन के पैर अनिच्छित मन से 'सेवार' की तरफ उठ पड़े ! पर आज चन्दन के मन मे न उत्साह था, न उमंग। आज उसकी बॉसुरी भी तो मौन थी। आकाश शान्त था; प्रकृति हरे-हरे वस्त्र पहन कर चुपचाप खड़ी थी, और पक्षी ? वे भी अपने कल-रव को छोड़ कर नीड़ के झरोखे से झाँक रहे थे। मानों सब के सब आश्चर्य-चकित दृष्टि से चन्दन और उसकी मौन बाँसुरी की ओर देख रहे हो, और देख-देख कर कुछ सोच रहे हो। सेवार मे चन्दन की प्रतीक्षा मे बैठी हुई नैना ने भी दूर से चन्दन को देखा। आज चन्दन के पैरों में उत्साह की गति न थी, और न थिरक रही थी उसके अधरो पर बॉसुरी। नैना भी आश्चर्य-चकित हो उठी और सोचने लगी—यह चन्दन आज बॉसुरी क्यो नहीं बजा रहा है ? यह आज अपनी बॉसुरी के स्वरो में यह गा क्यों नहीं रहा है—"सजनी तुम्हारी सुधिया, छाय रही जियरा हमार !"

नैना ऑखो मे विस्मय भर कर चन्दन की ओर देखने लगी। चन्दन अब तक उसके अधिक समीप आ गया था। नैना ने देखा, चन्दन की आकृति पर उदासीनता की बदली डोल रही है। दूसरे दिनो की भॉति ही नैना को देखते ही चन्दन ने अपने अधरों पर मुसुकुराहट लाने का अवश्य प्रयत्न किया, किन्तु आज उसके अधरो पर जो मुसुकुराहट आई, उसमे पूर्व के दिनों की भॉति उन्माद और माधुर्य न था ! नैना कुछ देर तक चन्दन की ओर देखती रही, और फिर बोल उठी—चन्दन, आज तू अधिक उदास-सा दिखाई दे रहा है !

नहीं तो नैना !—चन्दन ने अधरों पर मुसुकुराहट लाने का प्रयत्न करते हुये कहा।

मुझसे छिपा रहे हो चन्दन !—नैना ने अपने स्वरों में प्रेम उँडेल कर कहा—तुम्हारे हृदय में रह कर भी क्या मैं यह नहीं जान सकती चन्दन, कि तुम उदास हो, या उत्फुल्ल ? यदि तुम उदास नहीं हो चन्दन तो कहो, आज तुम्हारी बाँसुरी क्यों नहीं बज रही है, आज तुम्हारी बाँसुरी के स्वरों में छिटक कर संगीत क्यों नहीं प्रकृति के मन को गुदगुदा रहा है और आज जब तुम हँसते हो, तब क्यों उसमें तुम्हारा हृदय फूटता हुआ नहीं दृष्टिगोचर होता चन्दन, क्यों ?

चन्दन का मस्तक नैना के सम्मुख झुक गया। मानों, मौन रूप में उसने यह स्वीकार कर लिया हो, कि "नैना तू जो कुछ कह रही है, बिलकुल सच कह रही है।" पर नैना को तो केवल इतने से ही संतोष न होगा! वह चन्दन की ओर देखती हुई पुनः बोल उठी—सच बताओ चन्दन, क्या आज तुम उदास नहीं हो ?

चन्दन नत मस्तक होकर कुछ देर तक सोचता रहा। फिर बोल उठा—तुम सच कहती हो नैना, मैं आज उदास हूँ। उदास ही नहीं हूँ नैना, अधिक उदास हूँ! नैना........!

कहो चन्दन !—नैना ने पीड़ा के स्वर में कहा—रुक क्यों गये चन्दन ? बोलो, आज तुम क्यों उदास हो ?

चन्दन ने नैना की आकृति की ओर देखा। स्पष्टतः उसकी आकृति पर विषाद की काली घटा घिर आई थी। चन्दन उसी

की ओर देखता-देखता बोल उठा—नैना, कल्ह सवेरे सूबेदार ने मुझे बुलाया है ! चौधरी काका कहने आये थे !"

सूबेदार ने !—नैना के मुख से अपने आप निकल पड़ा, और वह जैसे कॉप सी उठी ! "यह सूबेदार ! वही, जो फौज मे लोगो की भरती किया करता है। फौज में भरती होकर न जाने कितने मर गये, और जो लौट कर आये भी है, उनमे कइयों के पैर कटे हुये हैं, और कइयों के हाथ, तो क्या चन्दन भी फौज मे भरती होगा। न, न, चन्दन को मैं सेना मे न भरती होने दूँगी !" नैना एक क्षण में ही सोच गई, और सोचते-सोचते बोल उठी—सूबेदार ने तुम्हे क्यों बुलाया है चन्दन ! चौधरी ने तुम्हें कुछ बताया नही !

चौधरी ने तो कुछ नहीं बताया नैना !—चन्दन ने पीड़ा के स्वर में उत्तर दिया—किन्तु नैना, ऐसा लगता है, कि सूबेदार ने मुझे सेना में भरती होने के लिये बुलाया होगा !

तो क्या तुम सेना मे भरती हो जाओगे चन्दन !—नैना ने दुख के साथ कहा !

होना तो नही चाहता नैना !—चन्दन ने गंभीरता के साथ उत्तर दिया—किन्तु कदाचित् होना पड़ेगा !

नही चन्दन !—नैना दुःख के आवेग मे बोल उठी—तुम सेना मे न भरती हो चन्दन ! सूबेदार ने बुलाया है, बुलाने दो ! तुम उसके पास जाओ ही मत चन्दन !

यह कैसे हो सकता है नैना !—चन्दन ने विवशता के साथ

उत्तर दिया—तुम नहीं जानती नैना, कि यदि मै कल्ह सूबेदार के पास न गया तो उसका फल बड़ा भयानक होगा। सूबेदार मुझे गिरफ्तार करा लेगा नैना! हो सकता है, निरपराध होने पर भी कई अपराध मुझ परे आरोपित किये जायँ, और फिर कई वर्षों तक........!

पर चन्दन!—नैना कुछ सोचती हुई बोल उठी—क्या यह नहीं हो सकता, कि उसके पूर्व ही हम और तुम......!

हो क्यों नहीं सकता नैना!—चन्दन ने उत्तर दिया—किन्तु नैना, वह जीवन बड़ा कलंकित होगा। ईश्वर पर विश्वास रक्खो नैना! यदि हम-तुम सच्चे हृदय से एक दूसरे को प्यार करते हैं, तो विलग रह कर के भी एक साथ ही रहेंगे, और फिर निश्चय-पूर्वक यह कह भी नहीं सकते कि सूबेदार ने हमें किस लिये बुलाया है!

नैना ने चन्दन की ओर देखा। नैना को ऐसा लगा, मानों चन्दन उसके टूटते हुये हृदय को संतोष देने का प्रयत्न कर रहा हो! नैना बोल उठी—नही चन्दन, तुम सूबेदार के पास न जाओ! न जाने क्यों मेरा हृदय काँप रहा है चन्दन, और मुझे ऐसा लग रहा है, कि तुम मुझसे दूर, बहुत दूर चले जा रहे हो!

नैना की आँखें सजल हो उठीं! चन्दन अपने रूमाल से उसकी आँखों के आँसू पोंछते हुये बोल उठा—नैना! तुम रो रही हो। देखो, नैना, ईश्वर पर भरोसा रक्खो। सच कहता हूँ नैना, हम और तुम कभी विलग न होंगे।

चन्दन अभी अपनी बात समाप्त ही कर रहा था, कि कोई दूर पर गा उठा—"गहरी नदिया नाव पुरानी, केवट है मतवार !" चन्दन ने सतर्क होकर इस राग को सुना; फिर वह बोल उठा—नैना, यह रागी का स्वर है। जान पड़ता है, वह इसी ओर आ रहा है। जाओ नैना, अब यहाँ से चली जाओ। विश्वास रक्खो नैना, हम तुम दोनों कभी विलग न होंगे।

चन्दन अभी अपना कथन समाप्त ही कर रहा था, कि उसके कानों में पुनः गूँज उठा—केवट है मतवार जी, केवट है मतवार !" चन्दन पुनः बोल उठा—जाओ नैना, अब चली जाओ ! रागी इसी ओर आ रहा है।

नैना अपनी बड़ी-बड़ी सजल आँखों से चन्दन की ओर एक बार देखकर धीरे-धीरे चलकर अदृश्य हो गई और चन्दन देर तक उसी 'सेवार' में मिट्टी के एक ढूह पर बैठ कर आकाश की तारिकाओं की ओर देखता रहा। आकाश की उन तारिकाओं में यदि उसे नैना ही दिखाई पड़ती रही हो तो विस्मय क्या ?

[३]

रात्रि का समय था। मनुष्य के भीतर और बाहर, दोनों ही ओर अखंड शान्ति थी, पर चन्दन का मन इसका अपवाद था। बारह बज गये थे, किन्तु फिर भी चन्दन की आँखों ने कपाट बन्द न किये। उसके मन के भीतर एक तुमुल संघर्ष छिड़ा हुआ था। वह सोच रहा था—"तो क्या मैं सेना में भरती होजाऊँ ? पर नैना, सुनेगी तो क्या सोचेगी ? अवश्य उसके मन पर एक

तुषार-सा गिर पड़ेगा। पर सेना मे भरती होने से ही तो मैं नैना से अलग हुआ जाता नहीं ! यह रागी भी तो सेना में नौकर है, और बराबर गाँव में आया करता है। फिर गाँव से यदि बाहर ही रहना पड़ेगा तो क्या ? कुछ दिनों तक नैना के हृदय मे दुख की आँधी अवश्य दौड़ती रहेगी, किन्तु जब मैं रुपया कमाकर गाँव लौटूँगा और नैना के साथ विवाह करूँगा, तो हृदय मे ऐसा सुख-स्रोत फूटेगा, कि वह उसमें डूब जायगी ! देखो न रागी को, कितने अच्छे कपड़े पहनता है, किस सज-धज के साथ रहता है। हो सकता है नैना....! सूबेदार साहब कह रहे थे, चन्दन यदि तू सेना मे भरती हो जा,तो शीघ्र ही हवलदार बन जायगा। हवलदार ! जब मै हवलदार बन कर गाँव मे आऊँगा तो नैना मुझे देखकर कितनी प्रसन्न होगी ! वह मुझे देखते ही अपने सारे दुख भूल जायगी, सारे !! (फिर कुछ रुक कर) किन्तु यदि मैं हवलदार न हो सकूँ, तो भी सेना मे तो मुझे भरती होना ही पड़ेगा ! जरा सी "हाँ ना" करने पर ही सूबेदार जी की आँखें किस प्रकार चढ़ गई थीं ! चौधरी जी ने खूब नमक-मिर्च लगाकर सूबेदार के कान भरे हैं !" चन्दन सोचते ही सोचते सो गया ! मानों चिन्ता ही उसकी आँखों मे नींद बन कर लेट गई हो !!

चन्दन अपनी इच्छा से या अनिच्छा से, चाहे जो समझ लीजिये, सेना में भरती हो गया ! और उसे शीघ्र ही मोर्चे पर जाने का परवाना भी मिल गया। जिस दिन चन्दन को मोर्चे पर जाने का परवाना मिला और रागी उसके सामने से

निकला तो उसके हाथ उसकी मूँछ पर थे। चन्दन ने भी उसे देखते ही अपना मस्तक झुका लिया था। मानो वह कह रहा हो, रागी मै तुम्हारे षडयंत्रों के समक्ष हार अवश्य गया; किन्तु प्रेम के जगत मे तो विजयी मै ही रहूँगा !

चन्दन जब सेना मे भरती होने के लिये जा रहा था, तब उसने नैना से इसकी चर्चा न की। उसने सोचा, हो सकता है नैना अचल अवरोध बनकर पथ में खड़ी हो जाय ! किन्तु जब चन्दन सेना में भरती हो गया, तब सभी गाँव वालो के साथ ही नैना ने भी यह खबर सुनी। नैना के हृदय पर क्या प्रभाव पड़ा, यह तो नैना ही जाने; किन्तु अब वह अधिक उदास रहने लगी थी। उसके अधरो पर न अब पूर्व की सी हँसी थी, और न नेत्रो मे उल्लास ! ऐसा लगता, जैसे उसका उल्लास लुट गया हो, और हँसी आहत हो उठी हो ! सेना में भरती हो जाने पर चन्दन जब नैना से मिला, तब दोनों देर तक मूक बन कर एक दूसरे के सामने खड़े रहे। फिर सजल नेत्रो से चन्दन बोला—नैना क्षमा करो, मै विवश था।" नैना ने कुछ उत्तर न दिया। केवल दो बूँद आँसू नैना के नेत्रो से ढुलक पड़े ! चन्दन उसके आँसुओ को अपने कुर्ते की बाँह पर लेता हुआ बोला उठा—अधीर न हो नैना, ईश्वर मंगल ही करेंगे !" किन्तु चन्दन के अधिक प्रयत्न करने पर भी नैना के हृदय में धैर्य का अंकुर न उगा ! वह या तो आँसू बहाती या सेवार और आम्र की बारी में जाकर चुपचाप बैठी रहती और पुरानी स्मृतियों से खेला करती। चन्दन अब गाँव बहुत कम आता,

और जब आता तो अवसर पाकर नैना उसकी गोद में बिखर पड़ती, और रोती हुई कहती, "चन्दन, अब न जाओ चन्दन !" किन्तु उसे क्या मालूम था, कि चन्दन को तो अब जाना ही पड़ेगा ! चन्दन उसके आँसुओं को पोंछ देता, और कहता—"अधीर न हो नैना !" चन्दन नैना के आँसुओं को पोंछ कर चला जाता और महीनों लौटकर गाँव न आता, किन्तु रागी तो सप्ताह में दो-तीन बार आता, और जब आता, तो नैना के पीछे पड़ जाता। उस समय नैना के मन में यही होता, कि वह खूब जी भर कर रोये, और वह रोती भी; किन्तु उस समय उसके आँसुओं को अपनी बाँह के कुरते पर लेने वाला वहाँ कोई न रहता।

भाद्र का महीना था और हरितालिका व्रत का दिन ! प्रभात होते ही आकाश में काले-काले मेघ घुमड़ने लगे। उधर आकाश में काले-काले मेघ घुमड़ने लगे; और इधर आनन्द में घुमड़ने लगीं विवाहिता और अविवाहिता युवतियाँ ! जिसे देखिये, उसी के अधरों पर हास्य, उन्माद और आनन्द की थिरकन। कोई वर्षों की रक्खी हुई पुरानी साड़ी सन्दूक में से निकाल रहा है, तो किसी की चोटी गुथी जा रही है। कोई दर्पण के सामने स्थित होकर भाल पर बेंदी रचा रहा है, तो किसी के पैर रंग से चित्रित किये जा रहे हैं। आज सब नये वेश मे, नई उमंग में, और नये उत्साह से गाँव की सीमा पर स्थित तालाब पर जायँगी, और डुबकियाँ लगा लगा कर 'जरइयाँ' बोरेंगी। जरइयाँ ! हाँ जरइयाँ, जिन्हें लोग सौभाग्य और मंगल का चिह्न कहते हैं। गीली मिट्टी में

जौ तो नैना ने भी गाड़े थे, और निकल तो उसकी भी जरइयाँ आई थीं। सोचा भी उसने यही था, कि वह हरितालिका के दिन सब के साथ ही अपनी जरइयाँ तालाब में डुबोयेगी, और जब चन्दन लौट कर गाँव आयेगा, तब उसकी शिखा में बाँध देगी; किन्तु जब से उसने सुना है, कि चन्दन मोर्चे पर जा रहा है, वह सब कुछ भूल गई है। आज हरितालिका व्रत के दिन चन्दन का प्रस्थान! नैना अब किसके लिये तालाब मे जाकर जरइयाँ डुबोये, और वह अब किसे दिखाने के लिये शृंगार करे। चन्दन होता तो वह भी नई साड़ी पहनती, वेणी गूँथती, और भाल पर बेंदी रचाती! फिर हाथ मे जरइयों का थाल लेकर, चन्दन की ओर देखकर, मुसुकुराती हुई तालाब पर जाती; किन्तु आज जब चन्दन जा रहा है, तब वह किसके लिये करे? नैना सूर्य की किरणों के निकलते ही आम्र की बारी मे जा बैठी; मानों किसी की प्रतीक्षा कर रही हो!

चन्दन जब अपने घर से बिदा होकर सैनिक वेश मे निकला तब उसकी आँखों के सामने पुरानी स्मृतियों के चित्र खिच गये। वह आम की हरी-हरी बारी-बारी मे आम्र की झुकी हुई डाल पर बैठ कर उसका बाँसुरी बजाना, नैना का आना, नैना की कोमल कलाइयों में हरी-हरी चूड़ियाँ पहनाना और 'सेवार' मे दोनों का घुल-घुल कर बातें करना। एक बार चन्दन के मन में आया, कि वह सैनिक वेश को फाड़ कर फेंक दे, और सूबेदार के पास जाकर उससे साफ-साफ कह दे, कि वह 'लाम' पर न जायगा;

पर फिर कुछ सोच कर चन्दन की आँखें सजल हो उठीं, और वह एक बार अपने घर की ओर देखकर धीरे-धीरे चल पड़ा। उसकी आँखें नैना की खोज में थीं। वह जब नैना के घर के समीप पहुँचा, तब रुक गया; और इधर-उधर दृष्टि पसार कर देखने लगा; पर नैना तो न दिखाई पड़ी, हाँ उसका वृद्ध बाप अवश्य उसे देख कर बोल उठा—"जा रहे हो बेटा, चन्दन !"

हाँ बाबा जा रहा हूँ, पालागन —चन्दन ने भरे हुये स्वर से उत्तर दिया।

आशीर्वाद बेटा, जीते रहो— वृद्ध ने कहा—देखो सभाल कर रहना।

वृद्ध अपनी बात समाप्त करके कुछ गंभीर-सा हो उठा, और सिर नत करके विचार-मग्न हो गया। कुछ देर के पश्चात् जब उसने सिर ऊपर किया, तो देखा, चन्दन धीरे-धीरे चला जा रहा है। वृद्ध ने एक दीर्घ निश्वास लेकर पुनः अपना सिर नीचे झुका लिया। मानो चन्दन का जाना उसकी आँखों से न देखा जा रहा हो: किन्तु चन्दन ! उसके हृदय में तो एक हलचल-सी उठ खड़ी हुई थी। वह धीरे-धीरे पगदण्डी पर चलता हुआ सोच रहा था—"यह नैना ! कहाँ चली गई नैना ! चलते समय उसकी एक झलक देख लेता। लड़ाई मे जा रहा हूँ, जाने लौटकर आऊँ या न आऊँ। पर अब तो गाँव के बाहर निकल आया, पर नैना से बिना विदा हुये ही चला जाऊँ, और फिर ऐसी जगह, जहाँ से पुनः लौटकर आना निश्चित नहीं। तो क्या फिर गाँव लौट चलूँ ?

नहीं, पगली कहीं मुह छिपा कर रोती होगी। उसके पास जाकर उसके हृदय की वेदनाओं को पागल बना देना ठीक नहीं है। सीधे-सादे हृदय की भावुक लड़की है! मुझे इस रूप में जाता हुआ देखकर, न जाने उसके हृदय की गति कैसी हो जाय! लाम पर पहुँचते ही पत्र लिख दूँगा—"नैना क्षमा करो! आते समय तुम से मिल न सका।" चन्दन के विचारों के क्रम अभी चल ही रहे थे, कि आम्र की बारी में पहुँचने पर चन्दन को देखकर कोई बोल उठा—चन्दन।

चन्दन ने देखा—"नैना।" चन्दन के प्राण-प्राण खिल गये, और वह यह कहता हुआ नैना के समीप जा पहुँचा—"नैना, मैं तो तुम्हें गाँव में खोज रहा था।"

और मैं यहाँ बैठकर कब से तुम्हारी राह देख रही हूँ—नैना बोल उठी—(फिर कुछ सोच कर) जा रहे हो चन्दन!

नैना की आँखें सजल हो उठीं। चन्दन ने नैना की भरी हुई आँखों की ओर देखकर उत्तर दिया—हाँ नैना, जा रहा हूँ। तुम अधीर न बनो नैना! मैं शीघ्र ही लौटकर आ जाऊँगा।

जाओ चन्दन!—नैना ने अपनी आँखों में उमड़े हुये आँसुओं को रोकते हुये कहा—पर देखो चन्दन, भूल मत जाना। जब तक तुम न आवोगे चन्दन, मैं इसी आम्र की बारी में बैठ कर तुम्हारी राह देखा करूँगी।

चन्दन नैना की कलाई अपने हाथ में लेकर उसकी चूड़ियों को सहला रहा था। चूडियों को सहलाते ही सहलाते वह नैना की

ओर देखकर बोल उठा—नैना ! अपना ध्यान रखना ! अपने लिये नहीं, तो मेरे लिये अपना ध्यान रखना नैना ! (फिर चूड़ियों की ओर देखकर) अरे, तुमने चूड़ियाँ भी नहीं पहनी नैना ! आज हरितालिका है !

हाँ चन्दन !—नैना ने अपने स्वरों में विषाद लपेट कर कहा—पर ये काँच की चूड़ियाँ मेरे लिये नई से भी अधिक सुन्दर और सोने की चूड़ियों से भी अधिक मूल्यवान है। याद है चन्दन, ये काँच की चूड़ियाँ इसी जगह तुमने मुझे अपने हाथों से पहनाई थीं। अब जब तुम जा रहे हो चन्दन, मैं इन्ही काँच की चूड़ियों में तुम्हारी छबि देखा करूँगी।

चन्दन ने नैना की ओर देखा ! उसे ऐसा लगा, मानों नैना स्वर्ग की कोई देवी हो और इस पृथ्वी पर उतर आई हो ! चन्दन नैना की ओर देखता ही देखता कह उठा—मेरी चूड़ियाँ जब तुम्हें इतनी अधिक प्यारी लगती हैं नैना, तब जब मै आने लगूँगा तो तुम्हें चूड़ियाँ ही लाऊँगा !

तभी ये चूड़ियाँ हाथ से निकलेंगी भी चन्दन !—नैना बोल उठी—मैं इसी आम्र की बारी में बैठकर तुम्हारी चूड़ियों की प्रतीक्षा करूँगी चन्दन ! देखो याद रखना ! चूड़ियाँ लाना भूल मत जाना।

चन्दन कुछ उत्तर न देकर केवल नैना की ओर देखता रहा। उसके मन में एक बार आया कि वह सारे संसार से मुँह मोड़ कर नैना के साथ कहीं उड़ जाय; पर फिर वह सूर्य की ओर देखकर बोल उठा—अच्छा नैना,.......!

नैना ने कुछ उत्तर न दिया। वह केवल उसके कन्धे से सट कर खड़ी हो गई। उसे ऐसा लगा; मानों वह आत्म-विस्मृत हो रही हो! कुछ क्षणों के पश्चात् चन्दन के गले मे हाथ डालने के उद्देश्य से उसके दोनों हाथ मण्डल बनाते हुये आगे बढ़े, किन्तु खाली ही लौट आये। नैना ने आश्चर्य-चकित होकर सामने की ओर देखा—चन्दन आँधी की गति-से आगे बढ़ा जा रहा था!

नैना की आँखें भर आईं! मानों चन्दन के मंगल के लिये वह भगवान को अपने पवित्र प्रेम की अंजलि प्रदान कर रही हो!

[४]

हरितालिका व्रत के पश्चात् दशहरा और दशहरा के पश्चात् होली! होली के पश्चात् फिर वही क्रम, अर्थात् हरितालिका व्रत, दशहरा और होली। पूरे दो वर्ष हो गये। नैना ने कभी अपनी ऍड़ी लाल न की। वह उदास मन से कभी आम्र की बारी मे और कभी सेवार मे जाकर बैठी रहती! हरितालिका व्रत, दशहरा और होली पर जब गाँव की युवतियाँ सज-धज कर निकलतीं, तब भी उसके शरीर पर मैले वस्त्र ही दिखाई देते। महीनों बीत जाते, और वह वेणी न बाँधती। उसका वृद्ध बाप उसे समझाता, पगली! तू क्यों प्राण दे रही है; पर उसकी बात का उसके हृदय पर प्रभाव ही न पड़ता। जब कभी चन्दन का पत्र आता, तब वह उसे अपने अंचल मे छिपा कर रोती, और खूब रोती; पर रागी उसे रोने भी न देता। जब से चन्दन चला गया है, वह अब

उससे अधिक मिलने-जुलने लगा था। जहाँ कहीं नैना को एकान्त में देखता, उसके पास पहुँच जाता, उसे समझाता, और उसके हृदय को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करता। नैना का हृदय रागी की ओर आकर्षित तो न होता, किन्तु अब वह अधिक निराश अवश्य हो उठी थी। इधर चार-पाँच महीनों से अब चन्दन का पत्र भी नहीं आ रहा था, और अब उसके हृदय को यह आशंका भी होने लगी थी कि कहीं चन्दन ......!

नैना की इस आशंका को रागी ने एक दिन यह कह कर और अधिक बढ़ा दिया कि चन्दन ....! यद्यपि नैना के हृदय में आशा की दृढ़ ज्योति अब भी जल रही थी, पर रागी, और उसका वृद्ध बाप रह-रह कर उसकी ज्योति को बुझा देता था! रागी जब देखो, उसके पीछे पड़ा रहता और कहता,—"नैना! तू कब तक चन्दन का नाम लेकर बैठी रहेगी! आखिर चन्दन से मुझमें क्या कमी है।" उधर नैना का वृद्ध बाप भी उसे सन्तोष के साथ निराशा से न खेलने देता! जब देखो, तब वह भी यही कहता—नैना! आखिर तू कब तक चन्दन का नाम लेकर बैठी रहेगी, और फिर अब तो चन्दन के लौटने की आशा भी नहीं है!"

नैना का हृदय अब इतना निराश हो गया था, कि अब उसकी आँखों से आँसू भी न निकलते! उसके हृदय में जो प्रणय का समुद्र हिलोरे मार रहा था, वह मानों अब सूख गया हो। नैना सब की बात सुनती, किन्तु कुछ उत्तर न देती। मानो अब

उसमे सोचने और विचार करने की शक्ति ही अवशेष न रह गई हो। आखिर एक दिन जब उसका वृद्ध बाप यह कहते कहते, "नैना! मान जा! आखिर, रागी भी तो तुझे प्रेम करता है" रो उठा, तब नैना के सूखे कंकाल से 'हाँ" निकाल पड़ा। नैना के पिता को ऐसा ज्ञात हुआ मानो इस 'हाँ' के रूप मे नैना का प्राण ही भीतर से निकल कर उसके अधर पर आ गया हो।

× × ×

फाल्गुन के दिन थे। सूर्य भगवान ने अधकार के पट मे अपना मुँह छिपा लिया था। नैना के द्वार पर शहनाई बज रही थी। आज नैना का विवाह था। विवाह के मंडप मे रागी ने जब वर रूप मे अपने पक्ष वालो के साथ प्रवेश किया, तब वह सहसा आश्चर्य-चकित होकर बोल उठा—यह क्या है बाबा!

जो कुछ है, तुम देख रहे हो रागी—नैना के वृद्ध बाप ने सजल नेत्रों से उत्तर दिया—नैना के प्राण तो उड़ कर चन्दन के पास चले गये, अब यह नैना का शव है, लेजाओ। बेचारी ने काँच की चूड़ियों का रस पीकर अपने जीवन का अन्त कर लिया।

\+ + +

कुछ दिनो के पश्चात लोगों ने गाँव मे एक पागल युवक को देखा, जो एक लकड़ी मे चूड़ियाँ डाल कर बजाया करता था। क्या वह चन्दन था?

—:o:—

रीता

बुझते हुये दीपक की तरह आकाश पर सन्ध्या की लालिमा खेल रही थी। बुझने के पूर्व जिस प्रकार दीपक की ज्योति एक बार जोर से हँसकर कमरे को अधिक प्रभामय कर देती है, उसी प्रकार अंधकार की गोद में छिपती हुई सूर्य की किरणें भी जोर लगाकर हँस रही थीं, और वृक्षों तथा पर्वतों की चोटियों को रँग कर, खुले मैदानों में सरोवरों की लहरों के भीतर भी घुस कर 'झलर-मलर' कर रही थीं। अपने गाँव मे सरोवर के तट पर बैठकर, अपनी सखियों के साथ खेलती हुई रीता की चूड़ियों और उसके भाल पर हँसती हुई सेन्दूर-रेखा पर भी सन्ध्या की सुनहली किरणें अपना रंग 'बुरक' रही थीं। सन्ध्या की सुनहली किरणों के रंग से रीता के हाथ की चूड़ियाँ ऐसी झिल-मिला रही थीं, कि उन्हें देखकर शुचिता बोल उठी—रीता, तुम्हारी चूड़ियाँ बड़ी अच्छी हैं!

रीता ने गर्व की आँखों से अपनी चूड़ियों की ओर देखा,

और कुछ देर तक देखने के बाद कहा—आज ही ये चूड़ियाँ मैंने पहनी है शुचिता ! कल्ह तीज होगी न ! ये चूड़ियाँ मेरे ... ... !

रीता अधूरी बात कह कर अपने अधरों के मध्य में मुसुकरा पड़ी ! मानो वह अपनी मुसुकराहट से ही उस अधूरी बात को पूर्ण कर रही हो। शुचिता और दूसरी लड़कियों ने रीता की मुसुकराहट के अर्थ को समझ पाया भी या नहीं, यह कौन जाने; किन्तु गंगा अपना हाथ आगे बढ़ा कर रीता की कलाई पर ले गई, और उसकी चूड़ियों को इधर-उधर से इस प्रकार देखने लगी, मानो उसके सौन्दर्य को परखने का प्रयत्न कर रही हो।

गंगा के परखने की क्रिया को रीता कुछ देर तक बड़े गर्व से देखती रही; फिर सहसा अपनी कलाई को अपनी ओर खींचती हुई बोल उठी—अरे गंगा, यह तुमने क्या किया ? तुमने मेरी चूड़ियों में गर्द लगा दी !

रीता अपनी कलाई खींचकर अपने अंचल के छोर से चूड़ियों पर लगी हुई गर्द साफ करने लगी ! गंगा को रीता का यह व्यवहार कुछ अधिक कर्कश-सा ज्ञात हुआ। वह कुछ देर तक रीता की ओर देखती रही; फिर बोल उठी—शान करती हो रीता ! मानों ये चूड़ियाँ कभी टूटेंगी ही नहीं !

रीता ने गंगा की ओर देखा। गंगा और शुचिता दोनों ही मुसुकरा रही थीं ! रीता दोनों की ओर आश्चर्य से देखती हुई बोल उठी—इसमें शान की क्या बात है गंगा ? तुम्हारी चूड़ियों में यदि मैं गर्द लगा देती तो क्या तुम्हें बुरा न लगता !

रीता अपनी बात समाप्त ही कर रही थी, कि उसी की वय का अजित गाँव की ओर से दौड़ता हुआ आया, और एक ही साँस मे कह गया—रीता, रीता, तुम्हारी माँ न जाने क्यों रो रही है ?

गंगा और शुचिता, दोनों ही ओठों के बीच मे हँस पड़ीं, और रीता आश्चर्य पूर्वक अजित की ओर देखने लगी। अजित पुनः बोल उठा—हाँ, रीता तुम्हारी माँ न जाने क्यों जोर-जोर से रो रही है !

रीता ने कुछ उत्तर न दिया। उसने केवल एक बार अजित की ओर देखा। अजित की अँखड़ियाँ सहानुभूति से लसी हुई थीं। अजित की अँखड़ियों पर नाचती हुई सहानुभूति को रीता ने पहचान पाया भी या नहीं; यह कौन जाने ? किन्तु उसने यह अवश्य समझा, कि उसकी माँ जो रो रही है, उससे अजित के हृदय को कष्ट पहुँचा है। रीता अजित की ओर देख कर अपने घर की ओर चल पड़ी ! उस समय आकाश पर खेलती हुई सन्ध्या की लाली को धूमिल अंधकार ने ढँक लिया था, और सूर्य की किरणों का वह सुनहला रंग, जिसके कारण वृक्षों और पर्वतों की चोटियाँ झिल-मिला रही थीं, श्यामता में परिवर्तित हो उठा था। रीता ने अपने द्वार पर पहुँचते-पहुँचते अपनी चूड़ियों की ओर देखा। उस धूमिल अंधकार में रीता को अपनी चूड़ियाँ कुछ उदास-सी दृष्टिगोचर हुईं। रीता ने अपने अंचल के छोर से एक बार उन्हें पुनः साफ करके देखा। पर रीता को ऐसा लगा; मानो अब उनकी उदासीनता दूर होने को नहीं ! रीता का मन मुरझा-सा गया,

और उसके हृदय पर एक पीड़ा-सी लोट गई। रीता के हृदय की पीड़ा उस समय और भी अधिक बढ़ गई; जब उसने घर के भीतर आँगन में बिलख-बिलख कर रोती हुई अपनी माँ के सकरुण स्वर को सुना। रीता द्वार पर खड़ी होकर कुछ देर तक उस सकरुण स्वर को सुनती रही; फिर सशंकित और आश्चर्य-चकित दृष्टि से उसने इस प्रकार आँगन में प्रवेश किया, मानो उसके अबोध हृदय को कोई अशुभ शक्ति बल पूर्वक आँगन की ओर आकृष्ट कर रही हो, और वह उसकी ओर जाती हुई भय-भीत हो रही हो।

आँगन के मध्य मे कुछ स्त्रियों के बीच में बैठी हुई रीता की माँ बिलख-बिलख कर रो रही थी। उसके बाल बिखर गये थे, और कपड़े अस्त-व्यस्त थे। ऐसा लगता था, मानो शक्ति के किसी मदान्ध ने सहसा उसके जीवन का सर्वस्व अपहरण कर लिया हो। रीता आँगन के द्वार पर खड़ी होकर आश्चर्य-चकित दृष्टि से अपनी माँ की ओर देखने लगी। अपनी माँ को इस रूप में रीता ने इसके पहले कभी न देखा था। इसके पहले भी उसने कई बार अपनी माँ की आँखों से बहते हुये आँसू अवश्य देखे थे, पर बहते हुये आँसुओं के साथ प्राणों का ऐसा चीत्कार, हृदय का ऐसा हाहाकार उसने इसके पूर्व कभी न देखा था। रीता के अन्तर का कोना-कोना विस्मय और आशंका की हिलोर से परिपूर्ण हो उठा, और वह इस प्रकार अपनी माँ को देखने लगी, मानों उसके अन्तर की सारी गतियाँ जड़ हो गई हों !!

रीता अभी अपनी माँ की ओर देख ही रही थी, कि सहसा उसकी माँ की दृष्टि उस पर पड़ी, और वह रोती हुई उठ कर रीता की ओर दौड़ पड़ी। रीता अपनी माँ को अपनी ओर झपट कर आती हुई देखकर भयभीत हो उठी। उसके मन में एक बार आया, कि वह दौड़ कर बाहर निकल जाय; पर जब तक वह अपनी जड़भूत अन्तर-गतियों को सचेत करे, उसकी माँ उसके निकट आ पहुँची, और वह इस प्रकार उसी की ओर देखती-देखती सिकुड़ कर खड़ी हो गई, जैसे शिकार सिंह को सामने से आता हुआ देखकर सिकुड़ कर बैठ जाता है।

रीता की माँ रीता को गोद में उठाकर पुनः स्त्रियों के मध्य में जा बैठी, और उसे पकड़ कर बिलख-बिलख कर इस प्रकार रोने लगी, मानो उसकी सारी वेदना उसीके कारण हो। कोई कुछ कह रहा था, कोई कुछ; पर रीता बिलकुल शान्त थी। वह कभी अपनी माँ की ओर देखती थी, और कभी उन स्त्रियों की ओर जो उस की माँ को तरह-तरह की बातें कह कर सान्त्वना प्रदान कर रही थीं। किन्तु रीता उस समय शान्त न रह सकी, जब उसकी माँ उसके भाल का सिन्दूर अपने अंचल से पोछकर उसकी कलाई की चूड़ियाँ फोड़ने लगी। रीता उस समय बिलख पड़ी, और अपनी माँ का हाथ पकड़ कर आर्द्र स्वर में बोल उठी—माँ, मेरी चूड़ियाँ!

तेरे भाग्य में नहीं है बेटी!—रीता की माँ ने उसके दोनों हाथों की एक-एक चूड़ियाँ फोड़कर उसे अपने अंक से लगाते हुए कहा।

रीता आश्चर्य-चकित दृष्टि से अपनी माँ का मुँह देखने लगी। अभी दोपहर में ही तो उसकी माँ ने ये चूड़ियाँ बड़े प्यार से उसकी कलाइयों मे डाली थीं; फिर सन्ध्या होते-होते उसने उन्हे फोड़ क्यों डाली? पहनाते समय तो उसने स्वयं ही कहा था, 'देखो रीता, चूड़ियाँ फोड़ न डालना,' फिर उसीने स्वयं उन्हें क्यों फोड़ डाली? रीता की आँखों में विस्मय भर उठा, और वह अपनी मौनिमा में व्यग्रता भर कर कभी अपनी माँ की ओर और कभी एकत्र स्त्रियों की ओर देखने लगी। एकत्र स्त्रियों मे से, इसी समय, कोई अधिक सकरुण होकर बोल उठा—राम, राम, इस थोड़ी अवस्था मे ही बेचारी विधवा हो गई।

विधवा! रीता ने नेत्रो में विस्मय भर कर उस स्त्री की ओर देखा। मानों वह मौन रूप मे उससे पूछ रही हो, "विधवा, क्या चीज है विधवा?" रीता ने कई बार नेत्रो मे विस्मय भर-भर कर अपनी माँ और उन स्त्रियो की ओर देखा। उसने कई बार लोगो के अधरों से निकलते हुये 'विधवा' शब्द को सुना, पर उसने किसी के भी मुख से यह न सुना, कि क्या है विधवा? रीता रात भर सोचती रही; और कई दिन तक सोचती रही; पर उसकी समझ में न आया, कि क्या चीज है विधवा? वह जब एकान्त में बैठती, तब बराबर यही सोचा करती थी, कि क्या चीज है विधवा? जब उसकी समझ मे कुछ न आया, तब उसने स्वयं ही अपने हृदय से यह समझ लिया, कि विधवा उसे कहते हैं, जिसे चूड़ियाँ और सिन्दूर नही पहनना चाहिये।

रीता अब चूड़ियों और सिन्दूर की ओर आँख उठा कर देखती भी न! कभी-कभी जब उसकी सहचरियाँ चूड़ियाँ पहन कर निकलतीं, तब उसके हृदय में चूड़ियों को देखकर एक पीड़ा-सी अवश्य लोट जाती थी। वह जब उनकी हँसती-विहँसती कलाइयों को देखकर अंधकार की तरह अपनी सूनी कलाइयों को देखती, तब उसका मन दुःख से काँप उठता, और वह भीतर ही भीतर अपने आप से पूछ बैठती—'उसके गाँव में उसकी सखियों में जब कोई विधवा नहीं है; तब वही क्यों है? वही क्यों चूड़ियाँ नहीं पहनती, और उसी का भाल क्यों सिन्दूर से सूना-सूना रहता है?" अपने प्रश्न का उत्तर न पाकर कई बार सिन्दूर के डिब्बे के पास हाथ ले जाने का उसने साहस भी किया; किन्तु चुटकी में सिन्दूर लेने के पूर्व ही उसकी माँ बोल उठी—"तुझे सिन्दूर न पहनना चाहिये रीता, तू विधवा है!" रीता शृंगार-सम्बन्धी जो कुछ भी काम करने के लिये तैयार होती, उसकी माँ उसे टोंक देती। "कहती, रीता तुझे शृंगार न करना चाहिये! तू विधवा है।" रीता अपनी माँ की ओर विस्मय की दृष्टि से निहार कर चुप रह जाती। कई बार उसके मन में आया, कि वह अपनी माँ से पूछे, कि माँ, वह विधवा क्यों है; किन्तु वह पूछ न सकती। कौन जाने, पूछना भी बुरा हो! तीज, दशहरा और होली आती; पर रीता के लिये सदैव सावन की अँधेरी रात ही रहती। उसकी सहचरियाँ जब तरह-तरह की चूड़ियों और साड़ियों से सज-धज कर तितलियों की तरह गाँव भर में डोलती फिरतीं, तब रीता

अपने सूने वैभव के साथ उनकी ओर केवल देखा भर करती थी। एक-दो बार रीता ने अपने सूने जीवन को लेकर उनके साथ मिलकर खेलने का प्रयत्न भी किया; पर वे सब ऐसी कतरा गईं; मानो रीता किसी संक्रामक रोग का कीटाणु हो। उनमें से कोई-कोई कह भी उठा,—"ना भाई, रीता के साथ हम न खेलेंगे। इसकी छाया पड़ जायगी तो हमारे हाथों की भी चूड़ियाँ फूट जायँगी।" रीता अब अपनी सहचरियों के साथ खेलने का भी प्रयत्न न करती। जब उसने देख लिया, कि उसे अभिसार की कोई वस्तु छूनी न चाहिये, और सब अपने को उससे विलग रखना चाहते हैं, तब वह स्वयं अपने को सबसे दूर रखने लगी। वह देखती सब कुछ पर बोलती कुछ न! मानों मौन ही उसके जीवन का अवलंब हो, और एकान्त ही उसके जीवन का वैभव!!

पर कभी-कभी अजित उसके मौन और एकान्त जीवन में लहरें उत्पन्न कर दिया करता था। वह जब रीता को औदास्य, निराशा और उपेक्षा की गोद में चुप-चाप बैठी हुई देखता, तब उसके पास जा पहुँचता और बोल उठता—"रीता चलो हम तुम खेलें।" रीता कुछ उत्तर न देकर केवल अजित की ओर देख लेती। मानों मौन रूप में उससे पूछ उठती हो—"तुम मेरे साथ खेलोगो, अजित तुम!" रीता के उपेक्षित जीवन से अजित के मन को बड़ा दुख होता। यद्यपि रीता उससे भी मन खोल कर बात न करती, किन्तु फिर भी अजित उससे अपने को दूर न

रखता। कभी-कभी अजित जब गाँव की सभी लड़कियों को नई नई चूड़ियाँ पहने हुये देखता; तब रीता के पास जाकर पूछ उठता— "रीता, आज तुमने चूड़ियाँ क्यों नही पहनीं ?" रीता अजित की बात को सुनती; पर उत्तर कुछ न देती। अजित सोचता ही रह जाता, रीता क्यों नहीं चूड़ियाँ पहनती, क्यों नहीं; और लोग उससे क्यों दूर-दूर रहते हैं ? आखिर यह वही तो रीता है, जिसके साथ सब खेलते थे, उठते-बैठते थे और हँस-हँस कर बातें करते थे। फिर अब लोग क्यों उसकी छाया से बचते हैं ? क्यों उसे घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं ?" अजित के मन में बार-बार ये प्रश्न उठते; और आँधी की तरह भीतर ही भीतर मँडरा कर शान्त हो जाया करते थे।

होली का दिन था। वसन्त पूर्ण रूप से उल्लसित हो उठा था। बाहर प्रकृति अपना उन्माद बिखेर रही थी; और भीतर लोगों का मन। गाँव के जन-जन के हृदय से उन्माद और उल्लास पिघल कर बह रहा था। वृद्ध, तरुण और बच्चे, सभी उन्माद के चर्खे पर चढ़े हुये-से ज्ञात होते थे। पर रीता, चुपचाप अपने द्वार पर बैठी हुई थी। उसने देखा उसके साथ की सखियाँ एक ओर से निकलीं, और पिचकारियों से रंग की फुहियाँ उड़ाती हुई दूसरी ओर निकल गईं। उनमें से किसी ने यह भी न पूछा कि "रीता तू क्यों चुपचाप उदास बैठी है ?" रीता का मन दुःख से भर गया। उसने एक बार अपने शरीर की ओर देखा; और फिर अपने कपड़ों की ओर। आज जब उसकी सखियों का

शरीर गहनो और कपड़ों से अलंकृत है, और आज जब सारी प्रकृति तक लाल हो उठी है, तब भी उसके शरीर पर धूमिल और शुभ्र वस्त्र ही दिखाई दे रहे हैं; क्यों ? क्या रीता प्रकृति का अपवाद है ? क्या वह अपने गाँव के समस्त मनुष्यों मे. सब से विभिन्न और अलौकिक वस्तु है ? रीता के हृदय का कोना-कोना दुःख से कातर हो उठा, और उसे ऐसा लगा, मानों उसके अन्तर की सारी प्रगति जड़ होती जा रही है।

किन्तु बीच ही में उसे स्पन्दित करता हुआ कोई बोल उठा—रीता, आज होली है। तुम होली खेलने न चलोगी !

दुःख और वेदना के अंक मे लिपटी हुई रीता ने नेत्र ऊपर उठाकर देखा, अजित। रीता कुछ देर तक चुपचाप अजित की ओर देखती रही। रीता के नेत्रों मे स्पष्टतः उदासीनता, निराशा, और विवशता के भाव परिलक्षित हो रहे थे। अजित रीता के नेत्रों की ओर देखकर रीता के बोलने के पूर्व ही बोल उठा—आज होली के दिन भी तुम उदास हो रीता ! चलो रीता, हम तुम एक साथ मिलकर होली खेलें।

नहीं अजित, तुम जाओ !—रीता ने अपने सूखे और मुरझाये हुये अधरों से कहा—मै होली न खेलूँगी अजित !

क्यों न खेलोगी रीता !—अजित बोल उठा—देखो सब खेल रहे है। चलो हम तुम भी खेलें रीता।

मैं विधवा हूँ अजित !—रीता ने वेदना के स्वर मे कहा—माँ

कहती हैं, और गाँव के सभी लोग कहते हैं अजित, कि विधवा को होली न खेलना चाहिये।

विधवा हो तुम !—अजित रीता की ओर साश्चर्य देखकर बोल उठा—विधवा किसे कहते हैं रीता ! गाँव भर में तुम क्या अकेली ही विधवा हो रीता ! नहीं रीता, तुम्हारी माँ झूठ कहती है, और गाँव वाले भी झूठ कहते हैं। चलो रीता, हम तम साथ-साथ खेलें।

रीता अजित की ओर देखकर सोचने लगी, "क्या सचमुच उसकी माँ झूठ कहती है ? क्या सचमुच वह विधवा नहीं है? फिर उसकी मां उसे चूड़ियाँ और सिन्दूर क्यों नहीं पहनने देती ? फिर क्यों उसके साथ की लड़कियाँ उसकी छाया से दूर भागती है ? नहीं, वह अवश्य विधवा है, और विधवा को अपने कपड़ों पर रंग न डालना चाहिये।" रीता सोचकर बोल उठी—मैं सचमुच विधवा हूँ अजित, तुम जाओ रंग खेलो ! विधवा को अपने कपड़ों पर रंग नहीं डालना चाहिये।

तब मैं भी रंग न खेलूँगा रीता !—अजित ने अपने स्वरों में उदासीनता लपेटते हुये कहा—पर रीता (कुछ सोचकर) यदि मैं भी तुम्हारी तरह विधवा बन जाऊँ, तब तो तुम हमारे साथ रंग खेलोगी ! विधवा को विधवा के साथ रंग खेलने में हर्ज ही क्या है रीता ?

रीता अजित की ओर देखकर हँस पड़ी, और अजित ने अपनी भरी हुई पिचकारी रीता के कपड़े पर डाल दी। रीता

कपड़े पर पड़ा हुआ रंग झाड़ने लगी और अजित मुसुकुराता हुआ खड़ा-खड़ा उसकी ओर देखने लगा। इसी समय पीछे से कोई उसका कान पकड़ कर कर्कश स्वर मे बोल उठा—बाचाल, विधवा के साथ होली नहीं खेलना चाहिये !

अजित ने पीछे फिर कर देखा, उसके पिता प्रमोद। अजित रीता की ओर विवशता की दृष्टि से देखकर अपने पिता के साथ-साथ चल पड़ा। पर उसके हृदय मे एक झंझावात उठ खड़ा हो गया—"रीता, विधवा है, क्यों विधवा है ?" यही प्रश्न तो रीता के हृदय में भी बारबार उठ रहे थे। काश, दोनों अबोध हृदयों को कोई समझा सकता, कि रीता क्यों विधवा है ?

[२]

वे दोनो—वही अजित और रीता, एक ही गॉव मे पैदा हुये थे, और एक ही वय के थे। दोनों में परस्पर बड़ा प्रेम भी था। बचपन में जब रीता विधवा हो गई थी, तब उसके साथ खेलने-वालों में अजित ही एक ऐसा था, जिसकी आँखों से, न जानते हुये भी, सहानुभूति के आँसू निकल पड़े थे, और जो उसकी छाया को संक्रामक कीटाणु न मानकर उसके साथ खेलता, बैठता, और बातें करता था। रीता के साथ खेलने के लिये रोकते तो अजित के माँ-बाप भी थे, पर अजित उन लड़कियों मे न था, जो अपनी चूड़ियाँ टूट जाने के भय से रीता की छाया से दूर भागती थीं। वह अपने मॉ-बाप के रोकने पर भी अवसर पाते ही रीता के पास पहुँच जाता, उसके पास बैठकर बातें करता और खेलता

था। कभी-कभी जब उसके पिता उसे डाँटते, कि "अजित, रीता विधवा है, तू उसके साथ न खेला कर", और कभी-कभी जब वह गाँव की लड़कियों के मुख से सुनता, कि "रीता विधवा है, इसलिये उसकी छाया से दूर रहना चाहिये", तो अजित के मन में एक झंझावात भी उठ खड़ा हो जाता और वह सोचने लगता, कि रीता क्यों विधवा है, क्यों? अजित को अपने हृदय में उठे हुये इस प्रश्न का उत्तर तो न मिलता, किन्तु उसकी बाल-सुलभ सहानुभूति रीता के प्रति और अधिक बढ़ जाती थी और वह अपने को रीता के अधिक सन्निकट करने का प्रयत्न भी करने लगता था। अजित का यह प्रयत्न उस समय भी था, जब वह बचपन की गोद में था, और उस समय भी था, जब वह कैशोर के आँगन को पार कर तरुणाई की ओर धीरे-धीरे बढ़ रहा था।

अजित और रीता, अब दोनों ही कैशोर के आँगन को पार कर धीरे-धीरे तरुणाई की ओर अग्रसर हो रहे थे। अजित और रीता, दोनों ही के हृदय में बाल्यावस्था में जो प्रश्न रह-रह कर आँधी की तरह उठ खड़ा होता था, समय ने अब अपने आप उसका उत्तर भी दे दिया था। रीता ने अब निराशा और उपेक्षा को ही अपना जीवन बना लिया था। अब वह एक ऐसे उजड़े हुये सूखे उपवन की भाँति चुपचाप पड़ी हुई थी जो वसन्त की अपनी बहार देखने की आशा का पूर्ण रूप से परित्याग कर चुका हो। अजित रीता के प्रति सहानुभूति रखते हुये भी उससे अलग जीवन-प्रवाह में बहा जा रहा था। वह अपने गाँव से सुदूर-

प्रयाग मे युनिवर्सिटी मे पढ़ रहा था । पर प्रयाग मे भी रीता की स्मृति अजित के हृदय में बनी रहती थी । अजित जब कभी अपने गॉव आता, तब वह सब की ऑख बचा कर रीता से अवश्य मिलता था । न जाने क्यो, अब रीता की ऑखें भी अजित को देखने के लिये उत्कंठित रहती थी, और अब न जाने क्यो, जब रीता और अजित दोनों एक-दूसरे से मिलते,तब दोनो के शरीर में रोमांच हो आता । दोनों एक-दूसरे को देखते ही अपने-अपने मन मे कुछ अनुभव करने लगते, और दोनो की ऑखे जब एक-दूसरे के सामने होतीं, तब उनमे कुछ छलक भी आता था । दोनो मन ही मन चाहते तो यही थे, कि निरन्तर एक दूसरे के पास ही बने रहे; पर दोनों को विलग हो ही जाना पड़ता था । जैसे दोनो ऐसी दो सरिताओं के समान हो, जो दूर से आपस मे मिलने के लिये दौड़ी चली आ रही हों; किन्तु बीच मे दृढ़ बंध पड़ जाने के कारण रुक गई हों और एक-दूसरे की ओर ललचाई दृष्टि से देखती हुई मिलने के लिये लहरे मार रही हो ।

वैसाख का मधुर मास था, और शुक्ल पक्ष की रात । लग-भग बारह बज रहे थे । सारे गॉव मे निस्तब्धता डोल रही थी, पर अजित के ऑगन मे बड़ी चहल पहल थी । मानों गाँव भर की सारी व्यस्तता सिमटकर उसी के आँगन में आगई हो । ऑगन में मंडप बना हुआ था, और मंडप में कुछ लोग बैठकर मंत्रोच्चार कर रहे थे । सामने के कमरे में गॉव की स्त्रियाँ बैठी हुई थी, जो मधुर स्वर से मंगलगान कर रही थी । मंगलगान मे वे बार-बार

अजित की बड़ी बहन तारा का नाम ले रही थीं। क्योंकि आज उसी का पाणिग्रहण था; और अजित के आँगन में यह चहल-पहल उसी के उपलक्ष्य में थी।

मंडप में मंत्रोच्चार करते हुये वृद्ध द्विज ने कहा—"कन्या का शुभागमन!"

बिजली की लहर की तरह खबर स्त्रियों के कक्ष में पहुँची, "मंडप में कन्या का शुभागमन!" अजित की माँ ने स्त्रियों के कक्ष में दृष्टि दौड़ा कर इधर-उधर देखा। इधर-उधर देखकर कुछ देर तक वह सोचती रही; फिर बोल उठी—रीता, तू यहाँ से हट कर दूसरे कमरे में चली जा। कन्या विवाह के मण्डप में प्रवेश करने जा रही है।

रीता ने, जो स्त्रियों के मध्य में बैठी हुई मंगलगान कर रही थी, दृष्टि पसार कर इधर-उधर देखा। कक्ष में एकत्र सारी स्त्रियाँ उसी की ओर विस्मय की दृष्टि से देख रही थीं। रीता को ऐसा लगा, मानों सब की सब आँखों के प्रकाश-विक्षेपक यंत्र में उपेक्षा भर कर उस पर फेंक रही हों। रीता किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर अपनी स्थिति पर विचार करने लगी। अभी वह सोच ही रही थी, कि अजित की माँ पुनः बोल उठी—रीता, मैं तुम्हीं से कह रही हूँ। इस कमरे से हटकर दूसरे कमरे में चली जा। लड़की मंडप में प्रवेश करने जा रही है। विधवा की छाया ...."।

पूरी बात निकलते-निकलते अजित की माँ के अधरों के मध्य में रह गई। अजित, जो किसी काम से उस कमरे में गया था,

उसने भी अपनी माँ के अधूरे वाक्य सुने; और उसकी भी आँखों के सामने रीता के साथ ही साथ एक चित्र खिच गया। रीता वेदना और पीड़ा के भार से दबी हुई चुपचाप उठी, और कमरे से बाहर निकल गई। अजित के मन मे एक बार आया, कि वह अपनी माँ का प्रतिरोध करे, किन्तु बात ओठो तक आकर रुक गई, और उसके साहस के पंख कट गये। अजित कुछ देर तक खड़ा-खड़ा सोचता रहा, और फिर कमरे से निकल कर सतर्क भाव से एक ओर को चल पड़ा।

चाँदनी खिलखिलाकर हँस रही थी। उस हँसती हुई चाँदनी मे गाँव मे ऐसा सन्नाटा छाया हुआ था, मानो गाँव के सभी स्त्री- पुरुष चाँदनी के उस मनोरम हास्य और उसकी मधुरता का मूक होकर आनन्द ले रहे हो। पर रीता के पैर आगे बढ़ते जा रहे थे। उसके मन मे हाहाकार था, और अन्तर के कोने-कोने मे आँधी। उसके मन मे बार-बार यही उठ रहा था, कि वह संसार से अलग कहीं चली जाय। या तो वह चुपचाप अपने प्राणों के तन्तु को तोड़ दे, और या ऐसे लोक मे पहुँच जाय, जहाँ उसे कम से कम किसी मानव की मूर्ति न दिखाई पड़े; किन्तु अभी वह अजित और अपने घर के मध्य मे स्थित वीथिका में पहुँची ही थी, कि कोई पीछे से बोल उठा—रीता।

रीता ने पीछे फिर कर देखा, अजित। अजित अब उसके समीप पहुँच गया था. और वह उसके सामने खड़ा होकर बोल उठा—क्षमा करो रीता!

रीता का कंठ पहले से ही अवरुद्ध था। अब अजित की बात से उसके कंठ में रुकी हुई वेदना पिघल उठी, और वह उमंड़ कर उसकी आँखों में आ गई। रीता ने आँसुओं से लसी हुई आँखों से अजित की ओर देखा। अजित ने उस वीथिका में, प्रयत्नपूर्वक घुसती हुई चाँदनी की धूमिल छाया में आँसू-कणों से चमकती हुई रीता की आँखों को देखा। अजित ने रीता के कर को अपने कर में लेते हुये कहा—तुम रो रही हो. रीता; पर रीता उसमें मेरा क्या अपराध था? क्षमा करो रीता! माँ ने जो कुछ तुम्हें कहा, उसका एक-एक शब्द अब भी मेरे हृदय पर आँधी की तरह डोल रहा है।"

रीता ने अजित की ओर देखा! अजित दृढ़ और गंभीर भाव से कुछ सोच रहा था। क्या सोच रहा था, कौन जाने? रीता अजित की विचार-मग्न मुख-मुद्रा को देखते ही देखते बोल उठी—मुझे जाने दो अजित! तुम्हारी मां ने जो कुछ कहा, वह तो मेरे विधवा जीवन का दैनिक इतिहास है अजित! आखिर उन्होंने यही तो कहा, कि विवाह-मंडप में प्रवेश करती हुई कन्या के शरीर पर मुझ अभागिनी की छाया न पड़नी चाहिये। यही बात तो, मै बचपन से सुनती आ रही हूँ अजित बाबू! जब दुःख, उपेक्षा, और निरादर मेरे जीवन का संबल बन गया है, तब मैं उससे बुरा क्यों मानूँ?"

अजित ने देखा, रीता बात तो कह रही है, पर अपने हृदय के मसमसाते हुये बाँध को बल पूर्वक रोके हुये है। जरा भी यदि

उसका वल ढीला हो जाय तो फिर देखो; किस प्रकार हृदय मे उफनाता हुआ सागर उसकी आँखों मे उमड़ पड़ता है। अजित रीता की ओर देखकर, उसके वल को और भी अधिक दृढ़ करने के उद्देश्य से वोल उठा—रीता, कौन कहता है, तुम्हारे जीवन का संवल है दु:ख, निरादर और उपेक्षा! तुम अपने मन से निराशा की यह कायर भावना निकाल दो रीता, और उनसे जूझने के लिये तैयार हो जाओ, जो यह कहते हैं, कि तुम्हारे जीवन का संवल है दु:ख, निराशा, और उपेक्षा!!

मैं उनसे युद्ध करूं अजित वावू!—रीता वोल उठी—एक विधवा! एक विधवा, जिसका जीवन भग्न खंडहर की तरह निराश, और सूखी सरिता की तरह मलिन है, उनसे कैसे जूझ सकती है अजित वावू! विधवा के जीवन में जूझने का तो कोई भाव ही नहीं होता। उसके जीवन की मर्यादा तो इसी वात मे है, अजित वावू, कि वह उजड़े हुये खँडहर की भाँति दिन-रात आकाश की ओर देखा करे।

विधवा!—अजित ने दृढ़ता के साथ आवेश के भाव मे कहा—मैं वहुत दिन से इस शब्द को सुनता आ रहा हूँ रीता! तुम्हारे मुख से भी कई वार सुना, और गाँव वालों के मुख से भी; पर मे तुमसे पूछता हूँ रीता, तुम विधवा कैसे हुई? क्या तुम जानती हो, कि तुम्हारा विवाह कव हुआ? क्या तुमने जान-वूझ कर, सोच-समझ कर किसी के हाथ में अपना हाथ दिया था? क्या विवाह के समय साक्षी रूप में पढ़े जाने वाले वेद-मंत्र

शुद्ध और साफ-साफ रूप में तुम्हारे अधरों पर आ सके थे ? यदि नहीं रीता, तो तुम विधवा नहीं हो। विवाह कोई कौतुक नहीं है रीता, कि माँ, बाप, समाज, और देश, जो चाहे उसके साथ खिलवाड़ किया करे। आत्मा के आदान-प्रदान का यह शुभोत्सव वर-वधू की इच्छा से उनकी भिज्ञता में पूरा किया जाना चाहिये रीता!

रीता ने अजित की ओर देखा। अजित एक ऐसे अद्भुत चक्र पर चढ़ कर उड़ा जा रहा था, कि रीता को बड़ा विस्मय हुआ। रीता-स्तब्ध होकर कुछ देर तक अजित के महायान की ओर देखती रही; फिर उसी की ओर विस्मय से देखती-देखती बोल उठी—यह तो भाग्य की बात है अजित। मेरे भाग्य में ही जब विधवा होना लिखा था, तो माँ-बाप क्या करते ?

भाग्य!—अजित पुनः बोल उठा—क्या तुम्हारे भाग्य में यही लिखा है रीता, कि तुम 'आजीवन उपेक्षा, वेदना, और अभाव की भयानक आग में जल-जल कर मरो! प्रकृति का नियम है रीता, कि रजनी के पश्चात् सूर्य का उदय होता है, फिर तुमने यह क्यों सोच रक्खा है रीता, कि तुम्हारे जीवन-आकाश पर कभी सूर्य का उदय होगा ही नहीं! मैं पूछता हूँ रीता, कि क्या तुम प्रकृति का अपवाद हो! जब संसार में अंधकार, प्रकाश, उत्थान-पतन, और दुख-सुख का क्रमिक विधान है, तो तुम्हारा यह उपेक्षा-पूर्ण जीवन क्यों नहीं परिवर्तित हो सकता रीता!

अजित अपनी बात समाप्त कर रीता की ओर देखने लगा।

अजित को आशा थी,कि रीता उसकी बात को सुनकर कुछ-न कुछ अवश्य कहेगी, किन्तु रीता अजित की बात सुनकर जब कुछ कहने के लिये अपने हृदय मे शब्द ढूँढ़ने लगी; तब उसे कुछ शब्द ही न मिले, और वह निरुपाय-सी होकर अजित की ओर देखने लगी! अजित कुछ देर तक रीता की ओर देखता रहा; फिर अपने ही आप बोल उठा—रीता, तुम जानती हो, तुम्हारे आकाश का सूर्य क्यो नहीं उदय हो रहा है? समाज के कल्पित विधानो ने सघन बादलों की तरह उसे अपनी गोद मे छिपा रक्खा है। रीता, तुम निष्प्राण और निस्पन्द-से अपने रेगिस्तान से तीव्र चक्रावर्त की तरह उठो, और सारे आकाश मंडल मे फैल कर बादलों के खण्ड-खण्ड कर दो। मै सच कहता हूँ रीता, आज जो तुम्हारा भाग्य हिम की रजनी की तरह रो रहा है, वही शरद की राका की तरह हँस उठेगा।

पर मै क्या करूँ अजित!—रीता अजित की वार्ता से कुछ अभिभूत-सी होकर बोल उठी।

तुम! तुम!! पुनः अपना विवाह करो रीता!—अजित ने दृढ़ता के साथ कहा।

विवाह!—रीता आश्चर्य के स्वर में बोल उठी—मै अपना विवाह करूँ अजित! एक विधवा!! नही अजित, ऐसा कभी नही हो सकता।

क्यो नही हो सकता रीता—अजित ने दृढ़ता के साथ कहा—क्या तुम जानती हो रीता, कि तुम्हारा विवाह कब और

किसके साथ हुआ था ? क्या तुम्हे स्मरण है रीता, कि तुमने कब सोच-समझ कर अपना हाथ किसी के हाथ में दिया था ? यदि नहीं रीता, तो तुम्हारा विवाह हो सकता है ! यदि मैं मान भी लूँ रीता, कि तुम्हें अपना विवाह स्मरण है, और तुमने सोच-समझ कर किसी के हाथ मे अपना हाथ दिया था, तो भी तुम्हारी भाग्य-लिपि बदली जा सकती है। संसार में जब सभी चीजें खण्ड-खण्ड होकर पुनः जुटती हैं, गिर कर पुनः उठती हैं, तो फिर तुम्हारा ही विवाह पुनः क्यों नहीं हो सकता रीता !

अजित अपनी बात समाप्त कर रीता की ओर देखने लगा; और रीता विचार-मग्न-सी हो उठी। मानों अजित ने जो बात कही; रीता को उसकी तथ्यता का अनुभव हुआ हो; और वह उसी पर मन ही मन विचार करने लगी हो। रीता अभी सोच ही रही थी, कि अजित उसकी ओर देखता हुआ पुनः बोल उठा—रीता, तुम आगे बढ़ो। अपने लिये चाहे न भी आगे बढ़ो, पर उन करोड़ों लड़कियों के लिये आगे बढ़ो रीता, जो इस आकाश के नीचे, बड़े-बड़े शिला-खण्डों की तरह समाज के विधानों के नीचे दबी हुई अपना दम तोड़ रही है। रीता तुम उठो, और समाज के उन शिला-खंडों को अपने ऊपर से फेंक कर पुनः अपना विवाह करो। तुम्हें विवाह करती हुई देखकर, सिसक-सिसक कर प्राणों के तन्तु तोड़ने वाली उन लड़कियों मे भी बल पैदा होगा रीता !

पर अजित !—रीता ने अजित की ओर साश्चर्य देखते हुये

कहा—जिसकी छाया का स्पर्श तक पाप और कलंक का सूचक समझा जाता है, उस विधवा से विवाह कौन करेगा !

तुम इसकी चिन्ता न करो रीता !—अजित बोल उठा—तुम केवल हाँ कहो रीता, हाँ !!

फिर भी अजित—रीता ने अजित की ओर देखते हुये कहा ।

तो सुनो रीता—अजित बोल उठा—विवाह मैं करूँगा, मैं !! आज तुम्हारे साथ माँ ने जो व्यवहार किया है, उससे आज मानवता का समुद्र उसी प्रकार असंतोष से जाग उठा है, जिस प्रकार वज्र की चोट से सागर में लहरें कुपित होकर जाग उठती हैं । रीता तुम केवल हाँ कह दो, हाँ !

रीता साश्चर्य अजित की ओर देखने लगी । अजित उसे वज्र-पहाड़ की तरह अपने स्थान पर अचल दिखाई पड़ा । रीता का मन अजित की दृढ़ता पर हत-बुद्धि-सा हो गया । अजित रीता को मौन देखकर पुनः बोल उठा—हाँ रीता, तुम केवल हाँ कह दो, हाँ । बचपन से जिस स्नेह को हम दोनों ने अपने हृदय में पाल रक्खा है, आज उसे जुट जाने दो । देखो, आकाश में चन्द्रमा कैसा हँस रहा है ! हमारा तुम्हारा प्रेम भी इसी चन्द्रमा की तरह शुभ्र, सुशीतल, और उच्च आकांक्षी है रीता ! हाँ कह दो, हाँ !!

रीता ने आकाश में हँसते हुये चन्द्रदेव की ओर देखा । रीता को ऐसा लगा, मानों चन्द्रदेव भी अजित की बात का समर्थन कर रहे हों । रीता ने चन्द्रदेव की ओर देखकर अजित की ओर देखते हुये कहा—तुम जानो अजित !!

"मेरी रीता"—अजित ने उन्माद में उछल कर रीता को अपने बाहु-पाश में कस लिया, और रीता उसमें सिमट कर अपने को ऐसी खो गई, जैसे सरिता सागर में मिल कर खो जाती है।

उस समय आकाश में चन्द्रदेव हँस रहे थे, और अजित के आँगन में हो रहा था जोर-जोर से वेद-मंत्रों का उच्चारण। किसी मानव ने भले ही रीता और अजित के मिलन को न देखा हो, पर आकाश में हँसते हुये चन्द्रदेव ने जो देखा, क्या वह कुछ कम था?

[३]

आषाढ़ का महीना था। आकाश में उठ-उठ कर बादल दौड़ने लगे थे, और धूप में तेजी की कमी होने के साथ ही साथ अब वायु में कुछ कुछ आर्द्रता भी आगई थी। दिन के दो बज रहे थे। रामजीत दास अपने बाहर के कमरे में, खिड़की के पास, कुर्सी पर बैठे हुये कुछ हिसाब-किताब देख रहे थे। पास ही एक दूसरी कुर्सी पर उनकी पत्नी बैठी हुई थी, जो उनकी ओर ध्यान से देख रही थी। रामजीत दास आकाश में घुमड़ते हुये बादलों की गरज को सुन कर खिड़की की राह से आकाश की ओर झाँक उठे, और आकाश की ओर देखते ही देखते बोल उठे—यदि कहीं विवाह के दिन पानी बरसा तो बड़ी कठिनाई होगी।

इसीलिये तो मैं कहती थी—रामजीत दास की पत्नी ने कहा—

वैसाख मे ही विवाह कर डालो। आषाढ़ का महीना है ही, यदि पानी बरसे तो क्या कोई आश्चर्य की बात है ?

वैसाख मे क्या, मै तो फागुन मे ही तैयार था—रामजीत-दास बोल उठे—पर लड़का वाला तो तैयार नहीं था। वैसाख में उनकी बड़ी लड़की का विवाह था। यह लग्न भी उन्हे बड़ी कठिनाई से स्वीकार हुई है। नही, उनका कहना तो यह था, कि विवाह अगले फागुन मे करेंगे।

रामजीत दास अभी अपनी बात समाप्त ही कर पाये थे, कि एक घोड़ा गाड़ी उनके द्वार पर आकर रुक गई। रामजीत और उनकी पत्नी, दोनों ही खिड़की की राह से बाहर की ओर झॉक उठे, और दोनों ने ही समझा, कि विवाह मे सम्मिलित होने वाला कोई अतिथि है; किन्तु रामजीत दास की पत्नी ने जब गाड़ी मे से एक युवक को उतरते हुये देखा, जो उनके यहाँ आने-जाने वाले अतिथियो से भिन्न था, तो वह बैठक से उठकर भीतर चली गई, और रामजीत दास आश्चर्य-चकित दृष्टि से उस युवक की ओर देखने लगे। वे उस युवक को देखकर कुर्सी से उठने ही वाले थे, कि युवक ने उन्हे सादर प्रणाम करते हुये कमरे में प्रवेश किया; और रामजीत दास उसे देखकर साश्चर्य बोल उठे—कौन, बेटा अजित !

हॉ बाबू जी मैं ही हूँ।—अजित ने दूसरी कुर्सी पर बैठते हुये कहा।

अजित को सहसा अपने घर देखकर रामजीत दास जैसे

अधिक विस्मित-से हो उठे हों। उनका सारा शरीर और शरीर के भीतर का प्राण भी कुछ देर के लिये जैसे गति-हीन-सा बन गया हो। रामजीत दास अपने हृदय का सारा आश्चर्य आँखों में उँडेलकर अजित की ओर देखने लगे। अजित कुछ क्षणों तक मौन रहा; और कभी रामजीत दास की ओर, और कभी सामने पड़ी हुई मेज की ओर देखता रहा; फिर अपने ही आप बोल उठा—विवाह के पूर्व यदि वर अपनी होने वाली ससुराल में पहुँच जाय तो ससुराल वालों का विस्मय-चकित होना स्वाभाविक ही है बाबू जी, पर बाबू जी, मुझे आप से कुछ कहना है !

क्या कहना है अजित !—रामजीत दास ने साश्चर्य, और संदेह की दृष्टि से अजित की ओर देखते हुये कहा !

अजित कुछ क्षणों तक मौन रहा। जैसे, वह जो कुछ कहना चाहता है, उसका तारतम्य ठीक कर रहा हो। कुछ देर तक मन ही मन सोचकर अजित रामजीत दास की ओर देखता हुआ बोल उठा—आज समाज में जो दुरवस्था और हाहाकार फैला हुआ है, उसके प्रति समाज के युवकों का क्या कर्त्तव्य है बाबू जी ?

समाज के युवकों को, समाज में फैली हुई दुरवस्था का सर्वान्त करने के लिये साहस और शक्ति से काम लेना चाहिये अजित !—रामजीत दास ने आश्चर्य की दृष्टि से अजित की ओर देखते हुये कहा।

और यदि माँ-बाप तथा दूसरे अभिभावक युवकों के साहस-प्रदर्शन में बाधा डालें, या वे उसके लिये आदेश न दें तो !—अजित रामजीत दास की ओर देखकर गंभीरतापूर्वक बोल उठा।

युवकों को उन्हे समझाना चाहिये अजित !—रामजीत दास ने विचारो के पंखों पर उड़ते हुये कहा—और फिर कोई समझदार माँ-बाप युवको के बुद्धिमत्ता पूर्ण कार्यों का विरोध ही क्यो करेगा ? माँ-बाप तो उनके कार्यों का तभी विरोध करते है, जब वे देखते हैं कि वे जो करने जा रहे है, उसमे दृढ़ता नहीं, उच्छृङ्खलता है। उसमे विकास की भावना नहीं, विनाश की सूचना है ।

रामजीत दास की बात सुन कर अजित विचार-मग्न हो उठा। रामजीत दास को ऐसा लगा, मानो अजित उन से ही संबध रखने वाली कोई बहुत बडी बात कहना चाहता है। रामजीत दास का मन रह-रह कर सन्देह और आश्चर्य के झूले पर झूलने लगा; पर फिर भी वे अपने मौन भाव को दबाये ही रहे। अजित कुछ क्षणो तक सोचकर पुनः बोल उठा—आप मानते हैं, बाबू जी, कि समाज की विधवायें समाज का ही एक काला चित्र है। आज समाज मे जो दुरवस्था की आँधी डोल रही है, वह बहुत कुछ इन्हीं की साँसो से ग्रथित है।

मैं मानता हूँ अजित !—रामजीत दास ने अजित की ओर देखते हुये कहा।

यदि आप मानते हैं बाबू जी !—अजित बोल उठा—तो आप मुझे आदेश दे, कि मै समाज के काले चित्रों मे से एक को कम करूँ; और समाज के भीतर गर्म साँसो की जो आँधी दौड़ रही है, उसे कम करने मे जीवन के सब सुखो से खेल जाऊँ।

मैने तुम्हारी बात समझी नहीं अजित !—रामजीत दास ने सन्देह और आश्चर्य के सागर मे डूब कर कहा।

अजित कुछ देर तक सोचता रहा; और फिर गंभीरता पूर्वक बोल उठा—मै विधवा विवाह..........।

रामजीत दास के प्राणों के भीतर एक आँधी-सी दौड़ गई; और वे विस्फारित नेत्रो से अजित की ओर देखकर बोल उठे—तुम ..... विधवा विवाह !

हाँ बाबू जी !—अजित ने गंभीरता और दृढ़ता के साथ कहा—और मै चाहता हूँ बाबू जी, कि आप मेरी सहायता करें।

मै सहायता करूँ !—रामजीत दास ने अजित की ओर देखते हुये कहा—और ऐसी स्थिति मे जब तुम मुझे मँझधार मे छोड़ रहे हो।

आप की नाव पार लग जायगी बाबू जी !—अजित बोल उठा—किन्तु उस अभागिनी की नाव कभी पार न लगेगी, जिसे समाज ने घृणा और उपेक्षा देना ही अपना धर्म समझ लिया है। आप उस हतभागिनी की सहायता करके अधिक पुण्य के भागी होंगे।

पर मै क्या कर सकता हूँ अजित !—रामजीत दास ने गंभीरता के स्वर मे कहा।

आप उसे अपने घर मे रख लीजिये बाबू जी !—अजित बोल उठा—और उसी प्रकार उसका विवाह मेरे साथ कर दीजिये, जैसा आप अपनी पुत्री का करने जा रहे है।

यह नही हो सकता अजित !—रामजीत दास बोल उठे—

तुम चाहते हो, मैं छल और अविश्वास का अभिनय करूँ। नहीं अजित, यह मुझसे न हो सकेगा। तुम विवाह करना चाहते हो, करो: किन्तु क्या तुमने यह भी सोच लिया है, कि इस विवाह का क्या परिणाम होगा? निश्चय, इस विवाह से तुम्हारे पिता तुम पर कुपित होंगे, और हो सकता है, कि वे तुम्हें अपने घर से बाहर कर दें, और तुम सदा के लिये अपने उत्तराधिकार से वंचित हो जाओ।

इसकी मुझे रंच मात्र भी चिन्ता नहीं है बाबू जी!—अजित बोल उठा—मैं अपने उत्तराधिकार से वंचित होकर सहर्ष दुख के काँटों का ताज अपने शीस पर धारण कर लूँगा, किन्तु मुझसे यह न देखा जायगा, कि विवाह के नाम पर समाज उच्छृङ्खलता का अभिनय करे, और यदि उस उच्छृङ्खलता से तथा किसी और कारण वश कोई बालिका विधवा हो जाय, तो उसे केवल उपेक्षा और घृणा की आग में जल-जल कर मरना पड़े। मुझसे यह नहीं हो सकता बाबू जी, कि मैं यह देखूँ कि कोई बालिका आँसू की लड़ी गिराते-ही गिराते अपना जीवन समाप्त कर दे। मैं समाज के विधानों से युद्ध करूँगा बाबू जी, और एक एक विधवा बालिका को इस बात के लिये प्रोत्साहित करूँगा, कि वह समाज की जंजीरों को काट कर बाहर निकल आये, और सौभाग्यवती बन कर पुन. अपने जीवन का निर्माण करे; पर दुःख तो केवल मुझे इसी बात का है बाबू जी, कि आप अपने द्वार से मुझे निराश लौटा रहे हैं।

अजित की बात सुनकर रामजीत दास विचार-मग्न-से हो उठे। कुछ देर तक मन ही मन सोचते रहे; फिर अपने ही आप बोल उठे—पर जब तुम उसके साथ विवाह करना ही चाहते हो, तो फिर मुझसे यह क्यों चाहते हो, कि मैं उसे अपने घर में रख लूँ, और अपनी पुत्री के स्थान पर उसका विवाह तुम्हारे साथ कर दूँ!

केवल समाज को प्रोत्साहन देने के लिये बाबू जी!—अजित बोल उठा—लोग यह देखें, कि समाज जिन्हें घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखता है, वे भी विवाह के मंडप में बैठकर सौभाग्य-वती बन सकती हैं, और उनका भी विवाह उसी प्रकार हो सकता है, जिस प्रकार कुमारी कन्याओं का होता है।

पर छल और अविश्वास के इस अभिनय से कोई लाभ नहीं अजित!—रामजीत दास दृढ़तापूर्वक बोल उठे।

रामजीत दास अभी अपनी बात समाप्त ही कर रहे थे, कि भीतर से निकल कर कोई बैठक मे आता हुआ बोल उठा—"लाभ है पिता जी, और बहुत बड़ा लाभ है; और फिर हम इसे छल और अविश्वास की संज्ञा दे भी नहीं सकते। जिस छल और अविश्वास से मानवता का विकास हो, धर्म को प्रेरणा मिले, वह 'छल' छल होते हुये भी किसी तरह विश्वास से कम महत्त्व पूर्ण नहीं है पिता जी! कहाँ है वह दुःखिनी अजित बाबू, बुलाइये, मैं उसे अपने घर में रक्खूँगी, और स्वयं अपने हाथों से सजाकर उसका आपके साथ विवाह करूँगी।

रामजीत दास ने कमरे मे प्रवेश करते हुये आगन्तुक की ओर दृष्टिपात किया, और साश्चर्य उनके मुख से निकल पड़ा—रम्भा, तुम······तुम रम्भा·······!

हॉ पिता जी, मैं—रंभा बोल उठी—अजित बाबू जब एक पुरुष होकर एक बालिका के लिये इतना त्याग कर रहे हैं, तब एक बालिका होकर मैं उसके लिये इतना भी न कर सकूँगी ! कहाँ है वह अजित बाबू ! वह मेरी बहन है। मेरा विवाह आपके साथ न हुआ, मेरी बहन का ही सही ! मुझे कितनी प्रसन्नता हो रही है अजित बाबू, कि आप के काम मे योग देने के लिये मुझ में भी बुद्धि जागृत हो उठी है।

रामजीत दास किंकर्त्तव्य विमूढ़ से हो गये, और अजित विस्मय-चकित होकर रंभा की ओर देखने लगा। अजित को ऐसा लगा, मानो रंभा की ओजस्विनी वाणी के आगे अजित की वाणी का तेज मन्द पड़ गया हो। अजित अपनी उसी मलिनता मे डूबा-डूबा बोल उठा—द्वार पर खड़ी घोड़ा गाड़ी मे है रंभा बहन !

अजित कह तो गया, पर उसे ऐसा लगा, जैसे उसके कन्धे पर किसी वस्तु का बहुत बड़ा भार-सा पड़ गया हो ! अजित उस भार से दबा हुआ मन ही मन सोचने लगा। अभी वह सोच ही रहा था, कि सहसा उसकी दृष्टि खिड़की की राह से बाहर खड़ी हुई घोड़ा गाड़ी पर जा पड़ी। उसने आश्चर्य से देखा, कि रंभा घोड़ा गाड़ी के पास जाकर कह रही है, "उतरो बहन !"

× × ×

सुनते हैं विवाह के पश्चात् जब नई वधू अजित के घर गई और सर्व प्रथम अजित की माँ ने घूँघट उठा कर उसका मुख देखा, तब 'रीता' कह कर वह ऐसी चीख पड़ी थी, मानों शत-शत बिच्छुओ ने एक साथ ही उसके भीतर डंक मार दिया हो ! रीता, अजित, और उसके स्वजन तथा गाँव के स्त्री-पुरुषों की मनोस्थिति का चित्र ! उसका अंकन न करना ही ठीक होगा !

क्योंकि अजित के विद्रोह की आँधी बड़ी प्रबल थी।

दो बहने

पच्चीस-छब्बीस वर्ष का वय, सुदृढ़ सुडौल शरीर, कद मॅझोला, रग कुछ कुछ गौर, और आकृति पर यौवन की ज्योति! नये प्रोफेसर सुधाकर ने जब अपनी कक्षा मे प्रवेश किया तो सभी विद्यार्थियो के साथ ही अलका ने भी उन्हे देखा। प्रोफेसर सुधाकर को देखकर अन्यान्य विद्यार्थियों ने अपने मन मे क्या सोचा, कुछ सोचा भी या नही, यह तो वही जाने; किन्तु अलका कुछ देर तक प्रोफेसर सुधाकर को देखती रही। मानों उसकी दृष्टि के लिये प्रोफेसर सुधाकर की आकृति मे कोई आकर्षण हो! सचमुच उसकी दृष्टि के लिये प्रोफेसर सुधाकर की आकृति में कोई आकर्षण अवश्य था। क्योंकि प्रथम दिन जब उसने पहली वार प्रोफेसर सुधाकर को देखा, तव उस दिन से वह उन्हे बरावर देखने लगी। प्रोफेसर सुधाकर जब क्लास मे पढ़ाने लगते, और पढ़ाते-पढ़ाते लड़कों की ओर देखकर समझाने लगते तो वे देखते, कि अलका उनकी ओर देख रही है। प्रोफेसर सुधाकर लडको की ओर स्वाभाविक ढंग से देखकर पुनः अपना पाठ

पढ़ाने लगते, किन्तु अलका उनकी ओर से ध्यान न हटाती; और जब हटाती भी तो बीच-बीच में उनकी ओर देख लिया करती थी। कभी-कभी प्रोफेसर सुधाकर की दृष्टि अलका की दृष्टि के साथ जुट भी जाया करती थी। प्रोफेसर सुधाकर आँखों के इस सम्मिलन से अपने भीतर कुछ अनुभव करते या नहीं; कौन जाने ? पर अलका को उसके भीतर किसी वस्तु का कुछ न कुछ अनुभव अवश्य होता था। मानों प्रोफेसर सुधाकर की दृष्टि अलका के भीतर से कुछ चुरा लेती थी, और अलका की दृष्टि उसी के लिये उसके पीछे-पीछे घूमा करती थी।

अलका प्रोफेसर सुधाकर को केवल देखती ही न; बल्कि वह उनसे बात-चीत करने के लिये अवसर की खोज भी किया करती थी। प्रोफेसर सुधाकर जब कभी रीडिंग रूम में बैठे होते; अलका साहित्य का कोई प्रश्न लेकर उनके पास पहुँच जाती, और उनके हाथ में अपनी पुस्तक देती हुई कह उठती—"प्रोफेसर साहब, इसका क्या अर्थ है ?" कभी-कभी प्रोफेसर सुधाकर के हाथ में पुस्तक देते हुये अलका की उँगुलियाँ उनकी उँगुलियो से छू जातीं। उँगुलियों के इस स्पर्श से प्रोफेसर सुधाकर के हृदय के भीतर भी कुछ पुलक होता, या नही; कह नहीं सकते; किन्तु अलका तो मन ही मन एक अपूर्व सुख में विभोर-सी हो जाती। कदाचित् इसीलिये अलका प्रति दिन प्रोफेसर सुधाकर के हाथ में पुस्तक देने का प्रयत्न करती, और इस प्रयत्न में अपनी उँगुलियाँ उनकी उँगुलियों से छुआ दिया करती थी ! अलका कभी-कभी

प्रोफेसर सुधाकर से एकान्त में, या अधिक देर तक बात-चीत करने के लिये अवसर भी ढूँढ़ा करती थी। प्रोफेसर सुधाकर युनिवर्सिटी से निकलकर जब घर जाने लगते, तब अलका भी कभी-कभी उनके आगे-आगे और कभी उनके पीछे-पीछे चलने लगती थी। कभी वह उन्हें मुख्य फाटक पर किसी की राह देखती हुई भी मिलती। प्रोफेसर सुधाकर उसे देख करके भी न देखते, किन्तु अलका की आँखें जब कभी उनकी आँखों का रंचमात्र भी रस पा जातीं तब सुख के उमंग में ऐसी उछल पड़तीं, मानों जल के वियोग में तड़पती हुई मछली को जल की बूँद मिल गई हो !!

रविवार का दिन था। बारह बज रहे थे। प्रोफेसर सुधाकर दोपहर का खाना खाकर अभी अपने कमरे में पलँग पर लेटे ही थे, कि बाहर द्वार की जंजीर खड़क उठी। प्रोफेसर सुधाकर पलँग पर लेटे ही लेटे अपने नौकर सिद्धू को पुकार कर बोल उठे—"सिद्धू ! देखो तो बाहर कौन है ?"

सिद्धू ने द्वार तक जाकर, और लौट कर उत्तर दिया—"एक लड़की है हुजूर ! यह पर्चा !"

प्रोफेसर सुधाकर ने हाथ में कागज का टुकड़ा लेकर देखा—'अलका !' "अलका ! कौन अलका !" प्रोफेसर सुधाकर के मुख से अपने आप निकल पड़ा ! फिर कुछ क्षणों तक सोच कर वे अपने ही आप बोल उठे—"हाँ, हाँ, ठीक है सिद्धू उसे बुला लो !"

कुछ ही क्षणों के पश्चात् दोनों हाथ जोड़ते हुये अलका ने

कमरे में प्रवेश किया। उन्नीस वर्ष का वय, गौर वर्ण, काले रंग की साड़ी, मस्तक पर बाल नये विन्यास से दोनों ओर ऊपर उठे हुये; और भाल पर एक लघु तारिका सी चमकती हुई लाल बिन्दी; प्रोफेसर सुधाकर एक बार स्वाभाविक दृष्टि से उसे देखकर स्वाभाविक स्वर में ही बोल उठे—बैठो अलका!

अलका ने सामने पड़ी हुई कुर्सी पर बैठते हुये प्रोफेसर सुधाकर की ओर देखा। प्रोफेसर सुधाकर अलका को बैठने का आदेश देकर एक पुस्तक के पृष्ठ उलटने लगे थे। अलका कुछ देर तक चुपचाप बैठी रही, और प्रोफेसर सुधाकर की उन उँगुलियों को, जो बड़ी तन्मयता और तीव्रता से पुस्तक के पन्ने उलट रही थीं, ध्यान से देखती रही; किन्तु कुछ क्षणों के पश्चात् भी जब प्रोफेसर सुधाकर उसकी ओर आकर्षित न हुये, तब जैसे उसके मन को आकुलता चुटकी-सी काटने लगी। वह आकुल-सी होकर एक बार कुर्सी पर हिली, और फिर खाँसने का प्रयत्न-सा किया; किन्तु फिर भी जब प्रोफेसर सुधाकर की ध्यान-मुद्रा भंग न हुई, तब वह अपने को सँभाल कर बोल उठी—प्रोफेसर साहब!

हाँ अलका! कहो!—प्रोफेसर सुधाकर ने पुस्तक के पन्ने बन्द करके उसे रखते हुये कहा—मैं एक आवश्यक चीज खोज रहा था। तुम्हे कष्ट तो अवश्य हुआ। बोलो, क्या बात है!

अलका तत्क्षण कुछ उत्तर न दे सकी। वह केवल मौन होकर प्रोफेसर सुधाकर की ओर देखती रही। प्रोफेसर सुधाकर कुछ उत्तर न पाकर अलका की ओर निहार उठे। अलका की

आँखें कोमल भावनाओं के रंग-मच पर उत्कंठा के साथ नृत्य कर रही थीं। प्रोफेसर सुधाकर ने अलका को अनेक वार देखा था, किन्तु आज उसकी इन आँखों को उन्होंने पहली ही बार देखा; और जब देखा, तब न जाने क्यों, कुछ क्षणों तक उसकी ओर देखते ही रहे। अलका ने उनके इस दृष्टि-विक्षेप को क्या समझा, कह नहीं सकते, किन्तु जब प्रोफेसर सुधाकर उसकी ओर देखने लगे; तब उसने भी प्रोफेसर सुधाकर की दृष्टि मे अपनी दृष्टि मिला दी। फिर न जाने क्यों, प्रोफेसर सुधाकर उसकी ओर से अपनी दृष्टि हटाकर पुनः बोल उठे—हाँ, क्या बात है अलका!

प्रोफेसर सुधाकर का स्वर कुछ अकृत्रिम-सा हो गया था। अलका ने उसे लक्ष्य किया या नहीं, किन्तु जब प्रोफेसर सुधाकर ने उससे दूसरी बार पूछा: तब वह सुधाकर की ओर देखती हुई बोल उठी—हम युनिवर्सीटी की छात्राएँ अपनी साहित्य-समिति की ओर से एक नाटक खेलना चाहती है प्रोफेसर साहब!

बड़ा अच्छा होगा!—प्रोफेसर सुधाकर अपने स्वाभाविक ढंग से बोल उठे।

किन्तु!—अलका ने कुछ सोचकर प्रोफेसर सुधाकर की ओर देखते हुए कहा—हम लोगों की समझ मे नहीं आ रहा है प्रोफेसर साहब, कि कौन-सा नाटक खेले! कई नाटक देख डाले; किन्तु किसी पर दृष्टि न जमी! (कुछ सोचकर) हाँ, प्रोफेसर साहब यदि आपका 'प्रणय का अन्त' हम लोग खेलें तो कैसा हो!

प्रणय का अन्त खेलोगी !—प्रोफेसर सुधाकर ने अपने स्वरों में विस्मय लपेटते हुये उत्तर दिया—नहीं अलका, वह तुम लोगों से न खेला जा सकेगा !

क्यों न खेला जा सकेगा ?—अलका ने प्रोफेसर सुधाकर की आँखों में अपनी आँख जुटाने का प्रयत्न करते हुये कहा !

तुम जानती हो अलका !—प्रोफेसर सुधाकर एक बार अलका की ओर देखकर स्वाभाविक स्वर में बोले—'प्रणय के अन्त' के कथानक का आधार युनिवर्सिटी के एक प्रोफेसर और उनकी छात्रा का पवित्र प्रेम है। कौन ऐसी लड़की है अलका, जो उस छात्रा के चरित्र का अभिनय करेगी; और फिर मेरी समझ मे युनिवर्सिटी में यह नाटक खेला भी न जाना चाहिये !

यह तो दूसरी बात है प्रोफेसर साहब !—अलका तत्क्षण बोल उठी—रही अभिनय करने की बात; उसके लिये तो मैंने स्वयं अपने आपको तैयार कर लिया है।

तुम अभिनय करोगी अलका !—प्रोफेसर सुधाकर ने अलका की ओर देखते हुये नेत्रों में विस्मय भरकर कहा।

अपनी बात समाप्त करने के साथ ही प्रोफेसर सुधाकर को ऐसा लगा, जैसे उनकी आँखों के सामने 'प्रणय का अन्त' के कथानक का एक चित्र अंकित हो उठा हो। वे उस चित्र में देखने लगे,—"युनिवर्सिटी के एक प्रोफेसर हैं, सीधे सादे, सरल हृदय के ! न जाने एक लड़की ने उनमें क्या देखा, वह उनकी ओर आकर्षित हो उठी ! आकर्षण ने उसके हृदय में प्रणय की आँधी

उठा दी ; और वह उसी के आवर्त में उड़ने लगी। प्रोफेसर उसे देखते अवश्य, किन्तु वे उसके हृदय मे धूलि उड़ाती हुई आँधी को न देख पाते, और इसी अनजान स्थिति में एक दिन उनके जीवन का ऐसा अन्त हुआ कि उसकी कथा लोगों के कलेजे को भी निचोड़ लेती है। प्रोफेसर के जीवन का पीड़ा-भरा हुआ अन्त !" प्रोफेसर सुधाकर कुछ आकुल से हुये ; किन्तु पुनः वे अपने को सँभाल कर बोल उठे—हाँ, हाँ, अलका ठीक है, तुम''''तुम खेल सकती हो। खेल सकती हो !!

पर !—अलका प्रोफेसर की ओर देखती हुई तत्क्षण बोल उठी—उसकी प्रति हमारे पास नहीं है प्रोफेसर साहब। मैं वही आपसे लेने आई हूँ।

प्रोफेसर सुधाकर आँखों में कुछ भर कर अलका की ओर देखते हुये उठे और आलमारी से 'प्रणय का अन्त' की प्रति निकाल कर अलका को देते हुए बोल उठे—लो अलका, यही अन्तिम प्रति बच गई थी।

अलका ने 'प्रणय का अन्त' की प्रति लेने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ा दिया, और इतना आगे बढ़ा दिया, कि उँगुलियाँ प्रोफेसर सुधाकर की हथेली के पृष्ठ भाग पर जा पड़ीं, और प्रोफेसर सुधाकर को ऐसा लगा, मानो अलका की उँगुलियाँ रास्ते के बटोही की भाँति उनकी हथेली पर सुसताने लगी हों ! प्रोफेसर सुधाकर ने हाथ की प्रति छोड़ दी ; और वह भूमि पर गिरते-गिरते बची। अलका उसे सावधानी से सँभालकर

प्रोफेसर सुधाकर को अभिवादन करके कमरे से बाहर निकल गई ; किन्तु प्रोफेसर सुधाकर कुछ देर तक खड़े-खड़े उसकी ओर देखते ही रह गये , और फिर एक दीर्घ निश्वास छोड़कर हठात् बोल उठे—यह लड़की ! यह लड़की !!

[२]

गोधूलि का समय था। आकाश मे तारिकायें और घरो में दीपक जगमगा उठे थे; किन्तु मृणालिनी के घर मे अभी तक अन्धकार ही था। दिन के पश्चात्, सन्ध्या जब तिमिर के गर्भ मे छिप जाती है, और स्त्रियाँ आकाश की तारिकाओ को देखकर अपने-अपने घरो मे "सँझवाती" करने के लिने व्यग्र हो उठती है, उस समय भी न जाने क्यों मृणालिनी चुपचाप चारपाई पर पड़ी थी। आकाश में तारिकायें और सड़क पर बिजली की बत्तियाँ बिखर-बिखर कर हँस रही थीं ; पर मृणालिनी को जैसे अपने घर मे दीपक जलाने का स्मरण ही न रहा हो ; जैसे वह कोई मादक शराब पीकर अपने को विस्मृत हो गई हो। कह नहीं सकते, उसकी यह विस्मृति कब तक रहती ; पर इसी समय कोई घर में प्रवेश करता हुआ बोल उठा—अरे, तुम सब कहाँ हो ? चारों ओर अँधेरा ! अभी तक दीपक भी नहीं जले ! आश्चर्य है !

कमरे के भीतर चारपाई पर पड़ी हुई मृणालिनी के कानों में भी यह रव पड़ा, और उसकी विस्मृति के तार इस प्रकार खट-खट टूट गये , मानों उन्हे अनावश्यक समझ कर उन पर किसी

ने आघात किया हो। वह चारपाई पर उठकर बैठते-बैठते बोल उठी—चम्पा, ओ चम्पा, अलका, ओ अलका! कहाँ मर गई दोनों! देखो तो अभी घर मे दीपक भी नहीं जलाया !!

आई माँ!—चम्पा जो दूसरे कमरे मे चारपाई पर पड़ी हुई ऊँघ रही थी—बोल उठी—पर अलका ने कोई उत्तर न दिया। मानो वह सो गई हो, और मृणालिनी की बात उसके कानों में पड़ी ही न हो।

चम्पा जब तक मृणालिनी के पास पहुँचे, मृणालिनी ने उठकर लैम्प जला दिये थे, और आगन्तुक कमरे में पहुँचकर खीझ के स्वर मे कह रहा था—अजीब हो तुम लोग! बाहर का किवाड़ खुला हुआ, घर में अँधेरा, और तुम सब नींद मे। आखिर बात क्या है ?'

पर मृणालिनी और चम्पा, दोनों में से किसी ने कुछ उत्तर न दिया। मानो दोनो ही चुपचाप मौन रूप मे अपना अपराध स्वीकार कर रही हो! आगन्तुक कुर्त्ता, और टोपी उतार कर खूँटी पर टाँगता हुआ पुनः बोल उठा—अलका कहाँ है चम्पा।

सो रही है बाबू जी!—चम्पा ने अपने स्वरों में नम्रता उँडेल कर उत्तर दिया।

चम्पा की बात अभी पूर्ण रूप से समाप्त भी न हो पाई थी, कि मृणालिनी बोल उठी—और उससे आशा ही क्या है? दिन भर युनिवर्सीटी में रहती है। घर आती है तो खा-पीकर चारापई

पर पड़ रहती है। न उसे घर की चिन्ता, और न काम-काज से मतलब ! मैं तो परीशान हो गई इस लड़की से !

मृणालिनी ने जब अपनी यह बात आरंभ की थी, तब चम्पा उसके पूर्व ही कमरे के बाहर चली गई थी, और बात समाप्त होते-होते वह पुनः कमरे के भीतर आ गई; और बोल उठी—बाबू जी खाना खा लीजिये !

आगन्तुक मृणालिनी के पति बाबू कमलदेव थे। साधारण स्थिति के व्यक्ति थे। उनकी गणना न तो धनिकों में थी, और न गरीबों में। छोटा सा कुटुम्ब, दो सौ रुपये मासिक पाते थे। अच्छी तरह खा-पीकर कपड़ा पहन लेते थे। घर में दो लड़कियाँ और स्त्री थी। लड़कियों में एक चम्पा थी, जो घर का काम काज करती थी, और दूसरी थी अलका, जो युनिवर्सीटी में पढ़ती थी। अलका और चम्पा, दोनों ही अब अधिक सयानी हो गई थीं। जब तक ये दोनों लड़कियाँ सयानी नहीं हुई थीं, अपनी छोटी सी गृहस्थी में कमलदेव शान्ति के साथ जीवन बिता रहे थे, किन्तु जबसे इन दोनों ने शैशव के आँगन को पार कर यौवन के अजिर की ओर चरण बढ़ाया, कमलदेव और मृणालिनी के जीवन-आकाश पर चिन्ता का धूमकेतु उदय हो उठा था। कमलदेव और मृणालिनी, दोनों ही चम्पा और अलका को लेकर चिन्ता के साथ तरह-तरह की बातें करते, और दोनों को ठीक-ठिकाने लगाने के लिये इधर-उधर दृष्टि पसारते। अलका के लिये तो उनके मन में उतनी चिन्ता नहीं थी, जितनी चम्पा के लिये। अलका युनि-

वर्सीटी में पढ़ रही थी, और उसके पास रूप भी था। रूप तो चम्पा के पास भी था; किन्तु चेचक ने उसकी एक आँख कुछ छीन कर उस पर तुषार डाल दिया था; और अब वह अधिक वय की भी हो गई थी। कमलदेव, और मृणालिनी; दोनों ही चम्पा को लेकर अधिक चिन्तित रहते; और उनका चिन्तित रहना ठीक भी था। क्योंकि जब समाज में दो नेत्र वाली सुन्दर लड़कियाँ भी रुपये के अभाव में सुहाग की चूड़ियाँ नहीं पहिनती, तो एक आँख वाली बेचारी चम्पा को कौन पूछता है ?

तो फिर ? क्या चम्पा बिना सुहाग की चूड़ियाँ पहने ही अपना जीवन काट देगी ? नहीं, कमलदेव समाज के साथ षडयंत्र करेंगे। दया-मया से शून्य समाज के साथ षडयंत्र करने में हर्ज ही क्या है ? जो समाज रोज ही अपनी आँखों की विष की ज्वाला उगल कर फूल-सी कोमल लड़कियों को जलाता है, छल पूर्वक यदि उसके गाल पर एक कर्कश तमाचा जड़ दिया जाय तो हानि ही क्या है ? किन्तु इसका परिणाम ! क्या चम्पा सुखी रह सकेगी ? किन्तु चम्पा तो इस तरह भी सुखी न रह सकेगी। जब उसके जीवन का निष्कर्ष दुख में ही समाविष्ट है, तब क्यों न मानवता की छाती को कलंकित करने वाले समाज के साथ छल का अभिनय किया जाय, और क्यों न उसके गालों पर तमाचा जड़ कर उसे इस बात के लिये विवश किया जाय, कि वह भी पीड़ा को समझे; दर्द को जाने !

कमलदेव अपने हृदय में विचारों का एक चित्र छिपा कर

प्राय: चम्पा के लिये वर खोजने को जाते। आज भी दो दिनों से वे बाहर गये थे। जब से वे बाहर गये हुये थे, मृणालिनी बराबर इसी उधेड़-बुन में पड़ी रहती थी। यों तो चम्पा और अलका, दोनों ही के लिये उसके हृदय में स्नेह का सागर था; पर जब वह चम्पा को देखती, तब उसका हृदय अधिक सहानुभूति से तड़प उठता था। चम्पा सुशील भी थी, और घर का काम काज भी अधिक करती थी। रूप उसमें भले ही न हो; पर उसमें ऐसे गुण अवश्य थे, जिनसे वह आगे बढ़ कर मृणालिनी के स्नेह को छीन लिया करती थी। अलका इसी से कभी-कभी खीझ भी उठती थी; और व्यंग करती हुई चम्पा को चिढ़ा दिया करती थी। अलका के चिढ़ाने पर भी चम्पा तो शान्त रहती; पर मृणालिनी अलका को डपटने से न रुकती। मृणालिनी की डपट से चम्पा के प्रति अलका की खीझ और भी अधिक बढ़ जाती, और धीरे-धीरे यह खीझ इतनी अधिक बढ़ जाती, कि हफ्तों बीत जाते, और वह चम्पा से न बोलती; किन्तु मृणालिनी! वह तो दिन-रात चम्पा को अपने स्नेह की शय्या पर सुला कर उसे सहानुभूति के अपने सुकोमल हाथों से थप-थपाया करती थी।

उस दिन भी यद्यपि सन्ध्या हो गई थी; और गोधूलि उस पर अंधकार की वर्षा करने लगी थी, किन्तु फिर भी वह चारपाई पर पड़ी हुई चम्पा के जीवन को लेकर उलझी हुई थी। वह चिन्ता के मार्ग पर डोलती हुई अपने विचारों में इतना तन्मय हो गई थी, कि उसे ध्यान ही न रहा, कि कब आकाश में तारे चमक उठे।

छिटकी, और जब घरों में दीपक जलाने का समय हुआ। हो सकता है, वह अपने विचारों में डूबी-डूबी नींद का घूँट पी लेती, किन्तु जब कमलदेव आ गये, तब वह उठ कर बैठ गई, और उसका मन कुछ जानने के लिये व्यग्र हो उठा, किन्तु जब उसने देखा, कि कमलदेव घर में प्रवेश करते ही कुछ खीझ से गये हैं, तब वह सहसा कुछ न पूछ कर मौन हो रही; पर चम्पा ने शीघ्र खाने-पीने का प्रबन्ध कर अपने स्वर के माधुर्य से जो उनकी खीझ को शीघ्र ही शान्त कर दिया, उससे मृणालिनी का हृदय चम्पा के प्रति अधिक स्नेह शील हो उठा, और वह भीतर ही भीतर बोल उठी—न जाने किस पाप से भगवान ने इसकी एक आँख छीन ली। नहीं तो, नहीं तो ....!

मृणालिनी के हृदय में उठी हुई यह बात अभी पूरी भी न हो पाई थी, कि चौके में बैठते हुये कमलदेव बोल उठे—वर तो ठीक कर आया हूँ चम्पा के लिये। छोटा-सा कुनबा है—माँ, लड़का और लड़का का एक भाई। लड़का अलका की युनिवर्सीटी में प्रोफेसर है। सीधा, सादा, सरल विचार का है। इच्छा तो नहीं होती !

पर किया क्या जाय !—मृणालिनी बोल उठी—चम्पा का विवाह तो करना ही है, और यह विवाह बिना छल-षडयंत्र के हो नहीं सकता। कौन ऐसा है, जो साफ-साफ कह देने पर चम्पा के साथ विवाह करने के लिये तैयार होगा ?

कमलदेव अपनी बात समाप्त कर भोजन करते हुये कुछ चिन्ता मग्न-से हो उठे थे। मृणालिनी भी अपनी बात समाप्त कर

कुछ सोचने लगी थी, और चम्पा ? जब कमलदेव ने उसके विवाह की बात चलाई, उसी समय वह चौके से निकल कर उस कमरे में चली गई थी, जिसमें अलका सो रही थी। उसने अलका को जगा कर यह कह दिया था, कि अलका, तुम्हे बाबू जी बुला रहे हैं। चम्पा स्वयं तो उस कमरे में ही रह गई; किन्तु अलका चौके की ओर जा रही थी। अभी अलका दीवाल की ओट में ही थी, कि मृणालिनी कुछ सोच कर पुनः बोल उठी—क्या, उन्होंने चित्र माँगा था ?

हाँ!—कमलदेव ने भोजन का ग्रास मुँह मे डालते हुये कहा—मैंने अलका का चित्र उन्हें दे दिया। मेरी समझ मे उन्हें अलका अवश्य जानती होगी; क्योंकि जब बात चीत में मैंने बताया, कि यह युनिवर्सीटी में पढ़ती है, तब वे चित्र को ध्यान से देख कर कुछ सोचने से लगे थे। बड़ा सीधा और सुशील लड़का जान पड़ता है।

कमलदेव पुनः विचार-मग्न हो उठे। अलका, जो चौके की ओर जा रही थी, जब उसके कानों में यह बात पड़ी, कि अलका उन्हें अवश्य जानती होगी, तब वह दीवाल की ओट में उत्सुकता-वश दीवाल से ही सटकर खड़ी हो गई। कमलदेव कुछ देर तक सोच कर पुनः बोल उठे—यह लड़का—नाम सुधाकर है—पढ़ा लिखा है, ऊँचे विचार का है, और है युनिवर्सीटी का प्रोफेसर। विवाह हो जाने पर जब भेद खुलेगा, तब वह मुझसे अप्रसन्न तो अवश्य होगा, किन्तु बहुत संभव है, कि वह अपने नाम और

अपनी मर्यादा का ध्यान रखते हुये चम्पा को अपने जीवन से विलग न करे। हो सकता है, वह दूसरा विवाह कर ले, किन्तु फिर भी चम्पा के लिये कदाचित् उसके घर मे थोड़ा-सा स्थान वना रहे। फिर अभी इस संबंध मे अधिक सोच-विचार करने की आवश्यकता ही क्या ?

कमलदेव वात समाप्त करते-करते हाथ-मुंह धोकर चौके से उठ गये, और कमरे में जाकर लेट गये। मृणालिनी और कमलदेव के हृदय में इस विवाह मे चाहे जितनी अधिक प्रसन्नता उत्पन्न हुई हो, पर अलका, जो दीवाल की ओट मे खड़ी होकर कमलदेव की वात सुन रही थी, लता की भॉति कॉप उठी। उसे ऐसा लगा, मानों एक साथ ही उसके हृदय के सभी तार झंकृत हो उठे हों! कुछ क्षणों तक तो उसे ध्यान ही न रहा, कि वह कहॉ है, और उसकी क्या स्थिति है ? फिर सहसा वह उस कमरे की ओर मुड़ी, जिसमे चम्पा चारपाई पर लेटी हुई उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। हो सकता है, चम्पा की प्रतीक्षा इसलिये हो, कि वह अलका के आने पर किसी वहाने से उससे पूछे, कि वावू जी क्या कह रहे थे अलका!

पर अलका कमरे मे पहुँचते ही विखर कर चम्पा की गोद मे गिर पड़ी, और इस प्रकार हिचकियॉ लेने लगी, मानों कोई वहुत वड़ी वेदना रह-रह कर उसके कंठ को दवोच रही हो! चम्पा आश्चर्य-चकित-सी हो उठी, और वह कुछ देर के लिये स्तम्भित-सी वन गई। फिर अलका को अपनी

गोद से उठाती हुई बोल उठी—अलका, अलका, क्यों रो रही है तू!

किन्तु अलका ने कोई उत्तर न दिया। वह उसी प्रकार उसकी गोद में पड़ी-पड़ी उसकी छाती पर आँसुओं से अपनी वेदना का इतिहास लिखती रही। चम्पा ने पुनः उसे सहानुभूति से सहला कर उठाने का प्रयत्न किया, किन्तु अलका फिर न उठी, और उसी प्रकार आँसू से उसका वक्षःस्थल भिगोती रही। जब अलका फिर कुछ न बोली, तब चम्पा अपनी वाणी में आर्द्रता का अधिक रस घोल कर बोल उठी—पगली क्यों रोती है? कुछ सुनूँ भी तो।

सुनोगी चम्पा!—अलका ने सहसा अपने मुख को ऊपर उठा कर चम्पा की ओर देखते हुये कहा—मुझे विश्वास नहीं होता चम्पा, कि तुम उसे सुन सकोगी! उसे सुनते ही तुम्हारा हर्ष की लहरों पर नाचता हुआ हृदय सागर के तल में बैठ जायगा, पर चम्पा मैं अपने जीते-जी उनके जीवन का विनाश कभी न होने दूँगी।

चम्पा ने आश्चर्य-चकित होकर अलका की ओर देखा। चम्पा को ऐसा लगा, मानों अलका अपने हृदय की सारी वेदना निकाल कर उसके मुँह पर पटक रही हो, और उसी को अपनी वेदनाओं का आदि स्रोत कह रही हो। चम्पा कुछ देर तक विस्मित होकर अलका की आकृति की ओर देखती रही। फिर उसी की ओर देखती-देखती बोल उठी—किसके जीवन का विनाश न होने दोगी अलका!

पर अलका ने जैसे उसकी बात सुनी ही न हो। उसके हृदय में जो आँधी उठ खडी हुई थी; वह उसी के आवेग में उड़ती हुई बोल उठी—आखिर मै तुमसे पूछती हूँ, चम्पा, कि तुम क्यों उनके जीवन का विनाश कर रही हो, क्यों ?

मैं किसके जीवन का विनाश कर रही हूँ अलका !—चम्पा ने विस्फारित नेत्रों से अलका की ओर देखते हुये कहा—आखिर बात क्या है ? साफ-साफ क्यों नहीं कहती ?

हाँ चम्पा !—अलका पुन. अपने उसी आवेग में बोल उठी—तू सचमुच उनके जीवन का विनाश करने जा रही है। तुम्हारे साथ विवाह करके वे कभी भी सुखी न होगे, और तुम्हें भी सुख के फूल के स्थान मे कॉटे ही मिलेंगे। जब तुम जानती हो चम्पा, कि तुम्हे कॉटे ही मिलेगे तब तुम क्यों अपने साथ उन्हे भी कॉटो मे घसीट रही हो !

अलका की इस बात ने चम्पा के हृदय के तार झन झना दिये। न जानते हुये भी उसके हृदय-पटल पर एक चित्र खिच गया; और साथ ही एक वेदना की बयार-सी डोल उठी। वह कुछ देर तक अपनी उसी वेदना की बयार मे भीतर-ही भीतर उड़ती रही ! फिर अलका की ओर देखकर बोल उठी—वे कौन है अलका !

वे·······वे !—अलका ने हिचकिचाते हुये कहा—मेरी युनिवर्सीटी के प्रोफेसर हैं चम्पा ! पिता जी उन्ही के साथ तुम्हारा विवाह ठीक कर आये हैं। बड़े सीधे सादे और सरल

व्यक्ति हैं। उनके साथ षडयंत्र ! चम्पा इस षडयंत्र की आग में अपने साथ ही साथ तुम उन्हें भी मत जलाओ। विवाह के पश्चात् जब वे तुम्हें देखेंगे, तब उनके हृदय में असन्तोष और दुख की जो आग उठ खड़ी होगी, वह तुम्हे जीवन-पर्यन्त दग्ध करती रहेगी चम्पा; किन्तु अफसोस तो यह है, कि उन्हे भी उस आग में तुम्हारे साथ जलना पड़ेगा। मैं पूछती हूँ चम्पा, तुम्हे इससे क्या मिलेगा, क्या ?

अलका ने अपनी बात समाप्त करके अपने अंचल में अपना मुँह छिपा लिया। मानों उसके अन्तर में जो आघात-क्षत हो गया था, और उससे जो कराह बाहर निकल रही थी, वह उसे भीतर-ही-भीतर रोकने का प्रयत्न कर रही हो। किन्तु चम्पा ! उसके हृदय में तो कई प्रकार के आघात-क्षत उत्पन्न हो गये। वह अपने भीतर के उन आघात-क्षतों से तिलमिला-सी उठी। एक बार तो उसके मन के भीतर इतनी तीव्र विकलता उठी, कि वह जोर से चीत्कार करके रो पड़े; किन्तु फिर उसने अपने मन को बाँधा, और कंठ में उमड़े हुये आर्द्र स्वरों को रोक कर बोल उठी—किन्तु तुम्हे उनसे इतनी सहानुभूति क्यों है अलका !

जैसे आकाश में बादल छाये हुये हों, और हवा उन्हें सहला दे, ठीक वैसे ही चम्पा की इस बात ने मानों अलका को सहला दिया हो, और वह ठीक बादलों की भाँति, "मैं उन्हें.......मैं उन्हें......." कहती हुई चम्पा की गोद में गिर कर बिखर पड़ी। चम्पा कुछ क्षणों तक मन ही मन सोचती रही। फिर वह

अलका को उठाती हुई बोल उठी—तू न रो, अलका ! मैं तुमसे प्रतिज्ञा करती हूँ, कि मैं उनसे विवाह न करूँगी।

सच चम्पा !—अलका ने अपनी आकृति पर कुछ संतोष के भाव लाते हुये कहा—पर पिता जी तो तुम्हारा विवाह उनके साथ ठीक कर आये हैं।

तो इससे क्या होता है अलका !—चम्पा ने गंभीर मुख-मुद्रा से उत्तर दिया—किन्तु देखो, यह बात तुम पिता जी और माता जी से मत कहना !

अलका चम्पा की आकृति की ओर देखने लगी, और चम्पा अपने विचारों में निमग्न-सी हो उठी। कुछ क्षणों तक वह मन-ही-मन अपने विचार-तरंगों पर तैरती रही; फिर अपने आप ही बोल उठी—तू सच कहती है अलका, कि मुझे किसी के जीवन का विनाश न करना चाहिये। विश्वास करो अलका बहन, मैं अब किसी के जीवन का विनाश न करूँगी।

बात समाप्त करते करते जैसे चम्पा का हृदय उसके कंठ में आगया हो। अलका ने देखा, कंठावरोध में चम्पा की आँखों ने कुछ उगल दिये, अलका फिर भी मौन ही रही, और चम्पा ? उसने अँधेरे में अपना मुँह छिपा लिया। मानों उसे प्रकाश और मनुष्यों से इतनी घृणा हो गई हो, कि वह अपने आँसुओ को भी उनके समक्ष गिराना गर्हित—अत्यन्त गर्हित काम समझ रही हो ! ।

[३]

आज कंकण बंधन है, आज तेल-स्पर्श होगा, और आज विवाह है !! ज्यों-ज्यों विवाह के कृत्य समाप्त हो रहे थे; त्यों-त्यों अलका के हृदय की आकुलता भी बढ़ती जा रही थी। जब चम्पा के हाथों मे विवाह का कंकण बँधा, तब, और जब तेल स्पर्श हुआ, तब, चुपके से अलका ने चम्पा से कहा, "क्यों चम्पा, तुमने तो मुझ से प्रतिज्ञा की थी, कि तू उनसे विवाह न करेगी; किन्तु अब यह क्या है ?" प्रत्येक विवाह कृत्य पर जब-जब अलका ने चम्पा को टोका, और याद दिलाई उसकी प्रतिज्ञा, तब-तब चम्पा ने उसे यही उत्तर दिया—"आकुल न हो अलका बहन ! हाथ मेरे पीले हो रहे हैं, किन्तु विवाह तो उनके साथ तुम्हारा ही होगा !" पर अलका के प्रणय से व्याकुल हृदय को धैर्य कहाँ; और फिर ऐसी स्थिति में, जब विवाह के सारे कृत्य क्रम-क्रम से समाप्त हो रहे हैं। अलका को ऐसा लगा, मानो चम्पा उसके साथ विश्वास-घात कर रही है, उसे वाक्-जाल मे फँसा कर समय टालने का प्रयत्न कर रही है। पर अलका कभी समय को हाथ से न जाने देगी ! प्रोफेसर सुधाकर के लिये उसके हृदय में जो आकांक्षा है, उसकी पूर्ति के लिये समय रहते ही वह अवश्य कोई न कोई खेल खेलेगी। यह चम्पा ! वह कभी इसका विवाह प्रोफेसर सुधाकर के साथ न होने देगी ! कितनी चालाक है यह !' कहती है हाथ मेरे पीले हो रहे हैं, किन्तु विवाह तो तेरा ही होगा, किन्तु कब ? आज तो विवाह का दिन है, और कुछ

घंटो ही के पश्चात् यह उनके जीवन के साथ बँध जायगी। फिर, फिर !!

अलका का हृदय अधिक आकुल हो उठा। उसने देखा, सन्ध्या बढ़ी चली आ रही है। सन्ध्या को बढ़ते हुये देखकर अलका को ऐसा लगा, मानो यह आज की सन्ध्या वह सन्ध्या नहीं, जो प्रति दिन दिवस के पश्चात् प्रकृति के आँगन मे पदार्पण किया करती है; बल्कि आज की सन्ध्या वह सन्ध्या है, जो उसकी आकांक्षाओं के सूर्य को ढँक लेगी; और बिखेर देगी उसके जीवन पर गहरा अंधकार। अलका आकुलता के वेग में उठी, और चम्पा के पास जाकर बोल पड़ी—चम्पा, अब क्या कहती है ? अब तो कुछ ही घंटों में तुम्हारा उनके साथ विवाह हो जायगा !

चम्पा ने अलका की ओर देखा। अलका के नथने फड़क रहे थे, और उसकी साँसों मे वेग अधिक था। चम्पा, जो घर के एक कक्ष मे विचारों की लहरियो पर तैर रही थी, अलका की ओर ध्यान से देखकर गंभीर स्वर में बोल उठी—आकुल न हो अलका ! विवाह उनसे तुम्हारा ही होगा।

यह तो तुम कब से कहती आ रही है चम्पा !—अलका ने अपनी निश्वासों से नथनो को फुलाते हुये कहा—और आज भी यही कह रही हो, जब विवाह होने में घंटे-दो घंटे की देर है। पर अब मैं तुम्हारी बातों मे नहीं आ सकती चम्पा ! मैं विवाह होने के पूर्व ही किसी न किसी प्रकार उन पर वास्तविक रहस्य अवश्य प्रगट कर दूँगी !

पागल न बनो अलका !—चम्पा ने अपने स्वरों को दृढ़ बनाकर उत्तर दिया—वही होगा अलका, जो मै अब तक कहती आ रही हूँ। ज़रा धैर्य से काम लो ! देखो, आकुलता मे कोई ऐसा काम न कर बैठना, कि तुम्हारा काम भी न बने, और माता-पिता की मर्यादा भी मिट्टी मे मिल जाय !

पर धैर्य की भी कोई सीमा होती है चम्पा !—अलका ने अपने स्वरों में कुछ तीव्रता भर कर कहा—मैं पूछती हूँ, नदी के कगार पर खड़ा हुआ वह मनुष्य कैसे धैर्य रक्खे, जो अपनी आँखों से यह देख रहा है, कि कगार अब कट कर गिरना ही चाहता है।

यदि कगार को काटने वाली सरिता की लहरें, और लहरों को उत्तेजित करनेवाली वायु उसे विश्वास दिलाती हो अलका !—चम्पा ने गंभीर स्वर में उत्तर दिया—कि नदी का कगार कट कर न गिरेगा, तो उस मनुष्य को धैर्य धारण करना ही चाहिये। एक घंटे का समय तो अभी बहुत अधिक है अलका ! मैं सच कहती हूँ बहन, तू मेरी बात पर विश्वास कर !!

चम्पा की बात अलका के काँपते हुये मन पर कुछ जमी तो; किन्तु फिर जैसे चिकने घड़े पर से जल की बूँद फिसल जाती है, उसी प्रकार चम्पा की यह बात भी अलका के मन पर से फिसल पड़ी, और वह कुछ सोच कर बोल उठी—पर चम्पा मै नहीं समझती, कि तू एक घंटे में क्या और किस प्रकार करेगी ? तुमने पिता जी से कहने के लिये भी रोक दिया है, और अब भी तू यही

कहती जा रही है, कि विवाह मेरा ही उनके साथ होगा; किन्तु यह किस तरह होगा चम्पा ? मैं भी तो कुछ सुनूॅ ।

तू सुन कर क्या करेगी अलका !—चम्पा ने अपने स्वरों मे दृढ़ता भर कर उत्तर दिया—तुम्हारे सुनने की बात तो केवल इतनी ही है, कि तुम्हारा ही विवाह उनके साथ होगा। जा अलका, अपनी आकांक्षाओ के दीपक सजा !

व्यंग्य न करो चम्पा !—अलका ने अधिक रुखाई के साथ कहा।

मैं कैसे तुम्हे समझाऊॅ अलका !—चम्पा ने अपनी वाणी में कोमलता लिपेट कर उत्तर दिया—यदि मै अन्तर के पर्दे खोलकर दिखा सकती तो दिखा देती अलका, कि मेरे मुख से निकला हुआ एक एक शब्द सत्य है। अधिक दुख की बात है अलका बहन ! प्रणय के उन्माद मे तू अपनी बहन को भी भूल बैठी है !

अलका ने साफ-साफ देखा, कि चम्पा के नयनो मे नीर झलक आया है। अलका के मन के ऊपर सहानुभूति की एक रेखा-सी खिंच गई, और कुछ क्षणों के लिये उसने उसे मौन कर दिया। फिर वह अपनी वाणी को विवशता के अभिसार से सजा कर बोल उठी—मै क्या करूॅ चम्पा बहन ! मेरा हृदय....... मेरा हृदय.. . !!

मैं जानती हूँ अलका !—चम्पा ने सहानुभूति के स्वर से उसे सहलाते हुये उत्तर दिया—मैं तुम्हारे हृदय की आकुलता को

अवश्य दूर करूँगी अलका ! मैं फिर तुमसे कहती हूँ, कि तुम्हारा ही विवाह उनके साथ होगा; पर देखो, मेरी बात पर अविश्वास करके कोई भूल न कर बैठना। जा, निश्चिन्त होकर बैठ, और प्रतीक्षा कर !!

अलका के टूटते हुये मन मे कुछ तार जुटे; और वह चम्पा के कमरे से निकल कर उदास मन से विवाह के कार्यों में लग गई; किन्तु उसका मन रह-रह कर ऐसा काँप उठता था, जैसे भयानक अंधड़ मे कोई लता !!

सन्ध्या के आठ बज रहे थे। बारात द्वार-पूजा के पश्चात् आवास-स्थान में लौट कर आंशिक विश्राम कर रही थी। खाने-पीने का प्रबन्ध हो रहा था; और विवाह की चर्चा भी चलने लगी थी। प्रोफेसर सुधाकर वर के रूप मे एक पलँग पर बैठे हुये कुछ सोच रहे थे। विवाह की चर्चा सुनते ही उनकी आँखो के सामने अलका का एक चित्र अंकित हो उठा था; और वे उसी को लेकर विचारों के तरंगों पर तैर रहे थे—"अलका ! कितनी वाचाल लड़की है वह ! उस दिन वह कितनी निर्भयता से बोल उठी थी, कि वह मेरे नाटक के उस लड़की के चरित्र का अभिनय करेगी, जो वासना के उन्माद में उस प्रोफेसर के पीछे-पीछे घूमा करती थी। इतना ही नहीं, और उस दिन उसने नाटक की प्रति मेरे हाथ से लेते हुये धृष्टता पूर्वक अपना हाथ भी तो छुआ दिया था। हो सकता है, 'प्रणय का अन्त' की भाँति ही उसके हृदय में

भी प्रणय जाग उठा हो, किन्तु प्रणय को प्रगट करने में ऐसी धृष्टता तो न करनी चाहिये। (कुछ सोच कर) हो सकता है, उसका हाथ सहसा मेरे हाथ से छू गया हो। रही अभिनय करने की बात! उसमे भी कोई त्रुटि तो दिखाई नहीं देती। यदि उसने उस लड़की के चरित्र का अभिनय किया, तो इससे उसके हृदय का साहस ही टपकता है। देखने में भी तो वह अधिक सुन्दर है। यदि बाहरी सौन्दर्य के साथ सचमुच उसमे आन्तरिक सौन्दर्य भी हुआ, तो फिर जीवन में......!

प्रोफेसर सुधाकर अभी विचारों की लहरियों से खेल ही रहे थे, कि दो छोटे-छोटे बच्चे कुछ आगे-पीछे आये, और प्रोफेसर सुधाकर के कानों मे चुपके से कुछ कह कर उन्हे एक-एक पत्र देकर चले गये। प्रोफेसर सुधाकर अपने स्थान से उठे, और एकान्त में जाकर एक पत्र खोल कर पढ़ने लगे:—

मेरे देवता!

मैं हूँ, आप की अलका, जिसे आप समझ रहे हैं; कि वह आप के जीवन के साथ बॉधी जा रही है। पर आपको यह जान कर अधिक दुःख होगा नाथ, कि आपके जीवन के साथ षडयंत्र किया जा रहा है! मेरे नाम से आपके जीवन के साथ बॉधी जा रही है मेरी बहन चम्पा, जिसकी चेचक में एक ऑख कुछ विकृत हो गई है। अब भी समय है मेरे देवता, सावधान हो जाइये!

आपकी पुजारिणी

अलका।

प्रोफेसर सुधाकर के हृदय पर एक गहरा विषाद-सा लोट गया। वे विषाद में कुछ ऐसे डूब गये, कि हाथ का पत्र भूमि पर गिरते-गिरते बचा। पर बारात की चहल-पहल ने उन्हें अधिक देर तक विस्मृति मे न रहने दिया। प्रोफेसर सुधाकर ने उस पत्र को मोड़ कर कॉपते हुये हाथों से दूसरा पत्र खोला, और उसे पढ़ना आरंभ किया:—

प्राणेश !

नहीं, नहीं, आपको प्राणेश कहने का मुझे अधिकार नहीं। यद्यपि मेरे विवाह के सारे कृत्य आपके नाम के साथ हुये हैं, पर इसमें प्रवंचना है, षडयंत्र है। मै उस षडयंत्र की आग मे आपको नहीं जलाना चाहती। मैं इस प्रज्वलित षडयंत्र की आग को बुझाने के लिये, चुपके से, घर सेजा रही हूँ। कहाँ जाऊँगी, कह नहीं सकती: पर जाते-जाते निवेदन के रूप में दो शब्द आपके कानों मे डाले जा रही हूँ, कि आप इस अधूरे विवाह को वहन अलका के साथ समाप्त कर लें। अलका आपको, .. आपको ...!

अभागिनी

चम्पा।

प्रोफेसर सुधाकर की दृष्टि के सामने अलका और चम्पा के पत्र चित्रपट की भाँति नाच उठे। प्रोफेसर सुधाकर ने दोनों पत्रों के चित्रपटों में क्या देखा, और देखकर क्या सोचा, कुछ कह नहीं सकते; किन्तु कुछ देर तक वे सोचते अवश्य रहे; फिर वे सहसा द्रुत गति से बाबू कमलदेव के द्वार की ओर चल पड़े;

और उनके द्वार पर पहुँच कर उन्हें बुला कर बोले—बाबू कमलदेव, आपकी लड़की चम्पा कहाँ है ? मैं उससे मिलना चाहता हूँ।

चम्पा !—बाबू कमलदेव ने विभ्रान्त परिस्थिति में आकुलता के स्वर में उत्तर दिया—चम्पा ! आप मिलेंगे उससे ! अच्छा ठहरिये। (कुछ सोच कर) नहीं, नहीं, प्रोफेसर साहब, आप उससे न मिलें ! उसका दिमाग ...उसका दिमाग !

मुझसे अब न छिपाइये कमलदेव बाबू !—प्रोफेसर सुधाकर ने गंभीरता के साथ कहा—जाइये, चम्पा की खोज कीजिये ! चम्पा की एक आँख भले ही कुछ खराब हो, किन्तु उसके हृदय के नेत्र बड़ी ज्योति वाले हैं ! जब तक चम्पा न मिलेगी, मैं अविवाहित रहूँगा कमलदेव बाबू ! जाइए, शीघ्र उसका पता लगाइए।

कमलदेव बाबू चम्पा की खोज के लिये दौड़ धूप करने लगे। कह नहीं सकते चम्पा मिली या नहीं, पर प्रोफेसर सुधाकर के हृदय में चम्पा के त्याग और अलका के स्वार्थ-मोह की जो आँधी उठ खड़ी हुई थी, वह उनके हृदय-समुद्र का बराबर मंथन किया करती थी।

—:०:—

संखिया

सरला! ओ सरला!—सरोजिनी ने चारपाई पर लेटे-लेटे कहा!

आई माँ!—समीप के एक दूसरे कमरे से सरला ने उत्तर दिया।

दिन के बारह बजे के पश्चात् का समय था। सूर्य के यौवन पर वार्द्धक्य की एक क्षीण रेखा झलक उठी थी। संसार प्रभात में अपने फैलाये हुये कार्य-व्यापार को समाप्त करने की शीघ्रता में तीव्रता करता जा रहा था, पर सरोजिनी चुपचाप अपने कमरे में चारपाई पर लेटी हुई थी। आकृति उदासीनता के आवरण से ढँकी, आँखें कुछ गीली-गीली; ऐसा लगता था, मानों निराशा से आहत होकर अपनी सुध-बुध छोड़कर भागी जा रही है। सरला ने कई बार उसके पास जाकर उससे कहा, कि माँ, उठ, खाना खा ले, पर वह न उठी। मानो चिन्ता की आग ने उठकर उसके जठर के तन्तुओं को भी जला दिया हो।

सरला को उसने क्यों आवाज दी? यह तो स्वयं सरोजिनी

भी नहीं जानती। हो सकता है, चिन्ता के कादम्ब को भरपूर पी करके ही आवेश में बोल उठी हो; पर सरला ने तो यही सोचा, कि कदाचित् उसकी माँ को भूख लगी हो। वह दूसरे कमरे से उठकर सरोजिनी के पास जा पहुँची, और बोल उठी—क्या है माँ!

सरोजिनी ने जैसे उसकी बात सुनी ही न हो, जैसे उसका मन चारों ओर से अपना ध्यान बटोर कर किसी विशेष दृश्य पर केन्द्रित हो! सरला कुछ देर तक खड़ी-खड़ी सरोजिनी की ओर देखती रही, और फिर अपने कंठ को दबाते हुये बोल उठी—माँ! तुमने अभी मुझे बुलाया!!

सरला ने प्रयत्न तो अधिक किया, कि उसके हृदय में जो वेदना दौड़ रही है, वह करुणा की आँच से पिघल कर उसकी आँखों मे न आ जाय; पर भीतर करुणा ने 'अपनी आँच इतनी गरम कर दी, कि आँखें तर होने के साथ ही साथ सरला का कंठ भी करुणा से विजड़ित-सा हो उठा, और जब उसने "माँ! तुमने अभी मुझे बुलाया" कहा, तो ऐसा लगा, मानों उसके कंठ का एक-एक शब्द पानी से भीगा हुआ है। सरोजिनी सरला की ओर निहार उठी।

पन्द्रह-सोलह वर्ष का वय! यौवन अंग-अंग से फूटा पड़ रहा था; पर जैसे कुम्हलाया हुआ, और अधिक मुरझाया हुआ! ऐसा लगता था, मानो बर्फानी हवा ने उठकर उसके विकास को झुलसा दिया हो। मुख-मंडल निराशा के धुएँ मे

अभिषिक्त, और आँखें पानी से तर! सरोजिनी शीघ्र बोल उठी—सरला, तू रो रही है।

बरसात में जब हवा चलती है, तब जैसे बादल और भी अधिक जोर से जल की बूँदें चारो ओर बिखेर देते हैं, उसी प्रकार सरोजिनी के शब्दो ने सरला की आँखों मे उमड़ी हुई घटा को जैसे वायु बनकर बिखरा दिया हो! आँसू टप्-टप् उसकी आँखों से गिरने लगे। सरला की आँखों से गिरते हुये आँसू सरोजिनी के हृदय को जैसे खंड-खंड कर रहे हो; पर सरोजिनी उस ओर न ध्यान देकर स्नेह का अंचल फैलाती हुई बोल उठी—पगली लड़की तू रोती क्यो है? मै मर तो गई नहीं हूँ। मेरे जीते जी तुझे · · ।

सरोजिनी अपनी बात समाप्त ही कर रही थी, कि दीवाल पर टॅगी हुई चिर प्राचीन घडी ने 'टन्न-टन्न' करके दो बजा दिये। सरोजिनी घड़ी की ओर देख कर बोल उठी—अरे, दो बज गये! और अभी खाना ··। क्या बताऊँ, मुझे ध्यान ही न रहा। पगली लड़की, तू क्यो मेरे पीछे प्राण दे रही है! अरे तुमने तो खाना खा लिया होता! यह वय, और यह तेरा शरीर! जा, जल्दी, खाने का प्रबन्ध कर। मैं अभी आती हूँ।

सरला ने सरोजिनी की ओर देखा। सरोजिनी को सरला की आँखो मे करुणा का जो दृश्य दिखाई पड़ा, उसे देखकर सरोजिनी के हृदय का कोना-कोना तक विकम्पित-सा हो उठा। सरोजिनी को ऐसा लगा, मानों सरला अपनी करुणा मे लमी

हुई आँखो से उसकी ओर देखकर कह रही है. "माँ! तू मेरे पीछे प्राण दे रही है, या मै!" सरला कुछ देर तक विपण्ण मुख से खड़ी रही; फिर धीरे-धीरे चौके की ओर चली गई, और सरोजिनी फिर अपने विचारो की आँधी के साथ उड़ने लगी—"यह लड़की, कुछ समझ मे नही आता! जीवन के आकाश मे जैसे धूमकेतु की तरह उदय हो आई हो! पर क्या अपराध है इस बेचारी का! ओह, ऊँचे कुल मे जन्म लेना भी बडा पाप है। जिसके पास जाती हूँ, वही इतना मुँह फैलाता है, कि यदि मैं सारी गृहस्थी भी उसके मुँह मे डाल दूँ तो शायद उसका मुँह न भरे। कितनों के द्वार देखे, कितनो के आगे जाकर गिड़गिडायी; पर सभी रुपयो की बात तो पहले करते है, और मनुष्यता की पीछे! मानो आज के संसार में मनुष्यता का कुछ मोल न हो, और रुपयो का सब कुछ। फिर, फिर क्या? अब एक ही द्वार है, श्रीकान्त ठाकुर का। चलो उसे भी खटखटा लूँ! अपने पुराने जान-पहचानी है! शायद रहम आ जाय!"

सरोजिनी सोचते-सोचते कुछ गंभीर सी हो गई, और उसकी आँखों के सामने एक चित्र भी खिच गया। उसने उस चित्र मे अपने जीवन के वे रँगीले दिन देखे, जो वैभव के हिडोले पर झूला करते थे. बड़े-बड़े आते थे, और उसके पति के सामने सहानुभूति के लिये अंचल फैलाते थे, पर आज जब उसकी दुनिया उजड़ गई है, तब कोई उसके मुख पर आँख का एक कतरा पानी भी गिराने को तैयार नही। यह सरला! ओह, जो एक दिन

अपने पिता के प्रेम के चर्ख पर नाचा करती थी, आज जैसे जीवन का अभिशाप-सी बन गई है ! ...!"

सरोजिनी अभी अपने उस चित्र को तन्मयता के साथ देख ही रही थी, कि सरला चौके के भीतर से बोल उठी—माँ खाना परस दिया है ! आओ न !

सरोजिनी को खाने की बिलकुल इच्छा न थी; जैसे उसके हृदय में चिन्ता ने इतना बवण्डर पैदा कर दिया हो, कि भीतर अब भोजन के लिये स्थान ही अवशेष न रह गया हो ! पर सरला ! जब तक वह न खायगी, तब तक वह भी उदास मुख से चूल्हे के पास बैठी रहेगी। सरोजिनी इच्छा न रहने पर भी चारपाई से उठी और चौके में जाकर अनिच्छित मन से कुछ खाकर, हाथ-मुँह धोती हुई बोल उठी—सरला, मैं जरा श्रीकान्त ठाकुर के घर जा रही हूँ। वही, जो गणेशगंज मे रहते हैं, और तुम्हारे पिता के पास अधिक आया करते थे। अपनी बिरादरी के हैं। देखो !

सरला ने सरोजिनी की ओर एक बार देखकर अपना मस्तक नीचे झुका लिया, और फिर भोजन का एक-एक ग्रास इस प्रकार मुँह में डालने लगी, मानों उसमें विष मिला हुआ हो ।

× × ×

सन्ध्या के चार बज रहे थे। श्रीकान्त ठाकुर अपने बैठक में कुछ लोगों के साथ बैठे हुये समाज-सुधार की बातें कर रहे थे। पचास-पचपन की वय थी, बाल पक गये थे। खाने-पीने से अच्छे

थे। पता नहीं, इससे या उनके अच्छे विचारों के कारण समाज के लोग उन्हें अच्छा कहा करते थे। श्रीकान्त ठाकुर ने अभी एक व्यक्ति की एक बात का उत्तर देने के लिये मुँह खोला ही था, कि उनके नौकर ने कमरे में प्रवेश करके कहा—बाबू, दयानन्द की पत्नी आई हैं, आप से मिलना चाहती हैं।

श्रीकान्त ठाकुर के कंठ से निकलती हुई बात कंठ में ही रह गई, और वे नौकर की ओर आश्चर्य की दृष्टि से देखते हुये आश्चर्य के ही स्वर में बोल पड़े—दयानन्द की पत्नी!

हाँ बाबू!—नौकर ने उत्तर दिया—वही जो भैरोकुण्ड पर रहते थे!

ठीक, ठीक!!—श्रीकान्त ठाकुर ने अपनी स्मृति को सँभालते हुये कहा—उन्हें बगल वाले कमरे में बैठाओ, मैं अभी आता हूँ।

श्रीकान्त ठाकुर पूरे घंटे भर समाज-सुधार पर उन लोगों से बातें करते रहे। बातों की झड़ी में वे यह भी भूल गये, कि नौकर ने उनसे क्या कहा था, और उन्होंने किसे बगल वाले कमरे में मिलने के लिये बैठाल रक्खा है! बातचीत की झड़ जब समाप्त हो गई, तब वे बाहर निकलकर अपनी वाटिका में टहलने लगे। आश्चर्य नहीं, वे कुछ देर के पश्चात् घूमने के लिये बाहर निकल जाते, किन्तु नौकर ने पहुँचकर फिर उन्हें स्मरण दिलाया, और वे कमरे में पहुँचकर कुर्सी पर बैठते हुये बोल उठे—क्षमा कीजियेगा, मुझे स्मरण ही न रहा! कहिये, आपने कैसे आने का कष्ट किया!

पाठक, अभी सरला की माँ सरोजिनी को न भूले होंगे! दयानन्द की पत्नी, यह सरोजिनी ही है। जब श्रीकान्त ठाकुर पूरे घंटे भर के पश्चात् भी उससे न मिले, तब उसका हृदय निराशा से मथ उठा। उसके एक मन ने कहा, कि वह उनसे विना मिले हुये ही चली जाय; पर उसके दूसरे मन ने शीघ्र यह कह कर उसके स्वाभिमान के जुड़ते हुये तारों को तोड़ दिया, कि आखिर वह जायगी तो कहाँ जायगी। सरोजिनी बड़ी विवशता के साथ निराशा की मर्मान्तक पीड़ा को हृदय के पहलुओं में छिपाये चुपचाप बैठी रही। पर जब श्रीकान्त ठाकुर ने कमरे में प्रवेश करके कुर्सी पर बैठते हुये कहा, कि क्षमा कीजियेगा; मुझे स्मरण ही न रहा, तो जैसे उसके हृदय के पहलुओं में दबी हुई वेदना आँधी की भाँति उमड़ उठी, और सरोजिनी के एक मन ने वेदना की उसी आँधी में उड़ते-उड़ते यह सम्मति दी, कि वह श्रीकान्त ठाकुर से कह दे; कि "हाँ बाबू, जब मेरी दुनिया का सितारा ही अस्त हो गया है, तब फिर यदि आपको भी मेरा स्मरण न रहे तो आश्चर्य की बात ही क्या है?" किन्तु दूसरे मन ने शीघ्र सरला की एक तसवीर उसके हृदय-पटल पर खींच दी; और प्रथम मन की सलाह से उठी हुई बात कंठ तक आकर कंठ में ही विलीन हो गई। सारोजिनी ने कुछ देर तक उत्तर न दिया। कदाचित् वह अपने हृदय को स्वाभाविक स्थिति में लाने का प्रयत्न कर रही थी! श्रीकान्त ठाकुर उत्तर न पाकर इसी बीच में पुनः बोल उठे—कहिये, आपने कैसे आने का कष्ट किया?

आप तो जानते ही हैं ठाकुर साहब !—सरोजिनी ने अपने कंठ-रव को ठीक करते हुये मन्द स्वर में कहा—उनके मरते ही मेरी सारी दुनिया उजड़ गई, और देखते ही देखते जो कुछ था, सब धूल मे मिल गया। खैर, उस पर वश ही क्या ? (कुछ रुक कर) ठाकुर साहब, अब लड़की अधिक सयानी हो गई है; और उसी की चिन्ता मुझे रात दिन चैन नहीं लेने दे रही है।

सरोजिनी ने अपनी बात समाप्त करके ठाकुर श्रीकान्त की ओर देखा। ठाकुर श्रीकान्त की आकृति पर जैसे गंभीरता-सी दौड़ गई हो। वे गंभीरता ही के प्रवाह मे बहते-बहते बोल उठे—तो कहिये, इस संबंध मे मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?

सरोजिनी ने ठाकुर श्रीकान्त की ओर देखा। मानो वह अपनी आँखो की भाषा से कह रही हो, आप चाहे तो मुझे इस आपदा के गंभीर सागर से निकाल सकते हैं; पर ठाकुर साहब तो आँखो की भाषा समझने से रहे। सरोजिनी कुछ देर तक चुप रही। फिर बोल उठी—ठाकुर साहब, आपका उनसे बड़ा मेल था। मै चारो ओर से निराश होकर आपके पास आई हूँ। जहाँ जहाँ गई, सबने इतना मुँह फैलाया, कि मै अपना घर-द्वार बेंच करके भी उसे पूरा नहीं कर सकती। अब आप ही उस लड़की की जीवन-नौका को पार लगायें। लड़की आप देख ही चुके हैं। यदि आप ·····।

सरोजिनी अपनी बात समाप्त भी न कर पाई थी, कि ठाकुर श्रीकान्त बीच ही में बोल पड़े—ओ, मै समझ गया, मैं समझ

गया; पर आप को कदाचित् मालूम नहीं, कि प्रभंजन अभी डाक्टरी पास करके आया है। प्रथम तो अभी उसका विवाह करने का विचार नहीं है, और जब कभी यह समस्या सामने आयेगी तो मैं यह उसकी इच्छा पर छोड़ दूँगा, कि वह चाहे जहाँ विवाह करे। मुझे दुःख है, कि मैं इस संबंध में कुछ भी नहीं कर सकता।

सरोजिनी के पैरों की पृथ्वी खिसक गई। वह आशा का जो बाँध अपने मन मे बाँध कर आई थी; वह एक झोंके में ही टूट पड़ा, और उसका मन निराशा की लहरों के साथ खेलने लगा। उसे ऐसा लगा, जैसे उसकी आँखों के लिये अब सारे जगत पर तम की प्रगाढ़ वर्षा-सी हो रही हो। सरोजिनी भीतर ही भीतर अधिक आकुल-सी हो उठी। क्या कहे, क्या न कहे? और फिर कुछ कहे भी, तो अब किस प्रकार कहे? सरोजिनी सोच ही रही थी, कि श्रीकान्त ठाकुर पुनः बोल उठे—मुझे एक अधिक आवश्यक कार्य से बाहर जाना है। आज्ञा चाहता हूँ; फिर कभी आइयेगा तो बात होगी। शायद मैं कोई प्रबन्ध कर दूँ!

श्रीकान्त ठाकुर बात कहते-कहते कुर्सी से उठकर खड़े हो गये, और कमरे के बाहर चले गये। सरोजिनी को ऐसा लगा, मानों वे सहानुभूति के गाले में अपने हृदय की सारी उपेक्षा लिपेट कर उसके ऊपर डाल गये हों। सरोजिनी के नेत्रों से आँसू ढुलक पड़े। उन आँसुओं के लिये पृथ्वी के अंचल के अतिरिक्त और स्थान ही कहाँ था?

[२]

अपराह्न के पूर्व का समय था। सड़क और सड़क की पटरी पर आने-जाने वालों की भीड़ कुछ कम हो चली थी। मानों प्रकृति ने दोपहर को रात्रि के मार्ग की एक मंजिल बना दी हो! प्रभात होते ही जब लोग कार्यों की अपनी-अपनी गठरी अपनी-अपनी पीठ पर लाद कर चलते है, तो इसी मंजिल पर पहुँच कर आराम करते हैं। गरीब-अमीर, हरवाहे-चरवाहे, किसान मजदूर सभी दोपहर होते ही अपनी गति बन्द कर देते हैं, और साँसों की शय्या बिछाकर अपने प्राणों को आराम देते है। शहर और गाँव, दोनों में ही उस समय कुछ सन्नाटा-सा छा जाता है। गाँव के उस सन्नाटे को तो हम 'सन्नाटा' कह सकते हैं, पर नगरों के उस सन्नाटे को हम अर्द्ध विराम ही कहेंगे; क्योंकि नगरों में उस समय भी गति और व्यापार की लहरें उठ उठकर लोगों के हृदय-किनारों से टक्कर लिया करती है।

समय के इसी अर्द्ध-विराम में एक चालिस-पचास वय की स्त्री मुख्य मार्ग से काशी चौक की ओर धीरे-धीरे पटरी से होकर बढ़ी चली जा रही थी। मानों समय के इस अर्द्ध-विराम में उसे विश्राम की कोई चिन्ता न हो, और वह अपने पैरों की गति से अलसाये हुये समुद्र में कंपन उत्पन्न करने का असफल प्रयास कर रही हो। चेहरा उदास, आँखों की प्यालियों में पीड़ा का रस भरे हुये, श्वेत चद्दर में लिपटी हुई इधर-उधर देखती बढ़ी चली जा रही थी। ऐसा लगता था, मानों सड़क की पटरी पर चलते

हुये विचारों के रथ पर सवार हो। कभी राह में चलते-चलते किसी के पास रुक जाने का प्रयत्न करती; किन्तु जब तक वह रुकने के लिये सोचती वह उसे छोड़ कर आगे निकल जाता! कभी किसी दूकान के सामने खड़ी होकर दूकान की ओर ध्यान से देखती, और मन में साहस बटोर कर दूकानदार से कुछ कहने का प्रयत्न भी करती; किन्तु प्रयत्न करने पर भी जैसे कुछ कह न पाती और चल देती। कभी राह में चलते हुये किसी स्त्री-पुरुष से धक्का लगते लगते बचता; और कभी जब धक्का लग जाता तो गरीब से, 'क्षमा करना भाई या बहन,' और अमीर से 'पगली' या 'अन्धी' की उपाधि अंचल में लेकर आगे चलती! विचित्र गति थी इस स्त्री की!! उसकी एक-एक गति से ऐसा टपकता था, मानों सड़क की पटरी पर चलती हुई किसी चीज़ की खोज कर रही हो; मानों किसी चीज के संबंध में कुछ पूछना चाहती हो, और न पूछ सकती हो; मानों कोई ऐसा बहुत बड़ा भय है, जो उसके कंठ को दबा देता है, और बात न निकल कर भीतर ही भीतर दब जाती है।

कौन जाने, वह स्त्री सड़क की पटरी पर चलती हुई किस वस्तु की खोज में तन्मय थी, और क्या पूछना चाहती थी; पर सहसा वह एक कमरे के सामने जाकर रुक गई! कमरे में दो तीन आलमारियाँ, बीच में एक कुर्सी और मेज तथा दोनों ओर दो तिपाइयाँ! कुर्सी, पर एक युवक बैठा हुआ सड़क की ओर देख रहा था। स्त्री ने कुछ देर तक ध्यान से उस कमरे और

युवक की ओर देखा। फिर न जाने उसने क्या सोचा, और वह रुकती हुई कमरे के भीतर जाकर तिपाई पर बैठ गई।

युवक ने एक बार स्त्री की ओर ध्यान से देखा, और फिर कहा—कहिये, क्या बात है ?

स्त्री ने सिर उठाकर युवक की ओर देखा। स्त्री की आँखों में प्रत्यक्षत: पीड़ा रस घोल रही थी ! युवक ने स्त्री की आँखों की पुतलियों में नाचती हुई पीड़ा को देखा या नहीं, कौन जाने ; पर वह अपने ही स्वर में पुनः बोल उठा—कहिये, कहिये, क्या कष्ट है आपको ! संकोच न कीजिये ! डाक्टर से संकोच कैसा ?

युवक के स्वर में कुछ स्निग्धता थी। स्त्री को कुछ साहस हुआ, और वह बोल उठी—डाक्टर साहब, आप डाक्टर हैं ! आप जानते होंगे, संखिया कहाँ बिकता है !

संखिया !—युवक डाक्टर ने स्त्री की ओर आश्चर्य से देखते हुये आश्चर्य के स्वर मे कहा—क्या कीजियेगा संखिया ?

स्त्री के स्वर कंठ से निकलकर पहले अधरों के पुटो मे कुछ लड़खड़ाये ; फिर उसने उन्हें सावधानी से सँजोकर अधरों पर रखते हुये कहा—क्या बताऊँ डाक्टर साहब ! एक लड़की है, उसे फोड़ा निकल आया है। दिन-रात पीड़ा से छटपटाया करती है। एक मनुष्य ने बताया है, कि संखिया से फोड़ा शीघ्र फूट जायगा।

युवक ने ध्यान से स्त्री की ओर देखा। स्त्री की आकृति मुरझाई हुई, रग-रग जैसे पीडा का स्तोत्र गा रहा हो, और कंठ

का स्वर, वह भी तो मानो पीड़ा से कुचला हुआ है ! युवक कुछ विचार-मग्न-सा हो उठा, और उसका ध्यान स्त्री की बात की ओर जा पहुँचा—"लड़की को फोड़ा हुआ है, और वह संखिया से शीघ्र फूट जायगा !" युवक की दृष्टि के सम्मुख एक चित्र-सा खिंच गया, और वह कुछ सोचकर चित्र को देखते ही देखते बोल उठा—हाँ, क्या कहा आपने ? लड़की,...उसे फोड़ा निकला है, और वह संखिया.......!

स्त्री बीच ही में अर्द्ध-प्रस्फुटित स्वर में हिचकिचाते हुये बोल उठी—हाँ डाक्टर साहब, संखिया ! सुना है संखिया फोड़े की बड़ी अच्छी दवा है !

निश्चय, निश्चय !!—युवक ने अपनी आँखों के विस्मय को आँखों की पुतलियों में छिपाते हुये कहा—सचमुच संखिया फोड़े की बड़ी अच्छी दवा है। घबड़ाइये नहीं, मेरे पास है। मैं आपको दूँगा !'

युवक अपनी बात समाप्त कर कुछ सोचने-सा लगा। जैसे, वह मन ही मन कोई चित्र-सा तैयार कर रहा हो। किन्तु इस चित्र-निर्माण में वह बड़ा सावधान और सतर्क-सा दृष्टिगोचर हो रहा था। फिर वह अपनी कुर्सी से उठकर डिस्पेन्सरी के भीतर गया, और एक पुड़िया लाकर स्त्री को देते हुये बोल उठा—'देखिये यह जहर है। सँभाल कर रखियेगा, और किसी को दिखाइयेगा नहीं, भला !'

स्त्री ने पुड़िया हाथ में लेकर एक बार युवक की ओर देखा।

मानों वह युवक की आकृति पर कुछ पढ़ने का प्रयत्न कर रही हो। फिर युवक की ओर देखते ही देखते बोल उठी—इसके पैसे डाक्टर साहब !

युवक स्त्री के हाथ मे पुड़िया देकर, जैसे विचारो की लहरियो में खेलने लगा था। उसे जैसे ध्यान ही न था, कि इस पुड़िया का उस स्त्री से पैसा भी लेना चाहिये, या नहीं ! स्त्री की पैसे वाली वात से युवक जैसे चौंक सा पड़ा, और अपनी भूल को सुधारते हुए बोल उठा—ओह, पैसे ! आठ आने दीजिये !

स्त्री ने आठ आने पैसे निकालकर युवक की मेज पर रख दिये। युवक ने एक वार उन पैसों की ओर देखा, और फिर स्त्री की ओर ! दोनों मे ही उसे अधिक रहस्य-सा दिखाई पड़ा। वह उसी रहस्य में डूबा-डूबा स्त्री की ओर देखते हुये बोल उठा—हाँ, आपका नाम और पता क्या है ?

नाम और पता !—स्त्री के अधरों से अस्फुट स्वर से निकल पड़ा, और जैसे वह कुछ हिचकिचायी ! मानो नाम और पता पूछकर युवक ने उसे अधिक चिन्ता मे डाल दिया हो।

युवक ने अपनी दृष्टि मे सतर्कता भरकर स्त्री की ओर देखा, और फिर वह अपने स्वाभाविक स्वर में बोल उठा—हाँ, नाम और पता ! इसमे हर्ज ही क्या है ? न जाने कितने लोग आते हैं, और दवा के लिये संखिया ले जाते हैं। जहर है न, इसीलिये यह नियम बनाया गया है, कि ले जानेवाले का नाम और पता लिख लिया जाय।

युवक की बातों से स्त्री को जैसे प्रोत्साहन-सा मिला, और उसने डाक्टर से एक कागज का टुकड़ा और पेन्सिल माँग कर उस पर अपना पता लिखकर डाक्टर को देते हुए कहा—यही मेरा पता है।' डाक्टर ने उसे हाथ में लेकर पढ़ा—"दयानन्द की पत्नी, भैरोकुण्ड पर ८५ नं० का मकान।"

युवक ने स्त्री का पता एक रजिस्टर में लिखते हुए कहा—अच्छा, अब आप जा सकती हैं, पर देखिये, यह जहर है, इसे सँभालकर रखियेगा!

स्त्री तिपाई से उठी, और युवक के कमरे से निकलकर उसके दृष्टि-पथ से अदृश्य हो गई। पर जैसे, वह युवक को गंभीर-विचारों के सागर में डुबा गई हो! युवक उसके जाने के साथ ही साथ विचारों के पंख पर बैठकर उड़ने लगा—"कौन है यह स्त्री! आँखें उदास, आकृति पर जैसे वेदना का सघन धुँआ-सा छाया हुआ है। कंठ-स्वर भी जैसे इसका अधिक आर्द्र-सा है; किस प्रकार पहले उसने मुझे ध्यान से देखा, और किस प्रकार जब कमरे में आई, तो उसने हिचकिचाते हुये संखिया माँगा! रोज ही लोग आते हैं, और दवा के लिये विष ले जाते हैं; किन्तु ऐसी अस्वाभाविक गति तो किसी की नहीं होती, फिर फोड़े पर संखिया का प्रयोग! आज तक कभी न सुना, और न कहीं पढ़ने को ही मिला। और फिर नाम और पता प्रगट करने में हिचकिचाई क्यों? अवश्य, वह संखिया का फोड़े पर नहीं, अपने जीवन पर प्रयोग करेगी! जान पड़ता है, या तो किसी ने

वेदना की कीलें कोंच-कोंच कर उसके कलेजे को छलनी बना दिया है, या संसार के अभाव ने अपनी भयानक अग्नि में डालकर अधिक आकुल कर दिया है, किन्तु है वह अपने जीवन से अधिक निराश, और विपन्न ! फिर' "फिर !!

युवक सोचते-सोचते रुक गया ! जैसे अब वह उसके आगे कुछ सोच ही न सकता हो । जैसे वह सोचते-सोचते करुणा से अधिक कातर और विवश बन गया हो । वह कुछ देर तक मौन रहा, और फिर वह कागज का टुकड़ा, जिस पर पता लिखा था, पढ़ने लगा । उसके मुख से अपने आप ही निकल पड़ा—"दया-नन्द की पत्नी, भैरोंकुण्ड ८५ नं० ।"

उसने कागज के टुकड़े को ध्यान से देखकर जेब में डाल लिया । इसी समय घड़ी ने 'टन्-टन्' करके तीन बजा दिये । मानो वह भी युवक की बात का प्रतिपादन कर रही हो—"हाँ, दयानन्द की पत्नी, भैरोंकुण्ड, ८५ नं० ।" युवक आश्चर्य-चकित दृष्टि से घड़ी की ओर देखकर विस्मित स्वर से अपने आप बोल उठा—'ओह, तीन बज गये ।' और वह उठा, डिस्पेन्सरी बन्द कर एक ओर को चल पड़ा । पर उस समय भी वह जैसे कल्पना के पंख पर बैठकर विचारों के लोक में उड़ा जा रहा था !

[२]

रात्रि के ग्यारह बज रहे थे । सड़क पर अब भी चहल-पहल थी; पर गलियाँ धीरे-धीरे निस्तब्धता की चादर ओढ़कर सोती जा रही थीं । कभी-कभी कोई मनुष्य अवश्य निकल पड़ता, और

गलियों की झँपकती हुई पलकों को खुलने के लिये विवश कर देता; पर भैरोकुण्ड की उस सँकरी गली की पलकें बिलकुल बन्द हो चुकी थीं। जैसे वह दिन भर के अपने चहल-पहल से अधिक थक गई हो, और अब सुख की नींद सो रही हो! गली के प्रवेश-द्वार पर म्युनिसिपैल्टी का एक लैम्प अवश्य जल रहा था; जो उस एकान्त मे अवसर पाकर अपने भाग्य पर दिल-खोलकर रो-सा रहा था!

उस सँकरी गली में कई कच्चे-पक्के मकान हैं! कुछ शरीर के यौवन की तरह उस रात्रि में भी हँस रहे थे, और कुछ वार्द्धक्य की तरह अपने नेत्रों में उदासीनता का काजल रगड़ कर अपने पूर्व के दिनों का स्मरण कर रहे थे। गली के अन्त में स्थित उस मकान की कहानी भी कुछ वार्द्धक्य ही की तरह थी। देखने से ही ज्ञात होता था, कि कभी इसमें भी यौवन का हास रहा होगा, पर अब तो वह जगह-जगह से टूटा हुआ, उदास और शोक की काली सन्ध्या में लिपटा हुआ-सा दिखाई देता था। जैसे वार्द्धक्य ने, उसके भीतर और बाहर—दोनों को ही अधिक जर्जर कर दिया हो, और अब उसके ढाँचे का केवल कंकाल मात्र अवशेष रह गया हो! यों तो इस गृह-कंकाल में निस्तब्धता अपना पाँव तोड़ कर दिन-रात बैठी रहती थी, और रात्रि मे आठ बजे के पश्चात् ही अंधकार अपने पंख फैला देता था; पर आज उसके एक कक्ष में मन्द-मन्द ज्योति से एक दीपक जल रहा था। दीपक की ज्योति उस गृह-कंकाल के अंधकार को हटाने में भले ही

अपने को असमर्थ पा रही हो, पर उसकी एक क्षीण रेखा खिड़की की राह से बाहर निकलकर पृथ्वी पर ऐसी खेल रही थी, मानों बुझते हुये जीवन-प्रदीप की ज्योति झिलमिला रही हो।

कमरे और खिड़की की स्थिति ऐसी थी, कि यदि कोई बाहर खड़ा होकर खिड़की से देखता तो साफ देख लेता, कि कमरे मे एक ओर एक चारपाई बिछी है, और उस पर एक स्त्री चुपचाप पड़ी है। पर कदाचित् वह सोयी हुई नहीं है; क्योंकि वह बहुत जल्द-जल्द करवटें बदलती है। ऐसा लगता है, मानों उसकी आँखों की नींद उड़ गई हो, और अब नींद के स्थान पर कुछ और खेल रहा हो। घड़ी ने जब 'टन-टन' करके ग्यारह बजाये, तब वह उठकर चारपाई पर बैठ गई, और दीवाल पर टँगी हुई घड़ी की ओर देखकर बोल उठी—सरला, ओ सरला!!

पाठक, अभी आप सरला और उसकी माँ सरोजिनी को न भूले होंगे! यह गृह-कंकाल उसी का है। जब सरला के पिता दयानन्द थे, तो एक दिन यही घर यौवन की मस्ती की तरह झूमा करता था। दिन की तो बात ही क्या, रात को भी एक-एक बजे तक बैठक रहती थी। पर अब दयानन्द की मृत्यु के पश्चात् उसे ऐसे वार्द्धक्य ने आग्रस्त कर लिया, जिसका शरीर दमे और खाँसी के भयानक रोग से जर्जर हो उठा हो। रात की तो बात ही क्या? अब दिन मे ही उस पर काली सन्ध्या बरसा करती थी! पूरा मकान, जो टूटकर बिखर-सा गया था, खाली पड़ा

रहता था। माँ-बेटी, दोनों दो कमरे मे रहती थीं। एक में खाना बनता था, और दूसरे में गृहस्थी का सामान था। उसी मे दोनों रात में सोती भी थीं !

सरला कुछ नींद मे थी। जब पहली आवाज़ में वह न बोली, तब उसकी माँ पुनः बोल उठी—सरला, ओ सरला !!

हाँ, माँ !—सरला दूसरी चारपाई पर, जो उस चारपाई के पास ही कुछ हटकर कोने की ओर बिछी थी, कहती हुई उठकर बैठ गई; और कुछ क्षण के पश्चात् अपनी माँ सरोजिनी के पास जाकर बोल उठी—क्या है माँ !

सरोजिनी चिन्ता में निमग्न-सी थी। उसकी आकृति पर सरला ने अनोखे भाव देखे। आज तक ऐसे भाव उसने अपनी माँ की आकृति पर कभी न देखे थे। सरला कुछ विस्मित हुई; और कुछ भयभीत। वह विस्मय और भय के वशीभूत होकर कुछ कहने ही जा रही थी, कि उसके कथन के पूर्व ही सरोजिनी कुछ सजग-सी होकर बोल उठी—कुछ नहीं सरला, कुछ नहीं ! लाओ, तुम्हारी वेणी गूँथ दूँ !

वेणी ! इस समय !—सरला सरोजिनी की आकृति की ओर विस्मय से देखती हुई बोल उठी।

हाँ बेटी !—सरोजिनी ने निराशा और करुणा के स्वर में कहा—नींद नहीं आ रही है ! बारह बज रहे हैं। सवेरे वे तुम्हें देखने आयेंगे ! वही श्रीकान्त ठाकुर, जिनके यहाँ मैं उस दिन गई थी !

सरोजिनी की आँखो मे जो रस उछल रहा था, उससे सरला के मन को सरोजिनी की बात का सहसा विश्वास तो न हुआ; किन्तु फिर भी वह अपनी माँ के पास वेणी गुहाने के लिये बैठ गई। सरोजिनी ने मन लगाकर उसकी वेणी गुही, और फिर उसके भाल पर टीका लगाकर माँग मे सेंदुर की लाल रेखा खीचते हुये कहा—"बड़ी इच्छा थी बेटी, तुम्हारे माँग मे इस लाल छवि को देखने की! कौन जाने, संसार के द्वारा मेरी यह साध पूरी होती या न होती। तुम्हारी माँग मे सेन्दूर की यह लाल रेखा बड़ी अच्छी लग रही है सरला! मानो रात्रि के सघन अन्धकार मे सूर्य की लाल किरण हो। ओह मेरी बेटी!"

सरोजिनी ने सरला को अपनी छाती से लगा लिया, और उसी तरह वह उसे अपने अंक मे लगाये हुये सकरुण स्वर में बोल उठी—"मै तुम्हें बडे प्यार से विदा करूँगी बेटी! संसार देखेगा, और देख-देखकर ईर्षा करेगा। मेरे प्यार का रस! ओह, सरला, तेरे हृदय का कोना-कोना तृप्त हो जायगा!"

जैसे बात समाप्त करते-करते सरोजिनी का कंठ करुणा से विजड़ित-सा हो उठा हो! यदि कोई देख सकता तो देखता, कि उसका हृदय उसके नेत्रो में छलका पड़ रहा था। सरला ने साश्चर्य देखने का प्रयास अवश्य किया; पर सरोजिनी, जैसे वह उसके नेत्रों से अपने नेत्रो और आकृति को छिपाती चाहती हो! वह उसके देखने के पूर्व ही चारपाई से उठ गई, और दो छोटे-छोटे

गिलास में घुले हुये द्रव-पदार्थ लाकर बोल उठी—सरला, यह मेरे प्यार का रस है ! तू इसे पी ले बेटी !

सरोजिनी के नेत्र बरबस हृदय के जल से भर उठे, और जब वेग अधिक बढ़ा तो उमड़ कर बहने लगे ! सरला ने सरोजिनी की ओर देखा ! बटोही की तरह आँसू आँखों की सराय से निकलते चले आ रहे थे। सरला ने न जान करके भी जैसे सब कुछ जान लिया हो; किन्तु वह कुछ कह न कर कुछ क्षण तक अपनी माँ की ओर देखती ही रह गई ! उसे अपनी ओर देखती हुई देखकर सरोजिनी पुनः बोल उठी—"हाँ, बेटी, यह मेरे प्यार का रस है। इसे मैंने अपना कलेजा निचोड़ कर निकाला है !"

सरला मन ही मन जैसे कुछ सोच-सी रही हो ! उसकी आकृति पर न चिन्ता, और न औदास्य ! पहले उसकी आकृति पर चिन्ता अवश्य खेल रही थी; पर अब जैसे उसकी माँ ने उसे चिन्ता और निराशा से मुक्त-सा कर दिया हो ! उसने धीरे से हाथ बढ़ाकर गिलास अपने हाथ में ले लिया, और फिर उसे एक ही घूँट में पी कर सिसकती हुई सरोजिनी की गोद से इस प्रकार चिपक गई, जैसे अंधड़ में अपने आश्रय-मूल से अलग होती हुई कोई लता रह-रह कर अपने मूल से लिपट जाती है ! सरोजिनी ने दूसरे गिलास का द्रव-यदार्थ अपने कंठ के नीचे उतार कर सरला को अपने अंक में भर लिया। मानों वह उसे अपने अंक में लेकर, इसी प्रकार कहीं उड़ जाना चाहती हो ! सरोजिनी और सरला, दोनों ही मौन थीं: किन्तु दोनों ही के

नेत्र आँसू उगल रहे थे। मानो वे आसू ही उनकी मौनिमा के रहस्य की घोषणा कर रहे हों!

सरला और सरोजिनी, दोनों लता और मूल की तरह आपस मे अभी लिपटी ही हुई थीं, कि द्वार की जंजीर खटखटा उठी। एक बार, दो बार! सरला अपनी माँ के अंक को कुछ ढीला करती हुई बोल उठी—मा! कोई बुला रहा है—!

पर सरोजिनी ने उस ओर ध्यान न दिया। मानों अब वह ऐसा समझ रही है, कि अब उसे संसार की ओर ध्यान देने की आवश्यकता ही न रह गई हो। जैसे वह अनुभव-सा कर रही थी, कि उसके मन मे धीरे-धीरे एक आवेग-सा उत्पन्न हो रहा है। वह आवेग की प्रतीक्षा मे भी बैठी हुई-सी जान पडती थी। जजीर फिर खटखटा उठी—एक बार, दो बार! सरला अपनी माँ को सजग करती हुई पुन. बोल उठी—माँ! कोई बुला रहा है।

बुलाने दे बेटी!—सरोजिनी ने उपेक्षा के स्वर मे सरला की की ओर देखते हुए कहा—क्या तुमने कहीं यह सुना है सरला, कि मृत्यु की ओर जाता हुआ पथिक किसी की पुकार से लौट आया है! चाहे अब जो आकर पुकारे सरला, किसी का भी स्वर अब मेरे कानो मे नही पड़ सकता!

सरोजिनी अपनी बात समाप्त कर पुनः अपने मन में उन्माद लाने का प्रयत्न करने लगी। कभी-कभी उसे ऐसा ज्ञात भी होता, मानों वह चर्ख पर चढ़ी हुई नाची-सी जा रही है, पर सरला

अपने भीतर ऐसा कुछ भी न पा रही थी, और न वह आवेग और उन्माद की प्रतीक्षा में ही व्याकुल थी! वह सरोजिनी की बात से चुप तो हो गई, पर उसके कान द्वार की ही ओर लगे रहे, और जब फिर जंजीर जोर से खटखटा उठी, तब वह बोल पड़ी—माँ! कोई बुला रहा है! मैं देखती हूँ, कौन है!

सरला सरोजिनी को छोड़कर चारपाई से उठकर खड़ी हो गई। अब जैसे सरोजिनी कुछ सजग-सी हो उठी हो! एक बार उसने सरला को सूने नेत्रों से देखा, और फिर चारपाई से उठकर हाथ में दीपक लेते हुये कहा—अच्छा तू रहने दे सरला, मैं ही जाकर देखती हूँ!

सरला ने कुछ विरोध न किया, और सरोजिनी हाथ मे दीपक लेकर द्वार की ओर चल पड़ी। द्वार को खोलकर सरोजिनी ने आगन्तुक की ओर ध्यान से देखा, और फिर आश्चर्य से उसके मुख से निकल पड़ा—डाक्टर साहब!

हाँ देवी, मैं ही हूँ!—डाक्टर ने घर मे प्रवेश करते हुये कहा—बड़ी कठिनाई से आपके घर का पता लगा पाया हूँ देवी। वास्तव में बात यह है, कि दोपहर मे मैंने जो संखिया आपको दी थी, वह संखिया नहीं है। मैने भूल से आपको एक दूसरी ही दवा दे दी। लाइये, वह पुड़िया कहाँ है।

डाक्टर अपनी बात के साथ ही साथ घर के भीतर चला आया; किन्तु हाथ में दीपक लिये हुये सरोजिनी कुछ देर तक द्वार पर ही खड़ी ही रह गई; और खड़ी-खड़ी डाक्टर की ओर देखती

रही। डाक्टर सरोजिनी की ओर देखकर पुन. बोल उठा—आइये, आइये देवी ! लाइये मेरी पुड़िया, दीजिये। सचमुच देवी, वह संखिया नहीं है! मैंने भूल से एक दूसरी ही दवा आपको दे दी थी! संखिया तो अब मैं अपने साथ लाया हूँ।

अब जैसे सरोजिनी को अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ हो, और वह वहीं खड़ी-खड़ी अर्द्ध-स्फुट स्वर में बोल पड़ी—वह पुड़िया......वह पुड़िया डाक्टर साहब ! वह तो खो गई....नहीं नहीं देखती हूँ !

सरोजिनी की आकृति पर एक विचित्र प्रकार के भाव दौड़ गये। मानो वह एक बहुत बड़ी समस्या में फँस गई हो, और उससे मुक्ति पाने के लिये तरह-तरह के उपायों का अंचल पकड़ रही हो। वह द्वार बंद कर कमरे में आई, और सरला की ओर देखते हुये बोल उठी—सरला, सरला, वह पुड़िया ! छोटी-सी थी, नहीं नहीं .... !

सरला ने एक बार डाक्टर की ओर देखा, और फिर सरोजिनी की ओर ! उसकी आँखों में विस्मय का गाढ़ा रस-सा घुल गया, और वह विस्मय के ही स्वर में बोल उठी—कौन-सी पुड़िया माँ !

ओह, तुम नहीं जानती !—सरोजिनी ने आकुलता के स्वर में कहा; और वह कभी बिस्तर के नीचे, और कभी आले में पुड़िया खोजने का प्रयत्न-सा करने लगी। डाक्टर, जो अभी

चुपचाप कभी सरला की ओर, और कभी सरोजिनी की ओर देख रहा था, बोल उठा—जाने दीजिये देवी ! कहीं खो गई होगी ! संखिया की यह मैं दूसरी पुड़िया लाया हूँ ! जरा दीपक ऊँचा कीजिये !

सरोजिनी ने विस्मय से डाक्टर की ओर देखा। डाक्टर जेब से एक पुड़िया निकालकर उसे खोलते हुये बोल उठा—हाँ, हाँ, देवी, जरा दीपक ऊंचा तो कीजिये !

सरोजिनी का हाथ अपने आप दीपक लेकर कुछ ऊँचा हो गया ! डाक्टर ने पुड़िया से एक चुटकी चूर्ण निकालकर सामने खड़ी हुई सरला की मॉग में अप्रत्याशित गति से मल दिया, और कहा—इसका साक्षी यह। जलता हुआ दीपक रहेगा सरोजिनी माँ !

सरोजिनी ने विस्मय से एक बार डाक्टर की ओर और फिर सरला की माँग की ओर देखा ! डाक्टर के हाथ में सेन्दूर की पुड़िया, और सरला की मॉग सेन्दूर से भरी हुई ! सरोजिनी आँखों मे विस्मय भरकर डाक्टर की ओर देखती ही रह गई !

डाक्टर सरोजिनी को अपनी ओर विस्मय से देखती हुई देखकर बोल उठा—आपको विस्मय हो रहा है सरोजिनी माँ ! कदाचित् आप भूल गईं ! अभी कुछ देर पहले सरला की वेणी बाँधते हुये आप कह रही थीं, कि सवेरे श्रीकान्त ठाकुर सरला को देखने के लिये आयेंगे; किन्तु वे तो न आ सकेंगे माँ ! मैं उनका पुत्र प्रभंजन . .... !

सरोजिनी के हाथ से दीपक गिरते-गिरते बचा। पता नही, विस्मय के कंपन से, या हर्ष के उछाल से ! सरोजिनी के अधर अपने आप ही खुल पड़े—प्रभंजन ! श्रीकान्त ठाकुर का पुत्र !

हॉ मॉ—प्रभंजन ने सकरुण स्वर मे उत्तर दिया—जब आप संखिया लेने के लिये मेरी डिस्पेन्सरी मे गई थीं, उसी समय आपकी चाल-ढाल और आपकी बातों से मुझे यह ज्ञात हो गया था, कि आप संखिया का फोड़े पर नहीं, अपने जीवन पर प्रयोग करेंगी। यद्यपि मैं संखिया के स्थान पर आपको पेट का एक पाउडर देकर निश्चिन्त हो गया था, किन्तु फिर भी आपके जीवन की कहानी को जानने की चिन्ता मुझे आकुल बना रही थी। मैं अपनी इसी चिन्ता मे खेलता हुआ जिस समय घर पहुँचा, मैने अपने कानो से सुना, पिता जी मॉ से कह रहे थे—"कैसी विचित्र बात है ! भला दयानन्द की पत्नी प्रभंजन के विवाह के लिये आई थीं ! कह रही थीं, कहीं लड़की का विवाह ठीक नहीं हो रहा है। मानों मैने ही गरीबों के विवाह का ठेका बेचना ला है। मैने साफ अस्वीकार कर दिया !" पिता जी की वाऽप' हे या 'सुन्देरे , हृदय के तार-तार झनझना उठे, और मैं आपकाहूँ, कि मेरे पैशपने मुझे एक कागज पर लिख कर दिया था, पढ़ने लग ' ! ज़ैमोनन्द की पत्नी, भैरोकुड, ८५ नं० !

मेरी ऑखो के सामने एक चित्र-सा खिच गया ! पता नहीं, उस चित्र मे मैंने क्या-क्या देखा ? पर यहॉ आकर जो कुछ

देखा, उसे मनुष्य क्या, पत्थर और वज्र भी नहीं देख सकता माँ!

सरोजिनी की आँखें सजल हो उठीं! मानों वह अपने नेत्रों की अंजलि में हृदय के फूल भरकर प्रभंजन पर बिखरा रही हो।

मैं क्या करूँ ?

क्षितिज के उस पार क्या है ? लोग नहीं जानते, किन्तु मैं जानता हूँ, कि मेरे जीवन के उस पार क्या है ? एक नक्षत्र लोक। मैं अपने उस नक्षत्रलोक को ज्योतित कहूँ, सुन्दर कहूँ, पुण्य की पवित्र ज्योतियों से आलोकित कहूँ, या क्या कहूँ ? मैं नहीं जानता ! हो सकता है, मेरा वह नक्षत्र लोक, यदि दूसरी आँखें उसे देख सकें, उनमें अपने गौरव का रस न घोल सकें, और वे उसे 'कुरूप' की संज्ञा देकर अपनी पलकें बन्द कर लें, पर मैं तो 'कुरूप' और 'सुन्दर' की विवेचना से शून्य होकर केवल उस ओर बढ़ा जा रहा हूँ। वह 'कुरूप' है या 'सुन्दर', मैं नहीं जानता ! मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ, कि मेरे पैर अपने आप उस ओर उठे जा रहे हैं, और मेरी आँखें। जैसे उस नक्षत्र लोक का ही एक नक्षत्र बन कर उसमें चिपक जाना चाहती हों ! मेरा वह अद्भुत नक्षत्रलोक !

सन्ध्या का समय था। सूर्य प्रकृति की धूसरित चादर पर अपनी किरणों की कूँची से ऐसा रंग छिड़क रही थी, जिसके

समान अधिक प्रयत्न करने पर भी आज के वैज्ञानिक कोई रंग न बना सके, और प्रकृति सूर्य की लाल किरणों से कढ़ी हुई एक ऐसी चादर ओढ़ कर पड़ी हुई थी, जिसके समान आज तक कोई कार-साज—सौन्दर्य की इच्छा रखने वाली किसी स्त्री के लिये कोई चादर तैयार न कर सका। पता नहीं, प्रकृति की इस विजय पर हर्षोत्फुल्ल होकर, या मनुष्यों की इस पराजय से उनकी हँसी उड़ाने के लिये, आकाश मे उड़ते हुये प्रकृति के बच्चे खूब 'चह-चह' कर रहे थे। इसी 'चह-चह' के बीच मे जब मैं हाकी लेकर टूर्नामेन्ट की फील्ड मे उतरा, तो खूब करतल ध्वनि हुई! रंग निर्माण करने में वैज्ञानिक और चादर-निर्माण करने में कारसाजो ने भले ही प्रकृति से मात खाली हो, पर ताली वजाने मे, फील्ड में एकत्र स्त्री-पुरुषो ने अवश्य प्रकृति के बच्चों को मात दे दी और उनकी 'चह-चह' तालियों की गड़गड़ाहट में ऐसी समाविष्ट हो गई, जैसे समुद्र की लहरों मे जल की बूँद समाविष्ट हो जाती है!

सीटी बजी, खेल आरंभ हुआ, और मै आँधी की तरह गेंद लेकर उड़ने लगा। एक, दो, तीन, चार, पॉच रन! प्रति-पक्षियों के मस्तक पर पसीने की बूँदें झलक आईं, दिल टूट गया, और वे ऐसे खेलने लगे, मानों अब खेल से पिण्ड छुड़ाना चाहते हो। उधर मेरे साथियों का कुछ और ही हाल था! जैसे सबके सब हवा के रथ पर सवार हों! देखते ही देखते फिर कई रन हुये, और फिर तालियो की गड़गड़ाहट! अब की बार ऐसा ज्ञात हुआ, मानों तालियो की गड़गड़ाहट प्रकृति के बच्चो की

'चहचहाहट' के साथ ही प्रतिपक्षियों को भी अपने मे समाविष्ट कर लेना चाहती है !

पर जैसे कुचला हुआ सॉप मरने के पूर्व एक बार फन फैलाकर क्रोध से खड़ा हो जाता है, उसी प्रकार प्रति पक्षी दल के एक खिलाड़ी ने इतने जोर से गेंद मारी, मानों अब वह अपनी आत्मा की सारी अवशेष शक्ति लगाकर सो जाना चाहता है ! सर सर करके आती हुई गेंद को मैंने भी हाकी पर लिया, और वह उछल कर मस्तक पर जा लगी। मानों उसकी गति को, जो मैंने अपनी हाकी पर रोका, उससे उसने प्रसन्न होकर मेरा मस्तक चूम लिया हो !

मैं मस्तक पकड़कर फील्ड मे बैठ गया। केवल इतना ही स्मरण है, कि एक बार हाथ आँखों के सामने यह देखने के लिये लाया था, कि कही रक्त तो नहीं बह रहा है, पर हाथ देखने के पूर्व ही आँखें झप-सी गईं। ऐसा ज्ञात हुआ, मानो गण्ड-स्थल पर कोई वस्तु रेंग-सी रही है। "रक्त है" चेतना ने समझाने के लिये अधर खोले; किन्तु कुछ कहने के पूर्व ही उसके भी ओष्ठ बन्द हो गये, और मैं नींद में, या मूर्च्छना में, कौन जाने, ऐसा सो गया, कि उसके लिये किन शब्दों का प्रयोग करूँ, समझ मे नही आ रहा है। नींद या मूर्च्छना, कह नही सकते, जब टूटी, तो स्मृति पर बल लगाकर इधर-उधर देखने लगा ! वह फील्ड, फील्ड के चारों ओर एकत्र वे स्त्री-पुरुष, तालियों की वह गड़गड़ाहट, और फील्ड में वायु की तरह सर सर करके भागती

हुई वह गेंद, किन्तु यहाँ तो कुछ नहीं ! उसके स्थान पर एक साफ-सुन्दर कमरा, कमरे की दीवाल पर एक घड़ी, बीच में एक पलँग, जिस पर मैं सोया हुआ, और पलँग के पास दो-तीन कुर्सियाँ ! एक बार फील्ड का वह दृश्य मेरी आँखों के सामने आया, और फिर इस कमरे का। मै सोचने लगा—'वह फील्ड, और यह कमरा ! मे कैसे, और क्यों यहाँ आ गया ?……… …क्यों ?…………!"

आप क्या सोच रहे हैं ? कदाचित् आप यह सोच रहे हैं, कि आप फील्ड से कैसे इस कमरे में आये ?—इसी समय कोई मन्द और मधुर स्वर में पलँग के पास ही से बोल उठा।

मैंने आँखें घुमाकर पलँग की दूसरी ओर देखा ! बीस-बाइस वर्ष की युवती, गौर वर्ण, पतला शरीर, आँखों में लुनाई और आनन पर ओप की बहार लिये हुये उदास मुद्रा से मेरी ओर देख रही थी। मैंने विस्मय से उसकी ओर देखा, और कुछ देर तक देखता ही रह गया। सच पूछिये तो यह युवती मेरे लिये अब एक और विस्मय बन गई। मेरा मन भीतर ही भीतर बोल उठा—'यह कमरा, यह युवती, कहा हूँ मैं ?"

किन्तु मेरे आत्म-विस्मृत मन को अधिक देर तक भ्रान्ति की धूप-छाया में न दौड़ना पड़ा। वह युवती, मुझे विस्फारित नेत्रों से इधर-उधर देखता हुआ देख कर बोल उठी—फील्ड में जब आप खेल रहे थे, तब आपके मस्तक में चोट लग गई थी न ! चोट से आप मूर्च्छित हो गये थे। फिर यहाँ लाकर आपका उपचार किया गया।

युवती की इस बात से जैसे मेरी स्मृति के तार पुनः जुट गये हो ! फील्ड का एक चित्र मेरी आँखो के सामने खिच गया ! मैं उसमें देखने लगा, "हवा की तरह उड़ती हुई गेंद आ रही है। मैने आगे बढ़कर उसे अपनी हाकी पर लिया। वह उछली, और मेरे मस्तक पर जा लगी। मैं मस्तक पकड़ कर फील्ड मे बैठ गया और हाथ यह देखने के लिये आँखों के सामने लाने लगा, कि कहीं रक्त तो नहीं बह रहा है; पर ......!" अब स्मृति जैसे अधिक साफ-सी हो गई, और मैं कभी उस कमरे की ओर, और कभी कमरे में बैठी हुई युवती की ओर ध्यान से देखने लगा। यद्यपि मेरे मन में उठी हुई विस्मय की तरंगें कुछ शान्त हो गई थी, पर फिर भी मेरे मन में यह इच्छा तो डोल ही रही थी, कि "यह घर, और यह युवती !" मैं कुछ क्षण तक मन ही मन सोचता रहा, और फिर विस्मय के स्वर मे बोल उठा—यह घर और आप ! क्या मैं कुछ जान सकता हूँ ?

युवती ने आँखों मे कुछ भर कर मेरी ओर देखा, और मन्द-मन्द स्वर मे सकुचाती हुई कहा—देखिये, आपकी तबीयत इस समय अधिक खराब है। आप इस समय इन बातों को जानने की चिन्ता न कीजिये। समझ लीजिये, यह आप ही का घर है !

युवती के स्वर और आँखों मे एक विचित्र आकर्षण था। मुझे ऐसा ज्ञात हुआ, मानो वह अपने स्वर और आँखो मे सुधा भर कर मुझ पर छिड़क रही हो। मै उसी से मन ही मन संतृप्त-सा होकर युवती की ओर देखता हुआ बोल उठा—मेरा अपना

ही घर ! मैं मानता हूँ। फिर भी, फिर भी……। सच बात तो यह है, कि मुझे इन बातों को जान कर आराम मिलेगा, इस समय मन में जो विस्मय खेल रहा है, वह दूर हो जायगा, और आँखें बिना किसी भार के सो सकेंगी।

मैं अपनी बात समाप्त कर ध्यान से युवती की ओर देखने लगा। उसने भी एक बार मेरी ओर देखा, पर मुझे अपनी ओर देखते हुये शीघ्र ही अपना मस्तक झुका लिया, और जैसे कुछ सोचने-सी लगी। मैं बीच में पुनः बोल उठा—हाँ, मैं सच कहता हूँ, मुझे इन बातों को जान कर अधिक आराम मिलेगा; और अब तो मैं पहले से अधिक अच्छा भी हूँ।

युवती ने पुनः मेरी ओर देखा। उसके ओष्ठ कुछ हिले, किन्तु फिर बन्द हो गये। मैं, जो उसकी ओर ध्यान से देख रहा था, पुनः बोल उठा—हाँ, हाँ, कहिये न, कहिये !!

युवती मेरी ओर देख कर सकुचाते हुये स्वर में कहने लगी—'फील्ड में जब आप को चोट लग गई थी न; और आप मूर्च्छित हो गये थे, तब लोग आप को अस्पताल ले जाना चाहते थे, किन्तु मैं, आपको अस्पताल न ले जाने देकर, यहाँ अपने घर लाई। मेरे पिता डाक्टर हैं ! वे अभी आध घंटे पूर्व आपको देख करके गये हैं !'

युवती अपनी बात समाप्त कर नीचे देखने लगी। मानों कहते-कहते संकोच ने उसे अधिक आग्रस्त कर लिया हो ! मैं युवती को संकोच के बन्धनों से छुड़ाने के लिये उसकी ओर

देखता हुआ पुन. बोल उठा—आप अपने घर लाईं। क्यों ? मुझे आपने अस्पताल ही क्यों न जाने दिया ? आखिर आपने क्यों मेरे लिये इतना कष्ट उठाया ?

युवती ने पुनः मेरी ओर देखा; किन्तु अब की बार उसकी दृष्टि में संकोच नहीं, विस्मय था ! जैसे वह मेरी ओर देखती हुई उलझनों मे आग्रस्त-सी हो गई थी, और जैसे वह मेरी बात का उत्तर देने के लिये विभिन्न तर्कों का अंचल-सा पकड रही थी ! ध्यान से, उसकी आकृति की ओर देखता हुआ मैं पुनः बोल उठा—सच, आपने मुझे अस्पताल ही क्यों न जाने दिया ? इतने मनुष्यों के बीच में, जब आपने मुझे अपने घर लाने का प्रस्ताव किया होगा, तब भला लोगों ने क्या सोचा होगा ?

उलझनों से आग्रस्त युवती की आकृति पर एक लालिमा-सी खेल गई। कह नहीं सकते, संकोच ने उसे जन्म दिया था, या भावावेश ने, किन्तु मेरी बात के समाप्त होने के साथ ही साथ युवती तत्क्षण बोल उठी—लोग सोचेंगे क्या ? क्या एक ऐसे व्यक्ति को, जो परदेश मे हो, और जिसे चोट लग गई हो, उपचार के लिये अपने घर लाना पाप है !

मैंने देखा युवती के नथने कुछ फड़क से रहे थे, और उसके स्वर मे पूर्व की तरह आकर्षण न था। मैं शीघ्र बोल उठा—नहीं, नहीं, यह कौन कहता है ! सच बात तो यह है कि मैं आपका अधिक कृतज्ञ हूँ।

मैंने बात का रुख बदलने का प्रयत्न तो किया, किन्तु मुझे

ऐसा जान पड़ा, मानों युवती अपनी ही दिशा में अटल हो। वह पहले ही की भाँति सिर झुकाकर सोचती रही। मैं पुनः बोल उठा—जान पड़ता है आप बुरा मान गईं। अच्छा, यदि आप चाहती हैं, कि इस अवस्था में कोई न कोई चिन्ता मेरा पिण्ड पकड़े रहे तो यही सही।

मैंने अपनी यह बात इस ढंग से कही, मानों सचमुच युवती की यह नवीन मुद्रा मेरे हृदय में चिन्ता बनकर नृत्य कर रही हो! युवती ने मेरी ओर देखा, और वह फिर मन्द स्वर में बोल उठी—फिर आप चुपचाप पड़े क्यों नहीं रहते? इन व्यर्थ की बातों को चलायेंगे, तो फिर चिन्ता तो होगी ही।

मैंने देखा, सन्ध्या के बादलों की लालिमा की भाँति अब उसकी मुद्रा पर खेलती हुई लालिमा मिट गई थी; और अब उसके स्वरों में पूर्व की ही भाँति आकर्षण और माधुर्य भी आ गया था। मैं कुछ क्षण तक मन ही मन उसकी बात पर "फिर आप चुपचाप पड़े क्यों नहीं रहते?" सोचता रहा। मानों उसकी यह बात मधुप की गुंजार बन कर मेरे मन के भीतर रह-रह कर गूँज उठती हो। फिर कुछ क्षण के पश्चात् अपने स्वरों में ढिठाई भर कर मैं बोल उठा—अच्छा अब कुछ न बोलूँगा; पर केवल एक बात बता दीजिये!

नहीं, मैं कुछ न बताऊँगी!—वह मेरी बात समाप्त होने के साथ ही साथ बोल उठी—यदि आप शान्ति से पड़े न रहेंगे, तो यह लीजिये, मैं जा रही हूँ।

वह कहने के साथ ही पलँग के पास रक्खी हुई कुर्सी से उठने का प्रयत्न करने लगी ; किन्तु इसके पूर्व ही मेरा हाथ उसके हाथ पर जा पड़ा, और मैं बोल उठा—नहीं, मैं आपको न जाने दूंगा। बस, केवल एक बात बता दीजिये, केवल एक बात।

कुर्सी से उठने का उसका प्रयत्न बन्द तो हो गया; किन्तु उसने मेरी ओर एक विचित्र दृष्टि से देखा। उसकी उस दृष्टि में विस्मय था, प्रेम था, सहानुभूति थी, उत्कंठा थी, या क्या थी ? मैं कह नहीं सकता; किन्तु मैं इतना अवश्य जानता हूँ, कि उसकी वह दृष्टि मेरे हृदय के स्तरों को तोड़ती हुई भीतर घुस गई; और भीतर घुसकर उसने एक ऐसी रागिनी बजा दी, कि मैं आत्म-विस्मृत-सा हो गया। मेरे मन ने कहा, कि वह रागिनी इसी प्रकार उसके भीतर बजती रहे, और मेरी आँखें! कुछ न पूछिये! वे तो मानो पलकों का अंचल फैलाकर दुआ-सा माँगने लगीं, कि वह इसी प्रकार उनकी ओर देखती रहे, पर जैसे स्वप्न के चित्र मिट जाते हैं, और उनकी छाया-मात्र अवशेष रह जाती है, उसी प्रकार जब उसने देखकर पलकों के घूँघट काढ़ लिये, तो मन और आँखों के सामने खिंचे हुये चित्र भी धुँधले पड़ गये ; किन्तु उसकी आँखें हृदय में जो रस घोल गई थीं, कुछ क्षण तक मैं उसमें डूबा ही रहा, और फिर उसकी ओर देखता हुआ स्निग्ध वाणी में बोल उठा—हाँ, केवल एक बात बता दीजिये! केवल एक बात!!

क्या बता दूँ ? कुछ पूछिये भी तो !—उसने मेरी ओर देख कर अपने नेत्रों से प्रेम का सागर छलकाते हुये कहा।

मैं जैसे उसके नेत्रों में उठे हुये प्रेम-सागर की तरंगों से भीग-सा गया। मैं कह नहीं सकता, कि उन तरंगों ने अपने साथ कौन से मोती लाकर मेरे हृदय पर बिछा दिये ! एक मन ने कहा, आँखें बन्द कर उन आबदार मोतियों की ही आभा निरखा करूँ; पर अपने आप अधर खुल ही पड़े—आप का नाम; क्या आप बता सकती है।

वह मेरी ओर देखकर मुसुकुराई और फिर कुर्सी से उठकर भीतर जाती जाती एक बार फिर मेरी ओर देखकर, बोल उठी—मेरा नाम, बड़ा खराब है, रमोला ! अच्छा, अब चुपचाप सो जाइये !

वह भौंरे की तरह एक गुंजार छोड़ कर चली गई ! रात में जब तक मै न सोया, यही गुंजार मेरे कानों में गूँजती रही, और जब सोया, तब भी मुझे यही जान पड़ा, मानों वह द्वार पर खड़ी-खड़ी कह रही है :"मेरा नाम बड़ा खराब है, रमोला। अच्छा, अब चुपचाप सो जाइये !"

[७]

लोग कहते हैं, कि चरित्र और आत्म-दृढ़ता की ढाल एक ऐसी ढाल होती है, कि उस पर जो कुछ भी पड़ता है, सब कुछ फिसल जाता है, पर मेरे चरित्र की ढाल पर पड़ कर रमोला की दृष्टि फिसल न सकी। हो सकता है, मेरे चरित्र की ढाल कमजोर

हो, या यह भी हो सकता है कि उसने प्रेम को पवित्र मान कर अपने आप रमोला की दृष्टि का विरोध न किया हो ! मैं बम्बई से हाकी टूर्नामेन्ट से लौटकर जब घर आया, तब मुझे ऐसा लगने लगा, मानो मैं बंबई में अपना कुछ छोड़ आया हूँ। दिन रात एक स्मृति-चित्र आँखों के सामने नाचता रहता ! पलॅग पर लेटता तो रमोला की प्रतिच्छाया, एकान्त मे बैठता तो रमोला की प्रतिच्छाया, और राह मे चलता तो रमोला की प्रतिच्छाया ! जैसे अब रमोला के अतिरिक्त और कोई दृश्य आँखों के सामने आता ही न हो ! बम्बई से लौटने पर दो-चार दिन आफिस काम करने के लिये गया; किन्तु ऐसा लगा, कि हृदय की जो स्थिति है, उसमे काम करना असंभव-सा है। अत. एक मास की छुट्टी ले ली, और दिन रात पड़े-पड़े कल्पना के चित्र बनाने लगा ! स्त्री पूछने आती, खाना क्या बनाऊँ ? कुछ उत्तर न देता। कभी कभी जब अधिक तंग करती तो उसे झिड़क भी देता और वह मुद्रा पर आँखो की करुणा बिखेरती हुई चुपचाप चली जाती। छोटी बच्ची पास आकर तुतले स्वर मे कहती, 'बाबा, तल कर खाले" पर मैं उसे भी झिड़क देता, और वह मेरी ओर विस्मय की दृष्टि से देखती हुई मन मारकर चली जाती। खाने के लिये चौके में जाता तो खोया-खोया-सा रहता। स्त्री कहती, और खा लीजिये, किन्तु मैं उस ओर ध्यान ही न देता, और चुपचाप चला आता। स्त्री खाती है, या नहीं, मैं इस ओर भी ध्यान न देता। दिन मे अधिकतर बाहर ही रहता। केवल खाने के लिये घर मे आता;

और खाना खाकर फिर निकल जाता ! रात को जब लौटता तो चुपचाप पलँग पर जाकर पड़ रहता। पास ही दूसरे पलँग पर सोइ हुई स्त्री से पूछता भी न, कि तू जागती है, या सो रही है ? स्त्री के मन में मेरे इस नवीन परिवर्तन से क्या उठ रहा था; मैं कह नहीं सकता; किन्तु जब मैं कभी उसकी आँखें बचाकर उसकी मुद्रा की ओर देखता, तो स्पष्टतः उसकी मुद्रा पर मुझे दुःख की छाया खेलती हुई दिखाई पड़ती। हो सकता है, वह मुझसे छिप कर अपने हृदय के दुःख को आँखों की राह से निकाल भी दिया करती हो। कभी-कभी उसकी मुद्रा पर खेलती हुई करुणा मेरे हृदय में सहानुभूति जगा देती, और हृदय के दर्पण में उसकी छवि चमक उठती, किन्तु जब रमोला के पत्र आते तो यह जगी हुई सहानुभूति आँधी के तिनके की भाँति उड़ जाती, और मैं फिर रमोला को ही लेकर कल्पना की लहरियों में खेलने लगता।

रमोला को लेकर कल्पना की लहरियों में खेलते हुये कई महीने बीत गये ! भावावेश तो कम हो गया; पर प्रगाढ़ता अधिक बढ़ गई। दो-तीन बार बम्बई गया, और पखवारों रमोला के घर रहा ! कभी सिनेमा, कभी पार्क, और कभी चाँदनी में समुद्र तट पर ! रमोला दिनों के साथ ही साथ हृदय की ओर खिसकने लगी, और इस गति से खिसकने लगी, मानों अब वह लौट कर न जाना चाहती हो ; किन्तु न जाने क्यों, कभी-कभी मेरे मन के भीतर एक सकरुण मूर्ति भी उभड़ पड़ती थी। जब

कभी समुद्र के तट पर या एकान्त में रमोला के साथ घूमते हुये मेरा मन हिलता, और मै वासना की गोद में रमोला के साथ सो जाने के लिये पग बढ़ाता तो यही सकरुण मूर्ति मेरे मन मे उभड़कर मेरी ओर दुख भरे नेत्रों से देखने लगती; और मन में उठी हुई वासना की आँधी को इस प्रकार उड़ा देती, कि मन के भीतर कहीं उसका धूसरित रंग भी अवशेष न रह जाता। रमोला मेरे आगे बढ़े हुये पैरों को पीछे हटते हुये देखकर क्या सोचती, यह मैं नहीं जानता; किन्तु मैं यह अवश्य जानता हूँ, कि मेरे मन मे एक पश्चाताप-सा उभड़ पड़ता, और मैं सोचने लगता, कि मैं कहाँ जा रहा था, कहाँ ? किन्तु यह होते हुये भी रमोला की स्मृति सदैव शराब बन कर आँखों में खेलती रहती। बंबई में जब रमोला के घर रहता, तो यही चाहता, कि वह सदा आँखों के सामने बनी रहे, और जब बंबई से लौटकर घर आता तो उसका वियोग हृदय मे काँटों की भाँति चुभता। मेरे हृदय में रमोला के प्रति जो आकर्षण उत्पन्न हो गया था, वह प्रेम था, या वासना, मैं नहीं जानता ! मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ, कि मेरे हृदय में उसके प्रति महान् आकर्षण था, और मेरा मन, मेरा हृदय उसी आकर्षण के तार मे बँधा हुआ उसकी ओर चला जा रहा था। इतनी तीव्र गत से चला जा रहा था, कि स्त्री और लड़की की ओर ध्यान देने का उसे अवसर ही न मिलता था !

जिस प्रकार मूल मे लिपटी हुई कोई लता अपने आश्रय-मूल का रस न पाने पर झुलस जाती है, उसी प्रकार मेरी स्त्री का

शरीर भी झुलसता जा रहा था। वह कहती तो कुछ न, किन्तु ऐसा लगता, मानों उसके हृदय के भीतर चिन्ता की प्रचण्ड आग धधक रही हो, और या किसी ऐसी मानसिक वेदना का उस पर तुषार गिर पड़ा हो, जिसने भीतर ही भीतर उसके प्राणों को जला दिया हो। जब देखो, तब मन उदास, आँखें सूनी-सूनी, और आकृति पर दुख की घनीभूत छाया। यदि मुझसे छिप कर धरती के अंचल में अपनी आँखों के मोती भी डाल दिया करती हो तो आश्चर्य क्या; किन्तु मुझसे कभी कुछ कहती न! मैं सोचता, रमोला की बात को यह बिलकुल नहीं जानती, और यह जो उदास रहती है, उसका केवल यही कारण है, कि जो मैं इससे विरक्त होकर रमोला की कल्पनाओं में डूबा रहता हूँ। पर कभी-कभी मुझे यह सन्देह हो जाता, कि यह सब कुछ जानती है। फिर मैं सोचता, कि यदि यह जानती है। तो फिर उसका विरोध क्यों नहीं करती, पहाड़ की तरह अचल बन कर रास्ते में फैल क्यों नहीं जाती? यह तो इसकी भूल है, जो यह दो बरसाती नदियों को आगे बढ़ने दे रही हैं! मैं यह सोच तो जाता, किन्तु मैं स्वयं यह प्रयत्न करता, कि रमोला की बात इसको न ज्ञात होने पावे। रमोला का पत्र जब आता, तो मै उससे छिपा कर पढ़ता और पढ़कर सावधानी से रख छोड़ता! बम्बई जब जाता तो किसी टीम में जाने का बहाना कर देता, और लौटता तो कह देता कि आवश्यक कामथा; पर अब कदाचित् वह मुझसे कभी पूछती भी न! पहले तो जब कभी एक दिन की भी देर हो जाती तो आते

ही प्रश्नों की झड़ी-सी लगा देती, किन्तु अब हफ्तों देर हो जाती, और वह आने पर कभी कुछ कहती भी न ! उसकी मौनिमा से मुझे ऐसा लगता, मानों वह चुपचाप अपने हृदय-पटल पर वज्र की लेखनी से कुछ अंकित कर रही हो !!

दिन के इगारह बज रहे थे। मैं अपने कमरे में कुर्सी पर बैठकर सोच रहा था—'रमोला और मेरी स्त्री अनुराधा ! रमोला लता की तरह छितरा कर मेरे जीवन को छेंकती जा रही है, किन्तु फिर भी यह मौन क्यों है ? यदि रमोला की बात को जानती नहीं, तो यह तो जानती है, कि मेरा मन लुटा हुआ है, और मैं उससे अलग-अलग घूमा करता हूँ। फिर क्यों नहीं, यह कभी आगे बढ़ कर अपने दोनों बाजुओं को फैला कर मुझे रोक लेती ? जब रमोला इसके जीवन-आकाश पर बदली बनकर छाती जा रही है, तब अनुराधा क्यों नहीं उस बदली को फाड़ कर बिजली की तरह कड़क उठती ? यह अनुराधा शान्त और मौन क्यों है ? कहीं मेरी ही भाँति इसके मन में भी तो कोई काँटा नहीं चुभ गया है ?

मेरे मन में अनुराधा के प्रति एक विद्रोह-सा उत्पन्न हो गया और मैं उसी को लेकर मन ही मन खेलने लगा। कभी सोचता, किसी प्रकार यह अनुराधा मेरे जीवन-मार्ग से अलग हो जाय तो अच्छा है, और कभी सोचता यदि रमोला ध्रुव-तारे की तरह जीवन-आकाश में चमक उठती..........!" मैं अभी यह सोच ही रहा था, कि छोटी बिटिया ने आकर कहा—"बाबा, तल खाना

खा ले !" पर मैंने उस ओर ध्यान न दिया। मानों उसकी बात सुनने के लिये मेरे चेतना-तंतुओं को अवकाश न हो ! वह कुछ देर तक खड़ी-खड़ी मेरे मुँह की ओर देखती रही, और फिर चली गई; किन्तु कुछ ही क्षणों के पश्चात् पुनः कुर्सी के पास आकर खड़ी हो गई, और बोल उठी—"बाबा ! तल खाना खाले ... तल.......तल !" मैं कह नहीं सकता, कि मुझे उसकी यह वाणी कैसी लगी, किन्तु मैंने यह कहते हुये, कि "जा, भाग जा, यहाँ से !" उसे पकड़ कर उसके गालों पर दो चपत लगा दिये, और वह जोर से चीख उठी। उसका चीखना सुनकर अनुराधा, जो रसोईगृह में थी, दौड़कर आ पहुँची, और बच्ची को गोद मे उठा कर द्वार पर खड़ी होकर मेरी ओर मर्मान्तक दृष्टि से देखने लगी।

मैंने एक बार कनखियों से अनुराधा की ओर देखा, और न जाने क्यों, उसकी आँखों में आँख मिलाने का साहस मुझे न हुआ। मुझे ऐसा जान पड़ा, मानों मुझसे कोई बहुत बड़ा अपराध हो गया हो, और मेरी चेतना उसी के प्रतिफल स्वरूप अपने आप मेरे मस्तक को झुकाती जा रही हो ! अनुराधा के मन में क्या उठ रहा था, मैं कह नहीं सकता, किन्तु वह कुछ क्षणों के पश्चात् अपने आप बोल उठी—इससे तो यही अच्छा है, कि आप हम दोनों का गला घोंट दें।

अनुराधा की वाणी बड़ी आर्द्र थी; और मुझे ऐसा जान पड़ा; मानों वह दुःखावेग से काँप-सी रही है। मेरी दृष्टि अनुराधा

की ओर उठ गई। उसकी आँखें सावन की बदली की तरह उमड़ती आ रही थीं। बस, केवल हवा का एक झोंका लगने की देर थी। मेरी और उसकी दृष्टि मिल गई! वह पुनः भीगे हुये कंठ से बोल उठी—हाँ, मैं सच कहती हूँ, आप हम दोनों का गला घोंट दें, और रमोला के साथ विवाह कर लें! मैं कुछ नहीं चाहती; केवल इतना ही, कि आपके हाथों से या आपके हाथों पर ......!

उसकी बात पूरी भी न हो पाई, कि जैसे उसका कंठ अवरुद्ध-सा हो उठा, और वह अपनी आँखों में छाई हुई सावन की बदली को बिखेरती हुई रसोईगृह में चली गई। उसकी आँखों के वे आँसू! जैसे, उनमें उसकी मनोवेदनाओं के इतिहास छिपे हुये हों। मैं कह नहीं सकता, कि अनुराधा की आँखों के आँसू से धरती का अंचल अभिषिक्त हुआ या नहीं, पर मेरे हृदय के कोने-कोने में तो एक ठंडी फुहार-सी पड़ गई; और विद्रोह की जो आग अनुराधा के प्रति उत्पन्न हो गई थी, वह ऐसी बुझ गई, मानों कहीं उसका अस्तित्व ही न हो! मैं सोचने लगा—यह अनुराधा, तो क्या सब कुछ जानती है? अवश्य, रमोला के पत्र इसने पढ़ लिये हैं; किन्तु फिर भी यह मौन है। कभी रंच मात्र भी तो इसने विरोध नहीं किया! मैं भावावेश में झिड़क देता, रमोला के ध्यान में न जाने क्या-क्या कह देता; पर कभी इसके अधर न खुलते। मैं कभी पूछता भी नहीं, कि अनुराधा, तू कैसी है, क्यों दुबली होती जा रही है? समय से खाना खा लेती है, या नहीं;

पर यह अनुराधा, प्रति दिन पूर्व की ही भाँति समय पर खाना बना कर मुझे खिला देती है। नहीं खाता तो उदास रहती है, और जब तक नहीं खाता, मन मार कर चुपचाप चौके में बैठी रहती है। मैं कभी उसकी उदासीनता की ओर आँख उठा कर देखता भी नहीं, और यह बराबर पूछती है, "क्यों उदास रहते हैं आप! आखिर क्या हो गया है आपको!" मैं इसके जीवन के साथ षडयंत्र करके इसका सर्वस्व अपहरण किये ले रहा हूँ, और यह मेरी इच्छाओं पर जैसे अपना सर्वस्व लुटाने के लिये तैयार बैठी हो। इसकी आकांक्षा—"आपके हाथों से, या आपके हाथों पर……!"

मैं अपने आप कुर्सी से उठ पड़ा, और रसोईगृह की ओर झाँकता हुआ अनुराधा के कमरे में जा पहुँचा। अनुराधा पलँग पर मुँह ढँक कर पड़ी थी, और बच्ची रह-रहकर उसके मुंह पर से उसके अंचल को हटा रही थी। मेरी आत्मा तड़प उठी। मैंने पलँग पर बैठ कर अनुराधा के मुख पर पड़े हुये उसके अंचल के आवरण को हटाते हुये कहा—अनुराधा!

अनुराधा उठकर बैठ गई। मैंने देखा, उसका अंचल आँखों के पानी से भीग गया है। वह कुछ न बोली। बोलने की आवश्यकता ही न थी! क्योंकि आँखों के आँसू स्वयं उसके हृदय के चित्र को खींच-खींच कर सामने रख रहे थे। मै कुछ क्षण तक अनुराधा के उस मुख को, जो आँसू से धुलकर शरद के आकाश की तरह स्वच्छ हो गया था, और बड़ा ही आकर्षक-सा ज्ञात हो

रहा था, ध्यान से देखता रहा, और फिर अनुराधा को अपनी गोद की ओर खींचते हुये बोल उठा—अनुराधा, मुझसे भूल हुई !

अनुराधा बिखर कर मेरे अंक में लोट गई, और आँसू इतने जोर से बह चले, मानों उसके हृदय का कोई बाँध टूट गया हो। मैंने उसके आँसुओं से सिक्त मुँह को ऊपर उठाते हुये कहा—पगली, तू क्यों रो रही है ? क्या तुझे विश्वास है, कि मैं तुझे और फूल-सी नन्हीं बच्ची को छोड़कर रमोला के साथ विवाह करूँगा !

मै कहने को कह तो गया; किन्तु मुझे ऐसा लगा, जैसे मेरी आत्मा झूठ बोलने के लिये मुझे लांछित कर रही है। क्या यह सच नहीं है, कि मैं अनुराधा को भूल गया था ? यदि इसी विस्मृति में रमोला के साथ जीवन की ग्रन्थि जोड़ लेता तो विस्मय ही क्या था ? चेतना और कर्त्तव्य जब मनुष्य का साथ छोड़ देते हैं, तब मनुष्य चाहे जो न कर ले ! अनुराधा ने मेरी ओर सकरुण दृष्टि से देखा, और सकरुण कंठ से ही वह हिचकती हुई बोल भी उठी—नहीं, आप कर लें रमोला के साथ विवाह। मैं सच कहती हूँ, मुझे कोई कष्ट न होगा। केवल इतना ही, इतना ही कि मेरी एक याद अपने हृदय में रहने दीजियेगा !

वह कहते-कहते फिर बिलख कर रो पड़ी। मुझे ऐसा ज्ञात हुआ, मानों वह विद्रोह से नहीं, आँसुओं और मानवता का अस्त्र लेकर अपने पत्नीत्व के लिये संग्राम कर रही है, और इसमें

सन्देह नहीं, कि उसके आँसुओं ने जो तीर मुझ पर छोड़े, वे विद्रोह के धनुष से कभी नहीं बन सकते थे ! मैंने आँसुओं की धार से भीगे हुये उसके मुँह को ऊपर उठाया और.......हुये बोल उठा—अनुराधा, मैं तुझे छोड़कर किस लोक में रहूँगा ?

अनुराधा के खारे आँसुओं से मेरे ओष्ठ भीग गये थे ; मानों वे अनुराधा की वेदनाओं के इतिहास हों, जो अवसर पाकर मेरे अधरों में चिपक गये हों ! सचमुच वे अनुराधा की वेदनाओं के इतिहास ही थे, मेरे ओष्ठ उसके पन्नों का पाठ बड़ी तन्मयता से किया करते थे !

[३]

चैत-बैसाख की रात्रि थी। दस बज रहे थे। चाँदनी आकाश से उतर कर पृथ्वी पर ऐसी फैली हुई थी, मानों किसी तपस्वी का हृदय हो, जो कल्मषों के धुल जाने के पश्चात् अधिक शुभ्र हो उठा हो। चाँदनी रात यों तो प्रत्येक ऋतु में बड़ी भली लगती है, पर न जाने क्यों शरद-ऋतु और चैत-बैसाख के महीनों में वह जब आकाश से उतर कर पृथ्वी पर खेलने लगती है, तब उसमें ऐसी लुनाई रहती है, कि बस, आँखें चिपक जाती हैं ! मैं अपनी छत पर, चाँदनी की इसी लुनाई को देखता हुआ चारपाई पर लेटा हुआ था। पास ही दूसरी चारपाई पर अनुराधा थी, जो कदाचित् कुछ-कुछ नींद में थी।

चैत की वह चाँदनी रात मुझे बड़ी मोह की-सी लग रही थी। मैं कभी आकाश की ओर देखता, कभी चन्द्रमा की, और कभी

दुग्ध की तरह गिरती हुई चन्द्रिका की ओर। ऐसी चॉदनी रात में मैं कई बार रमोला के साथ बम्बई के समुद्र तट पर परिभ्रमण कर चुका था। आज इस चॉदनी रात ने पुनः एक चित्र मेरी ऑखों के सामने खींच दिया। मुझे ऐसा ज्ञात हुआ, मानों बंबई का वही समुद्र तट है, और मैं रमोला के साथ उसी प्रकार खेल रहा हूँ, जिस प्रकार पृथ्वी चॉदनी के साथ। मैं कुछ देर तक अपनी इसी कल्पना मे विभोर-सा रहा। इस कल्पना के कारण रमोला इतनी अधिक शक्ति के साथ मेरे हृदय में झॉकने लगी, कि अब मैं उसके ही संबंध में सोचने लगा—"रमोला! क्या सोचती होगी वह अपने मन मे! उसने कई बार अपने पत्रों मे लिखा, कि मैं बम्बई आऊँ, किन्तु मै अब तक न गया! यद्यपि मैंने अपने पत्रों में प्रेम का रंग कम कर दिया है, किन्तु वह तो बरसाती नदी की तरह उमड़ती ही चली आ रही है। तो क्या वह मेरे जीवन मे समाविष्ट ही होकर रहेगी! उसकी समाविष्टि! अपूर्व सुख और शान्ति की वर्षा करेगी; किन्तु यह अनुराधा! अनुराधा की दिव्य और तपस्विनी की भॉति धवल मूर्ति! पर रमोला के मेरे जीवन में समाविष्ट होने से अनुराधा का कुछ बिगड़ता तो है नहीं! रमोला मेरे जीवन के साथ अपनी ग्रन्थि बॉध कर अनुराधा का कुछ छीन तो लेती नहीं! जब मैं स्वयं अनुराधा को उसके आसन से न हटाऊँगा, तो रमोला क्या करेगी; और अनुराधा स्वयं भी तो कहती है, कि उसे कष्ट न होगा; पर उसके ऑसू! वे तो साफ-साफ

कहते हैं, कि वह अपने आसन पर और किसी को न बैठने देगी।"

मेरी दृष्टि अनुराधा की आकृति पर चली गई। चन्द्रमा की किरणें उसके मुख से खिलवाड़ कर रही थीं! मानों देवत्त्व और पैशाचिकता के खेल में जो उसने देवत्त्व का पक्ष ग्रहण किया, उससे चन्द्रमा की किरणें उस पर अधिक प्रसन्न हो उठी हों, और रह-रह कर उसके कपोलों को चूम रही हों।

मैं कुछ क्षणों तक अनुराधा के मुख मण्डल की ओर देखता रहा, और फिर बोल उठा—अनुराधा! सो रही हो अनुराधा!

हाँ......नहीं......क्या बात है?—अनुराधा ने कुछ विस्मित स्वर में उत्तर दिया!

कुछ नहीं अनुराधा!—मैंने अपने स्वर को कुछ गंभीर बना कर कहा—यों ही। मैंने सोचा, तू जग रही है, या सो रही है!

मैं कहने को तो कह गया, पर मेरी वाणी से साफ-साफ प्रगट हो रहा था, कि कुछ न कुछ बात अवश्य है! अनुराधा उसी को लक्ष्य करते हुये बोल उठी—आप छिपा रहे हैं! कुछ न कुछ बात तो अवश्य है! इस चाँदनी रात में कहीं रमोला तो याद नहीं आ रही है!

मैं आश्चर्य-चकित होकर अनुराधा की ओर निहार उठा। मेरे अधर तो बन्द रहे, किन्तु विस्मय से विस्फारित मेरी आँखों ने अनुराधा को यह अवश्य बता दिया, कि अनुराधा, तू सच कह रही है! मैं कुछ देर तक अनुराधा की इस अन्तर्भेदिनी दृष्टि की

मन ही मन सराहना करता रहा; और फिर बोल उठा—मान लो अनुराधा, यदि मुझे रमोला की ही याद आती हो तो !

तो क्या ?—अनुराधा तत्क्षण बोल उठी—या तो आप बंबई चले जाइये, और या रमोला को ही यहाँ आने के लिये तार दे दीजिये।

अनुराधा अपनी बात समाप्त करके मेरी ओर देखने लगी। कदाचित् उसने सोचा होगा, कि मैं भी उसी की तरह तत्क्षण बोल उठूँगा, किन्तु अनुराधा की बात को सुन करके भी मैं कुछ देर तक विचारों के पंख पर उड़ता रहा। फिर मैंने अपनी वाणी मे अधिक गंभीरता घोल कर कहा—मान लो यदि रमोला यहाँ आजाय तो अनुराधा !

तो क्या ?—अनुराधा शीघ्र कह उठी—जिस प्रकार मैं रहती हूँ, उसी प्रकार वह भी रहेगी।

तुम्हे उससे ईर्षा तो न पैदा होगी अनुराधा—मैंने कहा।

ईर्षा, ईर्षा—उसने टूटते हुये स्वर मे उत्तर दिया—ईर्षा उससे क्यों होगी ?

वह कह तो गई, पर मैंने देखा उसके स्वर मे कुछ कंपन-सा था, और कंपन में उसका मन नहीं, उसका हृदय लिपटा हुआ था। मैं मन ही मन कह उठा, 'अनुराधा, तू इसे जितना सरल समझ रही है, उतना यह सरल नहीं है।

पता नहीं, अनुराधा अपने मन मे क्या सोच रही थी; किन्तु इसी समय द्वार की जंजीर खड़खड़ा उठी, और मैं बोल उठा—अनुराधा कोई बुला रहा है क्या ?

मेरी बात पूरी भी न हो पाई थी, कि जंजीर पुनः खटकी और अनुराधा बोल पड़ी—हाँ, कोई है तो।

अच्छा, मैं देखता हूँ—यह कह कर मैं चारपाई से उठा, और बिजली की सुइच दबाता हुआ द्वार पर पहुँच कर किवाड़ खोल दिया।

मेरे विस्मय की सीमा न रही। द्वार पर रमोला के पिता सुधीन्द्र खड़े थे। वे मुझे देखते ही बोल उठे—मैं हूँ व्रजेश; और वह ताँगे पर रमोला भी है!

सुधीन्द्र अपनी बात समाप्त कर मेरी ओर देखने लगे; और मैं विस्मय की तरंगों में ऐसा डूब गया, कि कुछ क्षणों तक मुझे पता ही न चला, कि मैं कहाँ हूँ; और मुझे क्या करना चाहिये?

× × ×

दोपहर का समय था। मैं और सुधीन्द्र खाना-खा कर आमने-सामने कुर्सी पर बैठे हुये थे। सुधीन्द्र कुछ अधिक उदास, चिन्तित, और गंभीर-से दिखाई देते थे। मैं कई बार उनके घर हो आया था, किन्तु मैंने ऐसी गंभीरता कभी उनकी आकृति पर न देखी थी। वे कुर्सी पर बैठने के पश्चात् कुछ देर तक सोचते रहे। फिर बोल उठे—व्रजेश, रमोला के साथ मुझे यहाँ देखकर तुम्हें विस्मय तो हुआ होगा!

मैं कुछ उत्तर न देकर सुधीन्द्र की ओर देख उठा। मानों मेरी मूक आँखें साफ-साफ उन्हें बता रही हों, कि हाँ डाक्टर सुधीन्द्र विस्मय तो अवश्य हुआ है! पता नहीं, डाक्टर सुधीन्द्र ने मेरी आँखों की मौन भाषा के अर्थ को ठीक-ठीक समझा या

नहीं; किन्तु वे कुछ क्षण चुप रह कर पुनः बोल उठे—ब्रजेश, तुम जानते हो न, कि तुम्हारा और रमोला का अब तक कैसा सम्बन्ध रहा है! उस दिन याद है, जब फील्ड मे गेंद की चोट से तुम्हारा सिर फट गया था। मैं कह नहीं सकता ब्रजेश, कि रमोला तुम्हारी ओर क्यों आकर्षित हुई? उसने जिस तरह इतने मनुष्यों की बीच में अपनी साड़ी का अंचल फाड़कर तुम्हारे सिर का घाव बाँधा, और फिर जिस तरह अपरिचित होने पर भी अपने घर लाकर तुम्हारी सेवा की, उसी से मै यह समझ गया, ब्रजेश, कि रमोला के हृदय में तुम्हारे लिये एक ऐसा स्थान बन गया है, जिसकी विस्मृति तुम दोनो के लिये असह्य होगी। इसीलिये ब्रजेश, मैंने कभी रमोला, और तुम्हारे बीच मे प्रतिबन्ध की दीवाल खड़ी न की; किन्तु ब्रजेश, जानते हो आज मैं इसीलिये कितनी कठिनाई मे फँस गया हूँ। रमोला ने विवाह करने से अस्वीकार कर दिया है। वह कहती है, कि यदि वह विवाह करेगी तो तुम्हारे ही साथ......!

सुधीन्द्र अपनी बात समाप्त कर मेरी ओर देखने लगे, और मैं? मैं तो जैसे आँधी मे काँपती हुई लता की भाँति हिल उठा। विवाह! रमोला मेरे साथ विवाह करेगी! मै रमोला की तरफ अधिक आकर्षित अवश्य हो उठा था, और कभी-कभी विवाह की कल्पना भी कर जाता था, किन्तु कभी इस बात पर विचार भी न किया था, कि जब कभी यह प्रश्न हमारे सामने आये, तो मुझे किस प्रकार उत्तर देना चाहिये? वास्तव में मुझे इस प्रश्न को

इस रूप में आने की आशा भी न थी। मैं शीघ्रता में अचकचाते हुये बोल उठा—विवाह; किन्तु मैं तो विवाहित हूँ डाक्टर साहब !

हाँ, यह तो मैंने यहाँ आकर जाना है व्रजेश !—डाक्टर सुधीन्द्र बोल उठे—मुझसे तो भूल हुई ही व्रजेश, किन्तु तुमने भी भूल की ! यदि तुम रमोला को पहले ही बता दिये होते……!

सच बात तो यह है डाक्टर साहब !—मैंने सुधीन्द्र की ओर देखते हुये नम्र स्वर में उत्तर दिया—मुझमें और रमोला में कभी इस संबंध में कोई बात ही न हुई। हम दोनों स्वतंत्रतापूर्वक मिलते अवश्य रहे, किन्तु न तो कभी उसने मेरे पारिवारिक जीवन के संबंध में पूछा, और न कभी मैंने उससे।

मैं कह तो गया, किन्तु मुझे ऐसा ज्ञात हुआ, कि जैसे मैं बहुत नीचे गिरा जा रहा हूँ। डाक्टर सुधीन्द्र ने कनखियों से मेरी ओर देखा। उनकी आँखों का वह कोना ! स्पष्टतः उसमें उपहास झलक रहा था ! वे कुछ क्षण तक मौन रहे। फिर बोल उठे—खैर जो कुछ हो गया, उसकी अब चिन्ता क्या है व्रजेश ! अब तो जो कुछ आगे है, उसे देखना है। मैं तुम्हारे पास रमोला को छोड़े जा रहा हूँ। कदाचित् उसके जीवन की कोई राह बन जाय !

× × ×

आज-कल्ह रमोला मेरे घर मेरी स्त्री अनुराधा के साथ रहती है, और मैं दिन रात यही सोचा करता हूँ, कि मैं क्या करूँ ?

वेश्यापुत्री

महाशिवरात्रि के व्रत का दिन! भगवान शंकर का मन्दिर घंटे के निनाद के साथ 'हर हर' ध्वनि से गुंजित हो रहा था। कह नहीं सकते, अन्तर की प्रगाढ़ भक्ति को लेकर, या परम्परा की रीति के वशीभूत होकर, जिसे देखिये, वही बेलपत्र, मन्दार-फल, और पुष्प लिये हुये मन्दिर की ओर बढ़ा जा रहा था, और मन्दिर में पहुँचकर कुछ ताम्र या रजत खण्डों के साथ भगवान शंकर की मौन मूर्ति पर बिखेरने में बड़ी आकुलता प्रगट कर रहा था। मन्दिर के पुजारी, जिनके भव्य मस्तक पर त्रिपुण्ड का चिह्न था, बड़ी तन्मयता से बेलपत्रों को हटाकर रजत और ताम्र खण्ड बीन-बीन कर एक कुण्ड में रखते जा रहे थे। भगवान शंकर घंटे के उस निनाद और 'हर-हर' ध्वनि में, बेलपत्रों के मध्य शान्त भाव से स्थित थे। मानो वे अपने पुजारियों के इस अशान्त प्रेम-वायुमण्डल में भी या तो ध्यानावस्थित हों, और या अपनी तीव्र दृष्टि से, चुपचाप अपने पुजारियों के हृदय में अपनी भक्ति टटोल रहे हों।

"पुजारी जी, यह मेरी डलिया के बेलपत्र! इन्हें भी भगवान

शंकर की मूर्ति पर चढ़ा-दीजिये !"—मन्दिर की इसी व्यस्तता में विवशता और नम्रता से लिपटा हुआ एक मृदुल कंठ पुजारी के समीप ही बोल उठा।

पुजारी जी ने, उसके कंठ में जो नम्रता थी उससे, या जो मृदुलता थी, उससे, कह नहीं सकते, पीछे निहार उठे, और साथ ही साथ बोल पड़े—तुम ! वेश्यापुत्री !!

पुजारी जी कुछ देर तक सोचते रहे। फिर उनकी आँखें क्रोध की ज्वाला से उद्दीप्त हो उठीं, और वे अपनी आँखों की चिनगारियों को उस पर बिखेरते हुये पुनः बोल उठे—तुम मन्दिर में ! तुम्हारे बेलपत्र भगवान शंकर की मूर्ति पर न चढ़ेंगे ! जाओ, लौट जाओ !!

"वेश्यापुत्री, वेश्यापुत्री" !! मन्दिर में आने-जाने वाले उपासकों के कंठ से यह रव निकलकर मन्दिर में गूँज उठा। पुजारी जी ने भगवान शंकर की मूर्ति पर आवरण डाल दिया, स्त्री-उपासिकाओं ने अपनी धोतियाँ और घाँघरे सिमेट लिये, और पुरुष उपासक 'शिव शिव' का स्तोत्र जपते हुये कुछ दूर हट कर उसकी ओर देखने लगे। वेश्यापुत्री ने एक बार दृष्टि उठाकर भगवान शंकर की मूर्ति की ओर देखा, और फिर उसने देखा, अपने आस-पास एकत्र मनुष्यों की ओर ! उसने देखा, सब अपनी आँखों में घृणा और उपेक्षा भरे हुये उसी की ओर देख रहे हैं। वह उसी घृणा और उपेक्षा की गोद में बैठी हुई नम्र कंठ से बोल उठी—मेरे बेलपत्र, क्यों नहीं शंकर की मूर्ति पर चढ़ेंगे पुजारी जी !

पुजारी जी ने अपनी आँखो से आग के स्फुलिंग बिखेरते हुये कहा—तुम वेश्या हो, कलंकिनी हो, पापिनी हो !! तुम्हारे हाथों का बेलपत्र ! तुम्हारे हाथों का बेल पत्र कदापि शंकर की मूर्ति पर नहीं चढ़ सकता वेश्यापुत्री ! जाओ, अपने बेल पत्र और मन्दार-फल लेकर लौट जाओ !!

मै लौट जाऊँगी पुजारी जी !—वेश्यापुत्री ने कंठ मे पीड़ा के साथ ही साथ कुछ रोष भी भर कर कहा—किन्तु एक बात बता दीजिये पुजारी जी ! क्या ये सबके सब स्त्री-पुरुष, जिनके बेल पत्र और मन्दार-फल आप शंकर की मूर्ति पर चढ़ा रहे हैं, निष्कलंक हैं, पवित्र आत्मा हैं, पुण्य चरित्र वाले हैं !! हो सकता है पुजारी जी, इनमें कितने ही स्त्री-पुरुष ऐसे हों, जो प्रति दिन मुझसे भी अधिक मानवता के शुभ्र अंचल पर काले निशान भरते हों, पर हाँ वे 'पाप' और 'अधर्म' में भी साहस का अंचल न पकड़ कर कायरता और ओट का ही आश्रय ग्रहण करते हैं। उनमे और मुझमे यही तो अन्तर है पुजारी जी !

पुजारी ने रोष भरी दृष्टि से वेश्यापुत्री की ओर देखा। मानों पुजारी अपने अन्तर की सारी कोपाग्नि उँडेल कर वेश्यापुत्री को भस्म कर देना चाहते हों। पुजारी अपनी कोपाग्नि से भीतर ही भीतर दग्ध होकर तीव्र स्वर में बोल उठे—निकाल कर बाहर कर दो, इस कलंकिनी को मन्दिर के भीतर से !

उपासक स्त्री-पुरुषों को, जो अभी तक अपने वस्त्रों के छोर को स्पर्श हो जाने के भय से, वेश्यापुत्री से बड़ी सतर्कता से बचाकर

चुपचाप खड़े थे, वेश्यापुत्री की पीड़ा और रोष से भरी हुई वाणी आन्दोलित करने के लिये पर्याप्त थी; और उस पर पुजारी का आदेश। कर्कश और हृदय बेधक शब्दों की फुलझड़ियाँ बरस पड़ीं, और किसी-किसी ने इसलिये भी हाथ आगे बढ़ा दिया कि वे उसकी चोटी पकड़ कर मन्दिर से बाहर निकाल दें, और मन्दिर को कलंकित होने से बचाने के पुण्य में अधिक से अधिक भाग लें।

पर जब तक उनके हाथ उसकी चोटी पर पहुँचें और पहुँचे, कोई प्रतिरोध के शब्दों में बोल उठा—यह क्या ? यह क्या ? मन्दिर में ऐसा वीभत्सकाण्ड !!

लोगों की दृष्टि आगन्तुक की ओर आकर्षित हो उठी; और जो हाथ, वेश्यापुत्री की चोटी की ओर आगे बढ़े थे, वे पीछे लौट आये ! वेश्यापुत्री, और पुजारी ने भी आगन्तुक की ओर देखा। वेश्यापुत्री तो कुछ न बोली; किन्तु पुजारी जी तत्क्षण बोल उठे—यह वेश्यापुत्री है छोटे सरकार ! इसका साहस तो देखिये, भगवान शंकर की मूर्ति पर बेलपत्र चढ़ाने के लिये मन्दिर के भीतर घुस आई है !

छोटे सरकार ! बीस बाइस वर्ष का स्वस्थ युवक, रँग साँवला, उन्नत लटभार, आँखें कुछ बड़ी, और भावुकता के पंख पर उड़ती हुई ! अंग-अंग से विचार और चेतना टपक रही थी। नगर के छोटे से राव महीपत सिंह का एक मात्र पुत्र दिलीप था। हाथ में बेलपत्र, पुष्प और मन्दार-फल से परिपूर्ण डलिया लिये

हुये खड़ा-खड़ा कभी पुजारी की ओर और कभी भगवान शंकर की मूर्ति की ओर इस प्रकार देखने लगा; मानो उसकी आँखों के सामने एक चित्र घूम गया हो, और वह उसी मे किसी तथ्य की छान-बीन कर रहा हो।

कुछ देर तक मौन रह कर दिलीप बोल उठा—वेश्यापुत्री! क्या कहा पुजारी जी वेश्यापुत्री !!

हाँ छोटे सरकार !—पुजारी ने प्रोत्साहित होकर कहा—देखिये न, यह आपके सामने ही खड़ी है। इसका दुराग्रह तो देखिये छोटे सरकार! कह रही है, मै इसके बेलपत्र लेकर भगवान शंकर की मूर्ति पर चढ़ा दूँ!

दिलीप ने एक बार वेश्यापुत्री की ओर देखा। उसे ऐसा लगा, मानो भर्त्सना और उपेक्षा के मध्य मे करुणा से लिपटी हुई विवशता खड़ी हो! दिलीप के हृदय पर दुख की एक सघन रेखा-सी अंकित हो उठी, और वह दु:ख ही के साथ खेलता-खेलता बोल पड़ा—तो चढ़ा दीजिये न इसके बेलपत्रों को भगवान शंकर की मूर्ति पर पुजारी जी!

पुजारी ने आश्चर्य-चकित दृष्टि से एक बार दिलीप की ओर देखा, और फिर आश्चर्य के ही स्वर में बोल पड़े—किन्तु यह कैसे हो सकता है छोटे सरकार!

उसी प्रकार—दिलीप ने गंभीर स्वर मे कहा—जिस प्रकार हो रहा है।

किन्तु छोटे सरकार!—पुजारी ने दिलीप की ओर देखते हुये

उत्तर दिया—यह वेश्यापुत्री है। इसके बेलपत्र भगवान शंकर की मूर्ति पर चढ़ेंगे! यह कभी नही हो सकता, कभी नहीं!

दिलीप ने एक बार पुजारी की ओर तीव्र दृष्टि से देखा, और पुनः वह कुछ सोचता हुआ बोल पड़ा—मैं मानता हूँ पुजारी जी यह वेश्यापुत्री है, किन्तु क्या इसका वेश्यापन इसके बेलपत्रों में भी समाविष्ट है? ज़रा इसके बेलपत्रों को हाथ मे लेकर देखिये तो पुजारी जी, इनमें और उनमें क्या अन्तर है?

बहुत अन्तर है छोटे सरकार!—पुजारी ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया—इसके एक-एक बेलपत्र पर इसके पाप का प्रतिबिम्ब है, कलंकों का मुहर है, और है इसके नारकीय जीवन की छाप। मैं पाप, कलंक और नारकीय जीवन से स्पर्शित इन बेलपत्रों को भगवान शंकर की मूर्ति पर न चढ़ने दूँगा!

अच्छा तो आपको यह भय है—दिलीप बोल उठा—इसके हाथों के बेलपत्रों से भगवान शंकर की मूर्ति कलंकित हो जायगी, और इसके जीवन का पाप-पूर्ण धुआँ भगवान शंकर की महान् पवित्रता को ढँक कर उसे भी अपने ही जैसा कलंकित बना देगा! क्यों यही बात है न!

पुजारी ने कुछ उत्तर न दिया! मानों दिलीप की बातो का उत्तर देने के लिये पुजारी के पास अब कुछ शब्द ही शेष न रह गये हों। पुजारी से कुछ उत्तर न पाकर दिलीप के हृदय की लहरें जैसे उमड़ पड़ी हों, और वह आवेग के स्वर में बोल पड़ा—पुजारी जी, आप भगवान शंकर के मन्दिर में भगवान

शंकर की सत्ता का उपहास कर रहे हैं। आप जानते हैं, भगवान शंकर अपनी अखण्ड पवित्रता की शक्ति से समस्त ब्रह्माण्ड को ध्वंस कर सकते हैं, अखिल भूमण्डल को अग्नि की लहरों में लपेट कर क्षणमात्र में क्षार बना सकते हैं और कर सकते हैं समुद्र की अपार जल-राशि को कीचड़ के रूप में परिवर्तित ! फिर ऐसे शंकर—ऐसे महा समर्थ और पूत शंकर की मूर्ति पर वेश्यापुत्री के वेलपत्र क्यों नहीं चढ़ेंगे पुजारी जी, क्यों नहीं ? भगवान शंकर की पवित्रता के प्रति इतना सन्देह, इतना अविश्वास !!

दिलीप की बातें पुजारी के अन्तस्तल को छेदती हुई बहुत दूर तक निकल गईं। पुजारी को ऐसा लगा, मानो उसका सारा अन्तर्जगत हलचल से परिपूर्ण हो उठा हो ! पुजारी जी कुछ देर तक अपने भीतर उठी हुई हलचल की लहरों पर भीतर ही भीतर नाचते रहे। फिर संयत स्वर में बोल उठे—मैं मानता हूँ छोटे सरकार, वेश्यापुत्री के वेलपत्रों से भगवान शंकर की पवित्रता कलंकित न हो जायगी; किन्तु व्यवस्था भी तो कोई वस्तु है। इस मन्दिर के निर्माणकाल से लेकर और आज तक के इतिहास में कभी ऐसा नहीं हुआ है छोटे सरकार, कि किसी वेश्या ने आकर शंकर का मूर्ति पर बेलपत्र चढ़ाये हों। मैं आज नई बात नहीं होने दूँगा।

दिलीप की आँखें क्रोध से आरक्त हो उठीं; साँसें तीव्र गति से चलने लगीं, और नथने फड़क-फड़क कर रह गये। उसके मन में एक बार आया, कि वह वेश्यापुत्री के हाथ से फूलों की

डलिया लेकर शंकर की मूर्ति के ऊपर बिखेर दे; पर फिर वह कुछ सोचकर रुक गया, और अपने भीतर उठी हुई क्रोध की आँधी को दबाता हुआ बोल उठा—हाँ पुजारी जी, इस मन्दिर में शंकर की मूर्ति के ऊपर वेश्या के बेलपत्र तो नहीं चढ़े हैं; किन्तु उसके नृत्य कई बार हो चुके हैं।

पुजारी ने दिलीप की ओर देखा। दिलीप तीव्र दृष्टि से पुजारी जी की ही ओर देख रहा था। पुजारी जी उसकी ओर देखकर बोल उठे—मुझे क्षमा कीजिये छोटे सरकार! मन्दिर आपके पूर्वजों का है, और आपको पूर्ण अधिकार है, कि आप शंकर की मूर्ति पर चाहे जो चढ़ायें, किन्तु पहले मुझे इस आसन को छोड़ लेने दीजिये।

नहीं पुजारी जी, आप इस आसन को न छोड़िये !—दिलीप ने कहा—आप इस आसन को छोड़ देंगे तो शंकर की पवित्रता और मेरे पूर्वजों की कीर्ति की रक्षा कौन करेगा; किन्तु हाँ, आज भगवान शंकर के द्वार से, उन्हीं के लिये आई हुई मेरी यह भरी-भराई डलिया अवश्य लौट जायगी पुजारी जी, और यह भगवान शंकर की मूर्ति के ऊपर तब तक न चढ़ेगी, जब तक इस वेश्यापुत्री के बेलपत्र शंकर की मूर्ति पर न चढ़ लेंगे !

पुजारी ने दिलीप की ओर देखा। दिलीप भगवान शंकर के सामने मस्तक झुकाकर पीछे लौट चुका था। जाते-जाते उसने एक बार शान्त भाव से स्थित वेश्यापुत्री की ओर देखा। वेश्यापुत्री बोल उठी—मेरे लिये आप अपना नैवेद्य वापस लिये जा रहे हैं।

तुम्हारे लिये नहीं !—दिलीप ने उसकी ओर देखकर उत्तर दिया—अपने कर्त्तव्य के लिये !

वेश्यापुत्री, पुजारी, और एकत्र स्त्री-पुरुषों ने आश्चर्य-चकित दृष्टि से दिलीप की ओर देखा। दिलीप हाथ में फूलों की डलिया लिये हुये मन्दिर के बाहर निकला जा रहा था।

[२]

मृत्यु को जानते तो सभी लोग है, किन्तु उसका अभिनय देखते केवल वे ही लोग हैं, जो अपने कर्त्तव्य के लिये निरन्तर सिर मे कफनी लिपेट कर घूमा करते हैं, और जो साहस और शक्ति का संगीत सुनते है। युवकों का वह छोटा-सा दल भी ऐसा ही था। थे तो उस दल मे दस-पन्द्रह ही युवक, पर सब के सब ऐसे थे, जिन्हे देखकर मृत्यु की विभिषिका भी मधुर बन जाती थी। श्मशान मे, सुनसान मे, विभिषिकाओं से भरी अर्द्ध-रात्रि में, और चिलकती हुई धूप मे, जहाँ जाते हुये लोगो के प्राणों मे भय की आँधियाँ दौड जाती है, वे निर्भयतापूर्वक अपने कर्त्तव्य के लिये चले जाते थे, अपनी प्रगति से काँटो को फूल बना देते थे, मृदुल फूल !!

नगर के सभी मनुष्यों के अधरों पर इसी दल की चर्चा थी। नगर के स्त्री-पुरुष, जिसे देखिये वही यह कहा करता था, कि युनिवर्सिटी के ये छात्र न जाने किस दूध से पले है ! नगर में जब चारों ओर मृत्यु की विभिषिका फैली हुई है, और लोग अपने-अपने प्राणो को लेकर हवा की तरह नगर से भागे जा रहे हैं तब

ये युवक लोगों के घरों में घुस-घुस कर मुर्दे निकाल रहे हैं, और उन्हें अपनी पीठ पर लाद-लाद कर गंगा के तट पर पहुँचा रहे हैं। धन्य हैं ये युवक! इतिहास के पृष्ठ ऐसे ही युवक के लिये तरसा करते हैं।

जाड़े के दिन थे। संपूर्ण नगर प्लेग की वेदिका पर बैठा हुआ साँय-साँय कर रहा था। गली-गली में, कोने-कोने में प्लेग का भयानक राक्षस घुस कर बैठा हुआ था और क्षण-क्षण पर स्त्री-पुरुषों के प्राणों को अपने पंजे से खींच रहा था। जिसे कल्ह बोलता हुआ देखा था, वह आज महाशान्ति की गोद में मौन है, और जिसे अभी कुछ घंटों पूर्व चलता हुआ छोड़ आया था, अब श्मशान में उसकी क्षार का भी पता नहीं है! मनुष्य का प्राण क्या था, सूत का कच्चा धागा! जरा-सा झटका दिया, और टूट गया। चारों ओर कुहराम और कोलाहल! लोग भाग गये थे और जो बचे थे, वे भी भागे जा रहे थे। दम तोड़कर पड़े हुये पुत्र को छोड़ कर न पिता को जाने में संकोच था, और न महाशान्ति की गोद में सोये हुये पिता को छोड़ कर जाने में पुत्र को हिचकिचाहट! प्राण जब शरीर से उड़ गये, तब माता, पिता, पुत्र, भाई, बहन, पत्नी और पति का आपस में क्या संबंध? प्राण-पंछी से खाली शरीर का पिंजड़ा गंगा के गर्भ में जाये या न जाये, अग्नि में जल कर पंच भूतों में मिले या न मिले! प्लेग के उस महा साम्राज्य में लोग स्वार्थ के कारण अधिक सज्ञान बन गये थे, और अपने-अपने घरों में मुर्दों को छोड़-छोड़ कर भागे जा

रहे थे। जिधर से ही निकलिये, मुर्दों की दुर्गन्ध ! जब लोग प्लेग की संक्रामकता के कारण जीवितों से भय कर रहे थे, तब फिर मुर्दों की चिन्ता ही कौन करता है ? वे भी, जो शान्ति के समय अपने प्रभुत्त्व और क्रान्ति के समय अपने आतंक के कोड़ों से जनता की पीठ सहलाया करते हैं, और अपने को नगर का संरक्षक बताते हैं, मृत्यु की विभिषिका के डर से न जाने किस कोने मे कीड़े-पतिंगों की भॉति दुबके हुये पड़े थे। पर वाह रे जड़ श्मशान ! तू ऐसे समय में भी अपनी भुजायें पसारे हुये निरन्तर खड़ा रहता है ! चाहे जितने शव तेरी गोद में डाल दिये जायें ! तू सबको बड़ी उत्कंठा से अपनी गोद मे स्थान देता है, और फिर अपने में ऐसा मिला लेता है, कि तेरी अभेदता को संसार ऑख फाड़-फाड़ कर देखता है।

प्लेग आरंभ होते ही युनिवर्सिटी बन्द हो गई, सभी छात्र और अध्यापक अपने-अपने घर चले गये । पर दिलीप अपने दस-पन्द्रह साथियों के साथ युनिवर्सिटी के पास वाले आम्र के बगीचे में ही बना रहा । युनिवर्सिटी बन्द होते-होते मृत्यु की विभिपिका भयानक रूप धारण कर चुकी थी, और साहसी श्मशान भी मुर्दों के अम्बार को देखकर कंपित-सा हो उठा था। छात्रों और अध्यापकों मे से, जिससे जितनी जल्दी हो सका, नगर छोड़ कर चले गये। पहले इच्छा तो दिलीप की भी हुई, कि वह घर चला जाय, पर जब उसने मृत्यु की विभिषिका की कहानी सुनी, और यह सुना, कि नगर के घरों में मुर्दे पड़े हुये सड़ रहे है, तब

उसका हृदय विचलित हो उठा, और उसने यह निश्चय किया, कि वह घर न जाकर मृत्यु की विभिषिका से लड़ेगा ! मृत्यु ! उसने अनेक बार अपनी कक्षा मे दर्शन का अध्ययन करते हुये अपने अध्यापक के मुख से सुना था। आज वह उसी मृत्यु की हाट से अपने कर्त्तव्य का अस्त्र लेकर युद्ध करेंगा, विभिपिका से लड़ेगा, और उसके भयानक मुँह में घुस-घुस कर रोते और विलपते हुये लोगो को निकाल लायेगा ! उसने अपने ही जैसे युवकों की एक टोली बनाई। दिन में तो कोई बात ही नहीं, रात को भी यह टोली मशाल लेकर नगर में चक्कर लगाती थी, और मुर्दों को अपनी पीठ पर लाद कर श्मशान के हवाले कर देती थी। दिलीप के पिता राव महीप सिंह को जब यह खबर मिली, तब वे दिलीप को बुलाने के लिये स्वयं आये, किन्तु दिलीप ने ममता की वेदी पर कर्त्तव्य का बलिदान करने से साफ अस्वीकार कर दिया।

जाड़े की रात्रि थी। बारह बज रहे थे। सारा नगर साँय-साँय कर रहा था। ऐसा ज्ञात होता था, मानो नगर का एक-एक घर भय का कन्दरा हो ! घरों की ओर देखते ही रोंगटे खड़े हो जाते थे। मनुष्यों की तो बात ही क्या, रात को बोलने वाले पशु और पक्षियो के कंठ भी भय से अवरुद्ध हो उठे थे। पर दिलीप के मन मे भय का नाम तक नहीं ! जैसे वह कोई ऐसा साधक हो, जो अपनी साधना की सिद्धि के लिये मृत्यु की विभिषिका में घूम रहा हो। उसके हाथ मे मशाल था। वह एक गली के मोड़ पर

पहुँच कर अपने साथियों से बोल उठा—रमेश, सतीश, तुम दोनों उस तरफ जाओ, और मैं इस गली में।

रमेश और सतीश ने आश्चर्य से दिलीप की ओर देखा। मानो उनकी पलके आश्चर्य से हिलती हुई कह रही हों, "दिलीप तुम अकेले!" पर स्पष्ट रूप से दोनों मौन ही रहे, क्योंकि इसके पूर्व भी तो दिलीप साँय-साँय करती हुई गलियों में घूम चुका था। दिलीप दोनों को आश्चर्य से अपनी ओर देखता हुआ पुनः बोल उठा—मेरी चिन्ता न करो सतीश! जाओ, अपना काम करो।

सतीश और रमेश, दोनों दूसरी ओर चल पड़े। दिलीप उस पतली गली में घुसा, जिसमें शान्तिकाल में दिन में भी प्रवेश करते हुये अपरिचितों के रोंगटें खड़े हो जाते थे। सँकरी गली, अंधकार, एकान्तता, और इस पर भी मृत्यु की चिमिपिका! ऐसा लगता था, मानों स्वयं काल देवता ही अपनी सेना के साथ उस गली में उतर पड़ा हो। एक-एक घर, घर का एक-एक द्वार, और घर की एक-एक खिड़की ऐसी लगती थी, मानो स्वयं यम ही शरीर धारण कर या मुँह फैलाकर खड़ा हो। दिलीप हाथ में मशाल लेकर बड़ी सतर्कता से उस गली में आगे बढ़ता जा रहा था! उसका हाथ में मशाल लेकर उस साँय-साँय करती हुई गली में आगे बढ़ना ऐसा मालूम होता था, मानो सत्य पुण्य की ज्योति हाथ में लिये हुये पाप के संसार में घुसा जा रहा हो! दिलीप सहसा एक छोटे से मकान के सामने जाकर खड़ा हो गया, और सतर्कता से कुछ सुनने का प्रयत्न करने लगा।

"ओह ! पानी, पानी !! ओह......ओह !!" एक बार, दो बार और तीन बार ! दिलीप ने तीन बार एक क्षीण कंठ से निकलते हुये रव को सुना ! उसे ऐसा लगा, मानों रव के तार टूटते जा रहे है, और कंठ अवरुद्ध होता जा रहा है। दिलीप हाथ में मशाल लिये हुये, किवाड़ को ठेल कर, सीढ़ियों से होता हुआ ऊपर जा पहुँचा। सीढ़ियों से ही लगा हुआ एक लंबा-चौड़ा कमरा, और उसमें दो चारपाइयाँ। एक पर कोई पड़ा हुआ चिर शान्ति की नींद सो रहा था, और दूसरी पर एक युवती, जिसके बाल खुलकर फर्श पर लटक रहे थे, कराहती हुई करवटें बदल रही थी। दिलीप कमरे के द्वार पर खड़ा होकर कभी युवती की ओर, कभी उस दूसरी चारपाई की ओर, और कभी उस कमरे के रूप-रंग की ओर देखने लगा। युवती, जो चारपाई पर कराह रही थी, मशाल के प्रकाश से चमत्कृत हो उठी, और सिर द्वार की ओर घुमाकर देखने लगी। कुछ देर तक उसी ओर देखती रही, फिर बोल उठी—कौन ? घृणा और कलंक का जीवन बिताने वाली वेश्या के घर में, इतनी रात और ऐसे समय में, तुम कौन हो, जो आये हो ? अवश्य तुम्हें धन चाहिये। यह देख रहे हो न, दूसरी चारपाई ! मेरी माँ है, शान्ति की चिर निद्रा में सो रही है। वह जो तिजोरी है न। उसी में इसके पाप की कमाई संचित है। चाहे, जितना उसमें से निकाल लो !

युवती दिलीप की ओर देखने लगी। दिलीप जैसे द्वार पर अचल बन गया ! न तनिक हिला, और न सगबगाया। केवल

आँखो मे आश्चर्य भर कर युवती की ओर देखता रहा। युवती कुछ देर तक शान्त रह कर पुनः बोल उठी—क्यो, सोच क्या रहे हो ? बढ़ो, और चाहे जितना धन, तिजोरी से निकाल लो ! सच कहती हूँ; तुम्हें कोई न रोकेगा ! माँ मर गई है, और मै भी अब मरने ही वाली हूँ। इसमें इतना धन है, कि तुम अपना जीवन बड़े आनन्द से गुजार सकोगे !

दिलीप फिर भी कुछ न बोला, और अविचल भाव से युवती की ओर केवल देखता ही रह गया। युवती पुनः बोल उठी—"अच्छा, अब मैंने समझा ! कदाचित् वेश्या का धन भी लेते हुये तुम्हें भय मालूम हो रहा है ! सोचते होगे, कहीं पाप की यह कमाई तुम्हारे शुभ्र जीवन को कलंकित न कर दे। पर यह भय क्यो ? तुम्हारे पास गंगा-जमुना की लहरें और देवताओं के चरणों का चरणामृत है। उसी मे इस धन को धो-धोकर साफ कर लेना !"

दिलीप फिर कुछ न बोला। जैसे युवती की बातो से उसके मन की कोई आग बुझ रही हो, और वह चाहता हो, कि युवती पुनः-पुनः बोले। युवती कुछ देर तक शान्त रह कर पुनः कहने लगी—पर नहीं, शायद तुम धन के लिये नहीं आये हो ! जान पड़ता है, पुण्य की चादर ओढ़ कर पाप का अभिनय करने वाले समाज के कोई भूखे शिकारी हो ! समाज के भूखे शिकारियों के अतिरिक्त वेश्या के घर मे और आ ही कौन सकता है, और फिर ऐसे समय मे, जब प्लेग मुँह फैला कर दौड़ रहा है। चिन्ता

न करो, बढ़ो ! माँ मर गई है तो क्या, मैं तो हूँ। श्मशान मुर्दों से पट जाता है, पर मुर्दे उसके द्वार से नहीं लौटते !

दिलीप फिर कुछ न बोला। पर उसके मन के भीतर एक हलचल अवश्य पैदा हो उठी। युवती; जो अपनी बात समाप्त कर दिलीप की ओर देख रही थी, कुछ देर तक शान्त रहकर पुनः बोल उठी—क्यों, क्यों नहीं आगे बढ़ रहे हो ? शिकार को सामने देखकर आज मैं पहली बार किसी शिकारी को हिचकिचाते देख रही हूँ। कदाचित् तुम इसलिए हिचकिचा रहे हो, जो मेरी साँसे उखड़ी जा रही हैं; किन्तु नहीं, देखो मेरे शरीर की हड्डियों मे अभी मांस की बोटियाँ मौजूद है। दाँतो से मांस की बोटियाँ नोचते हुये तुम्हे बड़ा आनन्द आयेगा।······ओह········ पानी ···पानी···· !

दिलीप, जो अभी अविचल भाव से खड़ा-खड़ा युवती की बातें सुनता जा रहा था, मशाल की सहायता से लैम्प जलाकर घड़े की ओर बढ़ा ! घड़े में न जाने कब का पानी था, और पास ही चूहा मरा हुआ पड़ा था। दिलीप पहले कुछ हिचका, पर युवती का कंठ सींचना आवश्यक था। गिलास में पानी उँडेल कर चारपाई पर बैठ गया, और युवती के कंठ को सींचता हुआ धीरे-धीरे उसके मस्तक पर हाथ फेरने लगा। युवती के शरीर के भीतर जैसे शक्ति की कोई लहर-सी दौड़ पड़ी हो। वह आँखें खोलकर दिलीप की ओर देखती हुई बोल उठी—आप कौन हैं ? उस समाज के तो पुरुष आप नहीं जान पड़ते, जिसके तरकस से

छूटे हुये तीर यहां रोज ही आते हैं. और पंखों से भीतर का मांस नोच कर हँसते-मुसकुराते हुये चले जाते हैं। आपके हाथों से तो एक विचित्र ठंडक-सी ज्ञात हो रही है! आप कौन हैं, जो वेश्या के उत्तप्त भाल को इस प्रकार ठंडक पहुंचा रहे हैं।

अधिक न बोलो, चुप रहो!—दिलीप ने युवती की ओर देखकर कहा—तुम्हारी हालत बड़ी नाजुक है!

"चुप रहूं!—युवती बोल उठी—किस लिये? मुझे जीवित रहने की साध तो अब है नहीं। सो मर गई. अब रह ही कौन गया, जिसके प्यार के लिये बनी रहूं! जितनी ही जल्दी दम टूट जाय, उतना ही अच्छा! आप अपने हाथ मेरे मस्तक पर से हटा लें. और उसे खूब जलने दें, खूब!! इतना जलने दें, कि उसकी गर्मी से जीवन के तार टूट कर टूक टूक हो जायें!

जीवन के तारों का टूटना उतना सरल नहीं है जितना तुम समझ रही हो!—दिलीप बोल उठा—तुम्हारे जीवन के तारों को यदि टूटना होता तो वे पहले ही टूट गये होते! मेरी ओर देखो! मुझे ईश्वर ने तुम्हारे पास इसलिये भेजा है, कि मैं तुम्हारे टूटते हुये जीवन के तारों को जोड़ूं।

युवती ने दिलीप की आंखों में आंख डाल कर देखा! वह कुछ क्षणों तक सोचती रही; फिर सहसा बोल उठी—आप' ओह" आपको मैंने कहीं देखा है? (कुछ सोचकर हाँ, हां अवश्य देखा है। आपको कुछ स्मरण है? भगवान शंकर के मन्दिर में · वह...... वह......।

युवती का गला अवरुद्ध हो उठा, और साथ ही उसकी आँखों से आँसू भी ढुलक पड़े। दिलीप की आँखों के सामने एक चित्र खिंच गया—'महाशिवरात्रि' का दिन, भगवान शंकर का मन्दिर, मन्दिर में हाथ में फूलों की डलिया लिये हुये विवश वेश्यापुत्री! दिलीप ध्यान से युवती की ओर देखकर बोल उठा—तुम! भगवान शंकर के मन्दिर की वेश्यापुत्री!

युवती ने कुछ उत्तर न दिये। केवल दो बूँद आँसू उसकी आँखों से ढुलक पड़े। दिलीप जेब से रूमाल निकाल कर उसका मस्तक सहलाता हुआ उसके आँसू पोंछ ही रहा था, कि सड़क पर मशाल का प्रकाश लौका। दिलीप ने युवती की चारपाई से उठकर खिड़की से सड़क की ओर झाँक कर कहा—रमेश, सतीश, आओ, यहाँ आओ!!

कुछ ही क्षणों में रमेश और सतीश भी ऊपर के कमरे में विद्यमान थे, और युवती की माँ को श्मशान में पहुँचाने का प्रबन्ध हो रहा था, और युवती को आम के बगीचे में।

[३]

वसन्त की रात थी। चाँदनी खेल रही थी। हवा आम्र-मंजरियों से सोंधी-सोंधी सुगन्ध लेकर इठला रही थी। दिलीप नगर के बाहर आम्र के बगीचे में स्थित एक छोटे-से बँगले के सामने कुर्सी डाल कर बैठा हुआ था। उसके सामने एक दूसरी कुर्सी भी थी, जिस पर एक युवती बैठी हुई थी, और दिलीप की ओर देख रही थी। दिलीप आज दो-तीन महीने से इसी बँगले

में रहता था। प्लेग के पूर्व वह छात्रावास मे रहता था; किन्तु जब प्लेग शान्त हुआ, तो वह उसी बँगले मे रहने लगा। कदाचित् इसका कारण वह युवती हो; जो उसके साथ ही साथ उस बँगले मे रह रही थी।

युवती कुछ सोच रही थी, और दिलीप बीच मे स्थित टेबुल पर रक्खा हुआ खाना खा रहा था। दिलीप जब खाना खा चुका तो युवती उसकी ओर देखती हुई मन्द स्वर में बोल उठी—एक बात पूछूँ दिलीप बाबू, बताइयेगा!

हाँ हाँ पूछो,—दिलीप ने उत्सुकता से युवती की ओर देखते हुये कहा।

युवती विचारमग्न-सी हो उठी। जैसे वह जो कुछ पूछना चाहती है, वह आ-आकर भी उसके अधरों पर न आ रहा हो! युवती कुछ क्षणों तक उसी को अपने अधरों पर लाने का प्रयत्न करती रही। फिर मन्द स्वर में बोल उठी—यही दिलीप बाबू, कि आपने मुझे मर जाने से क्यों बचाया?

कोई किसी को मर जाने से नहीं बचा सकता राधा! (युवती का नाम राधा था)—दिलीप ने गंभीरता के साथ उत्तर दिया—किन्तु हाँ, मैंने तुम्हारे साथ जो किया, वह एक मनुष्य को मनुष्य के साथ करना ही चाहिये।

पर यह जानते हुये भी कि मैं एक वेश्यापुत्री हूँ—राधा बोल उठी!

कर्त्तव्य और मानवता यह नहीं देखती राधा, कि कौन क्या

है—दिलीप ने संयत भाव से कहा—उसके लिये फूल, और काँटे, पाप और पुण्य, घृणित और सम्मानित, स्वर्ग और नरक दोनो ही एक समान है। उसे इससे क्या मतलब राधा, कि कौन क्या है ? वह तो प्रत्येक स्थान मे, प्रत्येक के साथ केवल इतनी ही सी बात में सुख मानती है, कि उसे जो करना चाहिये, वह कर रही है।

पर आप जानते है अपने इस कर्त्तव्य का परिणाम !—राधा बोल उठी—आपने अपने कर्त्तव्य का पालन उसके साथ किया है, जो समाज की दृष्टि में पाप है, कलंक है, और है उपेक्षिता ! समाज इस कर्त्तव्य-पालन् के लिये आपको क्या पुरस्कार देगा, इस पर भी क्या आपने कुछ सोचा है ?

कर्त्तव्य-पालन करने वाला फल और पुरस्कार की ओर नहीं आँख उठाया करता .राधा !—दिलीप बोल उठा—उसका ध्यान तो केवल कर्त्तव्य की ओर रहता है राधा, फल चाहे कुछ हो; पर राधा, तुम आज यह सब क्यों पूछ रही हो, क्यो ? क्या तुम्हें हमारी मानवता मे कहीं से कोई छिद्र दिखाई पड़ा है ?

नहीं दिलीप बाबू, ऐसी कोई बात नहीं !—राधा बोल उठी—पर कभी-कभी मैं यह अवश्य सोच उठती हूँ, कि आप ऐसे देव-तुल्य पुरुप के जीवनाकाश पर मै बिलकुल धूमकेतु ही की तरह उदय हो पड़ी हूँ ! कौन जाने, आपको मेरे लिये कैसे-कैसे कितने कष्ट उठाने पड़े, और फिर कष्ट ही क्यो ? घृणा, लांछन और तिरस्कार के हृदय-भेधी डंक भी सहने पड़े ! जब मैं यह

सोचती हूँ दिलीप बाबू, तब मेरा हृदय अवश्य काँप उठता है, और फिर मेरे हृदय से यह निकल पड़ता है, कि मैं मर क्यों न गई दिलीप बाबू, मर क्यों न गई ?

तुम यह सब क्यों सोचती हो राधा !—दिलीप ने कुछ दुःख के साथ कहा—तुम नहीं जानती राधा, कि तुमने मेरे जीवन का प्रवाह मोड़ दिया है ! याद है राधा, उस दिन रात मे जब मैंने हाथ मे मशाल लेकर तुम्हारे घर मे प्रवेश किया था, तब तुमने क्या-क्या कहा था ? तुम्हारी एक-एक बात आज भी मेरे हृदय-संपुटों मे मंत्र की तरह गुंजित हो रही है राधा; और आज उन्हीं मंत्रों के प्रभाव से मै यह सोचने के लिये विवश हो उठा हूँ, कि इस मूक आकाश के नीचे तुम्हारी ऐसी अगणित मूर्तियाँ है राधा, जिनकी छाती पर बैठकर समाज बड़ी बेरहमी से उनके प्राण खींच रहा है। आज इस समाज को मसल डालने की शक्ति मेरी रगों मे लहरा रही है राधा ! समाज मुझे फल या पुरस्कार के रूप मे चाहे जो दे; पर मैंने तुम से जो कुछ पा लिया है राधा, वह बहुत कुछ है, बहुत कुछ है।

दिलीप की बात तो समाप्त हो गई; पर राधा को ऐसा लगा, मानों दिलीप उसके हृदय के कोने-कोने मे घुस कर बोल रहा है; और उसे ऐसा भी लगा, मानों उसके आस-पास का संपूर्ण वायुमण्डल भी दिलीप के स्वरों से गुंजित हो उठा है। राधा स्तब्ध-सी हो उठी, और नेत्रों मे विस्मय भरकर दिलीप की ओर देखने लगी। दिलीप कुछ देर तक शान्त रहा, फिर कुछ सोचता हुआ

बोल उठा—पर राधा, कभी-कभी मेरा मन भी एक बात से आन्दोलित हो उठता है। तुमसे पूछूँ राधा, बताओगी !

क्यों नहीं ?—राधा ने दिलीप की ओर आश्चर्य-चकित दृष्टि से देखते हुये कहा।

दिलीप कुछ सोच रहा था। राधा अपनी बात समाप्त कर उसकी ओर उत्सुकता से देखने लगी ! "दिलीप क्या पूछना चाहता है" उसके हृदय के एक-एक तन्तु मुँह खोलकर अधिक व्यग्र हो उठे। दिलीप कुछ देर तक मन ही मन सोचता रहा; फिर बोल उठा—ये वेश्यायें ! ये कौन हैं राधा ! ये क्यों ईश्वर की धरती पर बैठकर, ईश्वर के आकाश के नीचे ईश्वर की सृष्टि के मुँह मे कलंक की कालिमा पोतती है ? क्यों राधा, क्यों ?

क्या यह आप पूछते है दिलीप बाबू !—राधा ने कहा—अच्छा जब आपने पूछा, ही है तब मैं आपको बताऊँगी दिलीप बाबू, कि ये वेश्यायें कौन है, और क्यों ईश्वर की धरती पर बैठकर ईश्वर की सृष्टि के मुख मे कलंक की कालिमा पोतती हैं ? पर दिलीप बाबू, सुनने के पहले हृदय कठोर कर लीजिये ! कहीं ऐसा न हो, कि सुनकर आपका सुकोमल हृदय टूक-टूक हो जाय। वेश्या-जगत की केवल एक ही कहानी सुनाऊँगी दिलीप बाबू, और आप उस एक कहानी से ही यह जान जायँगे, कि ये वेश्याये कौन है, और क्यों समाज की छाती पर बैठकर समाज के मुख पर कलंक की कालिमा पोतती है—"बीस बाइस वर्ष पहले की बात है दिलीप बाबू ! आगरा के पास एक छोटे से ग्राम

मे एक अबोध ब्राह्मण बालिका अपनी मॉग मे सौभाग्य का सेन्दूर डाले हुये जीवन के ऑगन मे हॅस-हॅस कर खेल रही थी। अचानक एक ऑधी आई, और उसकी मॉग के सेन्दूर को पोछकर चली गई। सेन्दूर क्या है, उसकी मॉग मे वह क्यो डाला गया, और जब वह पुछा, तब लोगो ने क्यो कुहराम मचा दिया, यह उसकी समझ मे कभी आया ही न; किन्तु वह जब बड़ी हुई तो चारो ओर से उसने सुना, कि वह विधवा है। विधवा का जीवन दु:ख, उपेक्षा और वेदना का इतिहास। वह समझ न पाई, कि उसके जीवन का यह इतिहास कब, किसने, और क्यो लिखा, पर उसने यह अच्छी तरह समझा, कि उसके मन के भीतर, और साथ ही शरीर के अंग प्रत्यंगो मे भी कुछ आ रहा है। कदाचित् इसी को लोग यौवन कहते है। समाज भले ही उसे उपेक्षा की दृष्टि से देख रहा था, पर यौवन पूरे वेग से उस पर बरस पड़ा। गॉव का ही एक ब्राह्मण युवक मधुप की तरह उस विकसित, किन्तु अछूती कली के चारो ओर मॅडराने लगा! कली ने अपने पराग को पहले उससे बचाया; किन्तु मधुप का उस पर बार-बार मॅडराना और गूॅजना! कली ने चुपचाप अपना कोप खोल दिया। भ्रमर ने खूब छक कर उसके पराग का पान किया, खूब छक कर; किन्तु जब उसके प्रणय स्वरूप कली के कोप मे 'ढोड़' पड़ गया; तब भ्रमर आकुल हो उठा। वह उस कली को प्रेम से पागल बनाकर नगर मे ले गया, और एक वेश्या के हाथो मे बेंच आया। आज जो वेश्यायें दिखाई पड़ रही हैं

दिलीप बाबू, वे इसी कली से मिलती-जुलती अनेक कलियाँ हैं। समाज ने स्वयं उन्हें वेश्या के कोठे तक पहुँचाया है दिलीप बाबू!

राधा अपनी बात समाप्त ही कर रही थी, कि धैर्य के साथ वेश्या की कहानी सुनता हुआ दिलीप क्रोधावेश में बोल उठा—समाज के ऐसे नारकीय युवकों की छाती फाड़ कर उनका रक्त पी लेना चाहिये राधा! आश्चर्य है, समाज इनके द्वारा विताड़ित युवतियों को तो कुत्सा की दृष्टि से देखता है, और उन्हें अपनी गोद में छिपाकर रखता है!

दिलीप कहते-कहते गंभीर हो उठा। मानों वह सचमुच ऐसे युवकों की छाती का रक्त निकालकर, पीने का ढंग सोच रहा हो! राधा, जो चुपचाप दिलीप की आकृति की ओर देख रही थी, कुछ सोचती हुई बोल उठी—ऐसे युवक का रक्तपान आप करेंगे दिलीप बाबू!

सच राधा!—दिलीप ने भावावेश में कहा—यदि ऐसे युवकों में एक को भी मैं देख पाऊँ तो उसी प्रकार उसकी छाती फाड़कर उसका रक्तपान करूँ, जिस प्रकार भीम ने दुर्योधन की छाती फाड़कर उसके रक्त का पान किया था।

तो ठहरिये दिलीप बाबू!—राधा संयत भाव से बोल उठी।

राधा कहने के साथ ही उठ पड़ी और बँगले के भीतर चली गई; दिलीप उत्सुकता और उत्कंठा से उसकी ओर देखने लगा। "यह राधा, क्यों उठकर बँगले के भीतर चली गई?

इसका मतलब क्या है ?" दिलीप के मन मे पृच्छा जागृत हो उठी। कुछ क्षणों के पश्चात् उसके मन की उत्सुकता और भी बढ़ गई, जब उसने देखा, कि राधा कागज के एक चौकोर दुबले-पतले बंडल को लिये हुये चली आ रही है। दिलीप राधा की ओर देखने लगा। राधा कुर्सी पर बैठकर संयत भाव से बंडल को खोलने लगी, और उसमें से कई चित्र निकाल कर टेबुल पर दिलीप के सामने रख दिये, और साथ ही बोल उठी—इन चित्रों को देखिये दिलीप बाबू !

दिलीप एक-एक चित्र को लेकर ध्यान से देखने लगा। किसी में साधारण प्रेम का भाव था, तो किसी मे प्रगाढ़ प्रणय का अभिनय ! दिलीप कुछ क्षणों तक उलट-पुलट कर चित्रों को देखता रहा, फिर बोल उठा—इन चित्रों से तुम्हारा क्या तात्पर्य है राधा ! यह युवक और यह युवती ! क्या तुम दोनों को जानती हो राधा ?

राधा की अँखड़ियाँ भर आईं ! ऐसा ज्ञात हुआ, मानों स्मृति की आँच से वेदना गलकर उसकी आँखों में उमड़ आई हो। राधा कुछ देर तक मौन रही ; मानों दिलीप की बात का उत्तर देने के लिये अपने को तैयार कर रही हो। फिर बोल उठी—यह युवती ! वही मेरी अभागिनी माँ थी दिलीप बाबू, जिसे आप अपनी पीठ पर लाद कर मरघट तक पहुँचा आये हैं।

और यह युवक राधा !—दिलीप ने साश्चर्य नेत्रों से राधा की ओर देखते हुये पूछा !

युवक को अब आप पहचानिये दिलीप बाबू!—राधा ने वेदना मिश्रित स्वर में कहा।

दिलीप ने ध्यान से युवक के चित्र की ओर देखा! कुछ ही क्षणों में उस चित्र के साथ ही-साथ उसके मन के भीतर कई मूर्ति-आकार बने, और मिट गये। फिर ध्यान से उस चित्र की ओर देखता हुआ दिलीप बोल उठा—यह युवक! क्या वह ''''क्या वह'''''' शैतान ''''''राक्षस!!

हाँ दिलीप बाबू!—राधा बोल उठी—यही! उसी ने उस कली को अपने प्रेम की शराब पिला कर वेश्या के कोठे तक पहुँचाया था। उसके प्रणय के स्वरूप कली के पराग-कोष में जो 'ढोढ़ी' पड़ गई थी दिलीप बाबू, वही आज आपके सामने''''''?

राधा अपनी बात समाप्त भी न कर पाई थी, कि बीच में ही दिलीप बोल उठा—बस करो राधा, बस करो!! समाज के बीभत्स पाप और उसके अत्याचार की कहानी अब उसके आगे मुझसे न सुनी जायगी राधा, न सुनी जायगी!!

दिलीप वेदना के पंख पर बैठकर विचारों के गगन पर उड़ने लगा। पर किसी ने कुछ ही देर में बोल कर उसके पंख काट दिये—तार है बाबू आपका!

दिलीप ने देखा, तारघर का चपरासी! दिलीप ने हस्ताक्षर करके तार ले लिया, और वह खोल कर उसे पढ़ने लगा। दिलीप पढ़ ही रहा था, कि राधा बीच में ही बोल उठी—किसका तार है?

पिता जी का है राधा !—दिलीप ने गंभीर भाव से कहा—उनकी तबीयत खराब है, और उन्होंने मुझे शीघ्र ही बुलाया है। (फिर कुछ सोचकर) मैं कल सबेरे की गाड़ी से जाऊँगा राधा ! दो-तीन दिन में लौट आऊँगा।

हाँ, हाँ अवश्य जाना चाहिये !—राधा बोल उठी।

पर दिलीप ने देखा, कि उसकी आकृति का रंग उड़ा हुआ है, और निश्वास कुछ दीर्घ बन गई है। दिलीप के भीतर से भी एक दीर्घ निश्वास निकल पड़ी। दोनों के दीर्घ निश्वासों का अर्थ ! कदाचित् आकाश में हँसते हुये चन्द्रदेव कुछ-कुछ समझ रहे थे !

[४]

संध्या के चार बज रहे थे। दिलीप उसी दिन घर से लौटकर आया था ; किन्तु आते ही खाना खाकर युनिवर्सिटी चला गया था। साढ़े तीन बजे जब वह युनिवर्सिटी से लौटकर आया, तो उसके आने के पूर्व ही राधा ने उसके चाय और नाश्ते का प्रबंध कर रक्खा था; दिलीप के आने पर दोनों नाश्ते पर बैठ गये। राधा जब से दिलीप के साथ रहने लगी है, दोनों साथ ही साथ नाश्ता और भोजन करते थे। राधा चाय बनाती हुई पूछ बैठी—पिता जी की अब कैसी तबीयत है दिलीप बाबू !

वे बीमार नहीं थे राधा !—दिलीप ने गंभीरता के साथ कहा—वास्तव में बात यह थी, कि वे मुझे बुलाना चाहते थे, और इसीलिये उन्होंने अपनी बीमारी का तार मुझे दे दिया।

(कुछ सोच कर) मेरा विवाह होने जा रहा है राधा! पिता जी ने मुझे इसीलिये बुलाया था।

दिलीप अपनी बात समाप्त कर राधा की ओर देखने लगा। राधा को ऐसा लगा, मानों उसके भीतर के तार-तार झनझना उठे हों! राधा अपने भीतर के तारों की झनझनाहट से कुछ देर के लिये स्तब्ध-सी हो उठी। फिर बोल पड़ी—बड़ा शुभ समाचार है दिलीप बाबू, बड़ा शुभ समाचार!

राधा ने कहा तो; पर स्वयं उसे ऐसा लगा, मानों उसकी वाणी के पंख कटे हुये हैं। दिलीप उसे लक्ष्य करता हुआ बोल उठा—पिता जी ने अपने मन से विवाह ठीक किया है राधा! विवाह महाशिवरात्रि के दिन नई पद्धति से भगवान शंकर के मन्दिर में होगा। राधा, तुम्हें उस दिन नृत्य करना पड़ेगा!

नहीं दिलीप बाबू!—राधा बोल उठी—मैं.......मैं.......मैं नाचूँगी दिलीप बाबू, आपके विवाह की प्रसन्नता में मैं अवश्य नाचूँगी!

दिलीप ने देखा, राधा के भीतर एक भयानक आँधी-सी चल रही है। उसने यह भी देखा, कि उसके हाथ का चाय का प्याला छूटते-छूटते बच गया; किन्तु दिलीप ने फिर कुछ न कहा! हाँ उसने राधा को एकान्तता अवश्य प्रदान कर दी, जिससे वह अपने भीतर उठे हुये द्वन्दों से स्वतंत्रतापूर्वक खेल सके; खेल-खेलकर वेदना के अंचल को और अधिक बढ़ा सके!

× × ×

महाशिवरात्रि का दिन था। दस बजे रहे थे। मन्दिर के द्वार पर बाहर शहनाई और भीतर घंटा बज रहा था। मन्दिर के आँगन में फर्श बिछा हुआ था; जिस पर कुछ स्त्री-पुरुष मंडलाकार बैठे हुये थे। बीच में एक कलश और कुछ मांगलिक वस्तुयें रक्खी हुई थीं। सहसा लोगों का ध्यान मन्दिर के द्वार की ओर जा पड़ा। लोगों ने देखा, राव महीप सिंह अपने पुत्र दिलीप और एक युवती के साथ चले आ रहे हैं। तीनों आँगन में पहुँचकर, फर्श पर उचित स्थान मे बैठ गये। कुछ देर तक सन्नाटा-सा छाया रहा, फिर दिलीप बोल उठा—राधा, उठो नृत्य आरंभ करो।

पाठक, दिलीप के साथ की वह युवती राधा थी! राधा विस्मय के साथ दिलीप को देखती हुई उठकर खड़ी हो गई, और अपने को नृत्य के भाव में लाने का प्रयत्न करने लगी। दिलीप पुनः बोल उठा—रुको राधा, आज तुम्हारे साथ मैं भी नृत्य करूँगा।

राधा ने साश्चर्य दिलीप की ओर देखा, और देखा, एकत्र स्त्री-पुरुषों ने। दिलीप अपने पिता का पैर छू कर राधा के दाहिनी ओर खड़ा हो गया, और मन्दिर के पुजारी की ओर देखते हुआ बोल उठा—पुजारी जी आइये, हम दोनों की गाँठ जोड़ दीजिये!

वेश्यापुत्री के साथ आप विवाह करेंगे दिलीप बाबू!—पुजारी के मुख से साश्चर्य निकल पड़ा।

कौन कहता है वेश्यापुत्री पुजारी जी!—दिलीप बोल उठा—

पुजारी जी ज़रा इन चित्रों को तो देखिये। (एक-एक चित्र दिखाकर) पहचानते हैं आप पुजारी जी, चित्र मे स्थित युवक और युवती को !

पुजारी ने एक बार उन चित्रों की ओर देखा, और फिर पुजारी का मस्तक अपने आप झुक गया। दिलीप कुछ देर तक मौन होकर पुजारी की ओर देखता रहा, फिर आवेग के साथ बोल उठा—पुजारी जी भगवान शंकर की मूर्ति की ओर देखिये ! देखिये, पुजारी जी, भगवान शंकर अपना तीसरा नेत्र खोल कर आपकी ओर देख रहे हैं। उस दिन आपने इसे मन्दिर से बाहर निकाल दिया था, किन्तु आज यदि आप अपने पाप को स्वीकार न करेंगे तो समझ रखिये आकाश फट पड़ेगा, पृथ्वी विदीर्ण हो जायगी और समुद्र अपनी सीमा छोड़कर धरातल की ओर दौड़ पड़ेगा ! आपके न कहने पर भी ये सब यही चिल्ला-चिल्लाकर कहेंगे, राधा आपकी पुत्री है, राधा आपकी !!

पुजारी ने भगवान शकर की मूर्ति की ओर देखा। पुजारी को ऐसा लगा, मानो सचमुच भगवान शंकर अपनी प्रलयकारिणी दृष्टि खोलकर पुजारी की ओर देख रहे हो। पुजारी के मस्तक पर उस शीतकाल मे भी पसीने की बूँदें झलक आईं, और उन्हें ऐसा लगा, जैसे उनके हृदय में भयानक आँधी-सी चल रही हो। पुजारी जी उसी आँधी के आवेग में उठे, और राधा तथा दिलीप का हाथ पकड़ कर, दोनों को भगवान शंकर की मूर्ति के पास ले

जाकर चीत्कार कर उठे—राधा मेरी पुत्री है, मेरी पुत्री है !! मैं इसका हाथ तुम्हारे हाथ में ......।

राधा का हाथ दिलीप के हाथ मे देते ही देते पुजारी के हृदय का तार टूट गया। पुजारी शंकर की मूर्ति के पास प्राण-शून्य होकर गिर पड़े। घंटा बजने लगा; और लोगों को ऐसा लगा मानो भगवान शंकर मुसकुरा रहे हो !

———

कर्त्तव्य का मूल्य

चैत्र की रात्रि थी। दस बज रहे थे। चाँदनी के आवरण से ढँके हुये मैदानों, उपवनों, और गाँवों के मध्य से तूफान एक्सप्रेस वायु की तरह पश्चिम की ओर भागा जा रहा था। ऐसा लगता था, मानों बाहर संपूर्ण प्रकृति के आँगन में क्षीर का समुद्र उमड़ा हुआ बह रहा हो, और वह एक्सप्रेस किसी भीषण जलजन्तु की तरह उसमें उसकी लहरों को काटता हुआ आगे बढ़ा जा रहा हो। सेकेण्ड क्लास के एक डिब्बे में, नीचे के बर्थ पर बैठा हुआ विनोद खिड़की से मुँह निकाल कर बड़ी तन्मयता से प्रकृति के आँगन में उमड़ कर बहते हुये क्षीर-समुद्र को देख रहा था। कभी जब एक्सप्रेस उपवनों के मध्य से होकर निकलता, तो आम्र-मंजरियों की सोंधी-सोंधी सुगंध वायु के साथ उसके भीतर घुसकर उसकी चेतना-तंतुओं में हिलोर उत्पन्न कर देती, और उसका मन कुछ गुनगुनाने के लिये तड़प उठता; किन्तु इसके साथ ही जब उसकी दृष्टि दूसरे बर्थ पर जा पड़ती; तब वह अधरों से फूट कर निकलने वाले संगीत-स्वरों को बरबस अपने अधरों में ही रोक लेता। जाने उसका गुनगुनाना दूसरे बर्थ पर

बैठे हुये मनुष्य को अच्छा लगे, या न लगे ; और फिर वह यदि कोई पुरुष होता तो कदाचित् उसे इतनी हिचक न होती; और वह अवश्य अपने भीतर आँधी की तरह दौड़ते हुये उल्लास को बिखेर करके ही साँस लेता; किन्तु वह थी एक युवती । विनोद बाहर खेलती हुई चाँदनी की ओर बड़ी तन्मयता से देख रहा था; किन्तु बीच-बीच मे वह अर्द्ध दृष्टि से युवती की ओर भी देख लिया करता था, मानों युवती की उपस्थिति उसके मन के मार्ग का बाधक बन रही हो, और वह उसकी ओर बार-बार देखकर उसके प्रति अपने मन का अ-सुख प्रगट कर रहा हो ।

विनोद इसी प्रकार कुछ देर तक कभी चाँदनी की ओर, और बीच-बीच मे कभी युवती की ओर देखता हुआ बैठा रहा; फिर वह लेटकर एक पुस्तक पढ़ने लगा, जिसके मुख पृष्ट पर स्वर्णाक्षरो मे अंकित था "तिरस्कृता !" विनोद जब खिड़की पर बैठा हुआ बाहर हँसती हुई चाँदनी की ओर देख रहा था, तब निश्चय युवती का ध्यान विशेप रूप से उसकी ओर न था। हाँ, बीच-बीच में जब कभी विनोद युवती की ओर देखता, तब युवती के भी नेत्र उसके नेत्रो मे मिल जाते थे; किन्तु जब विनोद लेटकर पुस्तक पढ़ने लगा, तब युवती का ध्यान रह-रह कर पुस्तक के मुख पृष्ठ पर जाने लगा । जैसे पुस्तक के मुख पृष्ठ पर युवती की आँखो के लिये कोई सुधा-निकेत हो, और वे उसी मे घुसने के लिये बार-बार प्रयत्न कर रही हों ।

युवती कुछ क्षणो तक कभी पुस्तक की ओर देखती; और

कभी उस ओर से दृष्टि हटाकर कुछ सोचने-सी लगती। जैसे पुस्तक के मुख पृष्ठ को देखते ही युवती के मन के भीतर एक हलचल-सी जाग उठी है, और अब उसी हलचल के कारण उसका मन किसी एक गति में स्थित न रहने पा रहा हो। युवती कुछ क्षणों तक सोचती रही; फिर वह उठकर ऊपर के बर्थ पर रक्खे हुये अपने बाक्स को खोलने का प्रयत्न करने लगी, और इसी प्रयत्न में बाक्स के ऊपर रक्खी हुई डोलची खड़खड़ा कर नीचे गिर पड़ी।

विनोद, जिसकी आँखें पुस्तक के पन्नों में उलझी हुई थीं, डोलची के गिरने के शब्द से उठकर उस ओर निहार उठा, और युवती डोलची उठाकर उसे पुनः ठीक स्थान पर रख कर विनोद की ओर देखती हुई बोल उठी—क्षमा कीजियेगा! आपके पढ़ने में मेरे कारण बाधा उपस्थित हुई। यह डोलची ......!

युवती अपनी बात पूरी न कर पाई थी, कि विनोद बोल उठा—नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। कुछ जान-बूझ कर तो आपने डोलची गिरा नहीं दी। फिर मेरा पढ़ना, ऐसा पढ़ना भी नहीं, कि आपकी डोलची गिर जाने से उसमें बाधा उपस्थित हो जाती!

विनोद स्वाभाविक ढंग से ही अपनी बात समाप्त कर पुनः बाहर हँसती हुई चाँदनी की ओर देखने लगा; और युवती पुनः अपने स्थान पर बैठकर बीच-बीच में विनोद की ओर देखती हुई विचारमग्न-सी हो उठी! कुछ क्षणों के पश्चात् पुनः अपने आप

फिर विनोद की ओर देखती हुई अपने आप बोल उठी—क्या इस पुस्तक के लेखक श्रीयुत् 'विनोद' आपका ही नाम है !

विनोद, जो युवती को तिरस्कृता की प्रति देकर खिड़की से बाहर की ओर देखने लगा था, युवती की ओर आकर्षित हो उठा। कुछ देर तक उसे देखता रहा। जैसे उसे देखता हुआ मन ही मन विचारों का कोई चित्र तैयार कर रहा हो, फिर युवती की ओर देखता हुआ बोल उठा—नहीं तो, क्यों ?

युवती ने आश्चर्य-चकित होकर विनोद की ओर देखा; और साथ ही वह कुछ सोचने भी लग गई। मानों विनोद के उत्तर ने उसे आश्चर्य-चकित कर दिया हो, और वह अब अपने को सतर्क-सी कर रही हो। कुछ क्षणों के पश्चात् उत्तरस्वरूप बोल उठी—कुछ नहीं, यों ही !

फिर भी !—विनोद बोल उठा—आपको यह भ्रम तो हुआ ही, कि मैं ही विनोद हूँ। क्या आप विनोद को जानती है ?

हाँ……नहीं,…बिलकुल नहीं—युवती ने अपने अधरो के पुटों में भीतर से निकले हुये शब्दों को दबाने का प्रयत्न करते हुये कहा—और जब आप 'तिरस्कृता' के लेखक विनोद नही हैं, तो फिर आप यह जानकर क्या करेंगे, कि मैं उन्हे जानती हूँ, या नहीं !

युवती अपनी बात समाप्त कर अर्द्ध-दृष्टि से विनोद की ओर देखकर दूसरी ओर देखने लगी। विनोद को उसकी उस अर्द्ध-दृष्टि से ऐसा ज्ञात हुआ, मानों उसने कौशल से विचारों का जो जाल तैयार किया था, युवती ने उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। विनोद

युवती की ओर देखता हुआ, कुछ क्षणों तक सोचता रहा। फिर बोल उठा—अच्छा, मान लीजिये मैं ही विनोद हूँ!

वाह!—युवती ने आँखों में हास्य भर कर विनोद की ओर देखते हुये कहा—यह कैसे हो सकता है? अभी तो आप विनोद होने से अस्वीकार कर चुके हैं! फिर मैं कैसे मान लूँ, कि आप ही विनोद हैं।

युवती की बात से विनोद कुछ अप्रतिहत-सा हो उठा, और उसे ऐसा लगा, जैसे युवती ने उसे अपनी बातों में जकड़ लिया हो! वह युवती की बातों से मुक्ति पाने के लिये मन ही मन उत्तर सोचने लगा: पर कुछ उत्तर न पाकर बिना सोचे ही बोल उठा—किन्तु जब आप विनोद को जानती ही नहीं, तो फिर मैं आप से चाहे यह कहूँ, कि मैं ही विनोद हूँ, या यह कहूँ, कि 'मैं विनोद नहीं हूँ' दोनों ही बातें आपके लिये बराबर हैं।

विनोद ने बात तो बिना सोचे-समझे कही थी, किन्तु जब वह बात पूरी कर चुका तो उसे ऐसा लगा, जैसे उसकी बात में कोई बहुत बड़ा कौशल हो। विनोद अपने इस अनायास के कौशल पर मन ही मन गर्व प्रगट करता हुआ युवती की ओर देखने लगा। साथ ही उसके मन में यह विचार भी उग आया, कि युवती अब उसकी बातों में आग्रस्त हो चुकी है और कदाचित् अब वह कुछ भी कह न सकेगी, किन्तु युवती जब विनोद की बात समाप्त होने के साथ ही साथ विनोद की ओर देखती हुई अपने अधरों के मध्य में मुसकुरा उठी, तब विनोद को ऐसा लगा,

जैसे उसने जो कुछ सोचा था, वह सब गलत था, और युवती उसकी उसी गलती पर व्यंग्य से मुसुकुरा उठी हो। विनोद युवती के उस व्यंग्य को स्पष्ट करने के उद्देश्य से अधरों पर किंचित् हास्य लाकर बोल उठा—क्यों, क्या बात है ?

कुछ नही !—युवती ने अधरो के साथ ही साथ आँखों में भी अनुभव का हास्य बिखेरते हुये उत्तर दिया।

कुछ तो अवश्य है !—विनोद ने युवती की आकृति पर अपनी दृष्टि जमाते हुये कहा।

धन्यवाद है, जो आप इतना जान गये, कि "कुछ तो अवश्य है !"—युवती बोल उठी—नही तो, आप ऐसे लेखकों से ऐसी साधारण भूल का हो जाना बहुत साधारण सी बात है।

मैं। ·······लेखक······ विनोद ने युवती की ओर देखते हुये कहा—क्या आप मुझे जानती है ? फिर·······फिर ·······।

हाँ, हाँ, कहिये, रुक क्यों गये ?—युवती विनोद की ओर देखते हुये बोल उठी—कदाचित् आप यह कहना चाहते हैं, कि मैंने अभी-अभी आप से कहा था, कि मै आपको जानते हुये भी नही जानती थी; किन्तु इस तिरस्कृता की प्रति से, आज मै जो नहीं जानती। सच मै आपको जानते हुये भी नहीं जानती थी, वह भी जान गई। यह देखिये !

युवती ने तिरस्कृता का एक पृष्ठ खोलकर अपने स्थान से ही विनोद को दिखाया। विनोद उस पृष्ठ को देखकर अवाक् हो उठा और कुछ बोलने का प्रयत्न करना ही चाहता था, कि उसके

बोलने के पूर्व ही युवती बोल उठी—कहिये, अब तो आप 'विनोद' होने से अस्वीकार नहीं कर सकते। 'तिरस्कृता' मे लगा हुआ यह चित्र और उसके नीचे लिखा हुआ यह 'विनोद'.....।

ओह, क्षमा कीजिये।—विनोद बोल उठा—मुझे स्मरण न था, कि इस पुस्तक में मेरा चित्र लगा है। सच मानिये, मैं अपने को किसी विशेष उद्देश्य से आप से छिपा न रहा था।

हाँ हाँ,—युवती बोल उठी—मैं यह कब कहती हूँ, कि आप मुझे धोखा देने या मेरे साथ छल का कोई अभिनय करने के लिये अपने को मुझसे छिपा रहे थे, फिर भी (कुछ सोच कर) आपको यह तो मानना ही पड़ेगा कि आपने मुझे तंग किया।

युवती ने अपनी बात समाप्त कर कनखियों से विनोद की ओर देखा। विनोद युवती की ओर स्वाभाविक दृष्टि से देखते हुआ तत्क्षण बोल उठा—मैं मानता हूँ, और इसके लिये मै आप से क्षमा चाहता हूँ।

केवल इतना ही पर्याप्त न होगा।—युवती ने विनोद की ओर देखते हुये कहा

फिर।...विनोद आश्चर्य-चकित दृष्टि से युवती की ओर देखता हुआ बोल उठा।

युवती अपनी बात समाप्त करके कुछ विचार-मग्न-सी हो उठी थी। मानो विनोद के सम्मुख रखने के लिये वह अपनी आकांक्षाओं का मन ही मन कोई चित्र तैयार करने लगी हो। विनोद जब अपनी बात समाप्त कर युवती की ओर देखने लगा;

तब युवती कुछ सोचती हुई विनोद की ओर देखकर बोल उठी—आपको मेरा आतिथ्य स्वीकार करना होगा।

आप का आतिथ्य !—विनोद ने युवती की ओर देखते हुये कहा।

हाँ विनोद बाबू !—युवती ने अपनी वाणी को प्रणय की आर्द्रता में भिगो कर कहा—वर्षों से आपकी रचनाये पढ़ती आ रही हूँ, और वर्षों से यह सोचती आ रही हूँ, यदि आप से परिचय हो जाता… …।

युवती कहते-कहते रुक गई, और विनोद आँखों में उत्सुकता भर कर उसकी ओर देखने लगा। युवती ने अपनी बात समाप्त करके सिर झुका लिया था; किन्तु जब कुछ देर के पश्चात् भी विनोद ने उत्तर न दिया तो युवती पुनः विनोद की ओर निहार उठी। विनोद नेत्रों में उत्कंठा भरकर उसी की ओर देख रहा था। युवती विनोद की ओर देखती हुई पुनः प्रणय-सिंचित स्वर में बोल उठी—आपने कुछ उत्तर नहीं दिया विनोद बाबू !

क्या उत्तर देने की आवश्यकता है ?—विनोद ने युवती की ओर देखते हुये गंभीर स्वर में कहा।

युवती पुनः अपना अधर खोलने जा रही थी, कि ट्रेन की गति सीटी के साथ मन्द हो गई। युवती और विनोद, दोनों खिड़की से बाहर की ओर झाँक उठे। युवती बाहर की ओर देखकर बोल उठी—जान पड़ता है, कानपुर स्टेशन आ गया !

विनोद ने कुछ उत्तर न दिया। उसने केवल युवती को ओर

दृष्टिपात भर किया। युवती ने भी विनोद की ओर देखा। दोनों ही मौन थे, पर दोनो ही की आँखें बोल रही थी, और दोनो ही के हृदय के चित्रों को निकाल कर रख रही थीं, एक-दूसरे के सामने। सहसा ट्रेन के दरवाजे के शब्द से दोनो की पलकें नीचे गिर गईं, और दोनों ही बाहर की ओर देख उठे।

ट्रेन प्लेट फार्म पर आकर रुक गई थी, और युवती के डिब्बे को खोल कर एक कुली सामान के साथ उसमे प्रवेश कर रहा था। युवती विनोद की ओर देखकर तत्क्षण बोल उठी—चलिये!

कुछ ही क्षणों मे दोनो का सामान कुली के सिर पर था। आगे युवती थी, और पीछे विनोद। यद्यपि दोनों मौन थे, किन्तु क्या कोई कह सकता है, कि दोनों का हृदय भी मौन था?

[२]

अट्ठारह-उन्नीस वर्ष का वय, गौर वर्ण, और सुगठित शरीर! देखने वाले कहते, हाँ, है कनक में सौन्दर्य; किन्तु इस शारीरिक सौन्दर्य मे कहीं अधिक सौन्दर्य कनक के हृदय मे था। यद्यपि कनक के हार्दिक सौन्दर्य का परिचय बहुत कम लोगो को होता था, किन्तु जिसे होता था, वह कंठ खोल कर उसकी प्रशंसा किये विना न रहता था! कनक की प्रशंसा करने के साथ ही वे यह भी कह उठते थे, कि कनक प्रकृति का अपवाद है। क्योंकि पुलिस इन्सपेक्टर की सन्तति कनक, और ऐसी कनक, जो दया, करुणा और सहानुभूति से अपने हृदय का अभिसार करती है!

कनक के इस हार्दिक सौन्दर्य की दूसरे लोग तो प्रशंसा करते

थे, किन्तु कभी कभी कनक के पिता ठा० रामगोपाल सिंह को इससे परेशानी हो जाया करती थी, और वे कनक को डाँट दिया करते थे। रामगोपाल सिंह पुलिस इन्सपेक्टर थे और वे चाहते थे, कि उन्हीं की भाँति उनकी सन्तान भी गरीबों को घुड़क कर उन पर शासन का प्रभुत्त्व जमाने वाली हो, पर कनक उनकी इस आकांक्षा का पूर्ण रूप से अपवाद थी। ठाकुर रामगोपाल सिंह कनक के हृदय के इस सौन्दर्य को धूमिल कर देने का भी प्रयत्न करते; किन्तु कनक के हृदय का यह सौन्दर्य दिनों दिन अधिक बढ़ता ही गया! हृदय के इसी सौन्दर्य के कारण साहित्य की ओर कनक का अधिक झुकाव था; और साहित्य में भी वह उन्हीं की रचनाओ का विशेप रूप से अध्ययन किया करती थी, जो गरीबों और पीड़ितों के हृदय में सौन्दर्य का दर्शन करते थे, और आँकते थे उनकी झोपड़ियों का अधिक से अधिक मूल्य। ऐसे लेखकों में विनोद कनक को सबसे अधिक प्रिय लगता। विनोद की जहाँ नई कृति निकलती, कनक उसे अवश्य पढ़ती थी। विनोद की रचनाओं के लिये कनक के हृदय और उसकी आँखों में भी व्याकुलता डोलती रहती थी। गरीबों, पीड़ितों और तिरस्कृतों का विनोद का अंकन! कनक पढ़ते ही विभोर हो जाती थी, और उमंग में उछल कर अपने को उस पर बलिहार जाती थी। विनोद की रचनाओं ने, धीरे-धीरे कनक के हृदय में एक आकांक्षा भी उत्पन्न कर दी, और कनक उसकी रचनाओं को पढ़-पढ़ कर कभी-कभी सोचने लगती कि यदि विनोद से परिचय हो

जाता ! कभी-कभी कनक के मन में यह भी आता, कि वह विनोद का पता जान कर उसे पत्र लिखे ! दो-तीन बार उसने पत्र लिखने का प्रयास किया भी; किन्तु पत्र मे वह क्या लिखे, यह उसकी समझ में ही न आया, और उसने पत्र का कागज फाड़ कर फेंक दिया। कनक पत्र तो न लिख सकती, किन्तु उसके हृदय की आकांक्षा बराबर बढ़ती ही गई, और उसे अब ऐसा लगने लगा, कि उसे अपने हृदय से विवश होकर विनोद को पत्र लिखना ही पड़ेगा।

लोग कहते है हृदय के तारों मे बड़ा आकर्षण होता है। लोग कहे, या न कहे, पर कनक के हृदय-तारो ने ही तो उस दिन रात मे कनक और विनोद को सेकण्ड क्लास के डिब्बे मे लाकर एकत्र कर दिया, और कनक विनोद का परिचय पाकर इस प्रकार प्रसन्न हो उठी, मानो उसके हृदय से प्रसन्नता के शत-शत सागर फूट पड़े हों। कनक के आग्रह से विनोद ने जब प्रथम बार उसका आतिथ्य स्वीकार किया, तब हो सकता है, कि विनोद ने उसकी गुरुता न समझी हो, किन्तु इस प्रथम बार के आतिथ्य के पश्चात् जब कनक और विनोद के पत्र आने-जाने लगे, तब दोनों को ऐसा अनुभव होने लगा, कि अब दोनो के हृदय मे एक-दूसरे के लिये 'कुछ' उत्पन्न हो गया है, और अब दोनो एक-दूसरे से विलग होकर सुखी नहीं रह सकते। विनोद प्रति मास कनक के घर जाता; और कनक बड़ी उत्कंठा से उसका स्वागत करती। कभी जब विनोद के पहुँचने मे देर होती तो कनक पत्र भेज कर

उस पर अप्रसन्नता प्रगट करती, और साथ ही उलाहना भी देती। विनोद जब कनक के घर जाता, तो बड़ी स्वतंत्रता के साथ उससे मिलता, उससे बातें करता, और उसके साथ घूमने के लिये भी जाता! विनोद और कनक का इस प्रकार मिलना-जुलना पहले तो कनक के पिता को अप्रिय न लगा; किन्तु जब यह स्वाधीनता कुछ अधिक सीमा का उलंघन कर गई; तब वे विनोद के पहुँचने पर भीतर ही भीतर कुढ़ने लगे। कभी-कभी वे अपने हृदय की कुढ़न को कनक के सम्मुख प्रगट भी कर दिया करते थे। कुढ़न तो वे प्रगट कर दिया करते थे; किन्तु फिर भी स्पष्ट रूप से कुछ कहते हुये हिचकते थे! क्योंकि कनक आधुनिक संस्कृति में विश्वास रखती थी, और फिर अब सरिता अपने बाँध को तोड़ कर पूर्ण वेग से प्रवाहित हो रही थी! आश्चर्य क्या, यदि उसकी प्रगति को रोकने का प्रयत्न किया जाय, तो वह अपने अंचल से निकलकर युगल तटों पर फैल जाय, और लहरों के थपेड़े चला-चला कर युद्ध करने लगे! ठाकुर रामगोपाल सिंह अपने मन के वेग को रोक कर बड़ी सतर्कता से उसकी गति को देख रहे थे, और साथ ही चुपचाप प्रयत्न कर रहे थे उसकी गति को अवरुद्ध करने का!

कनक भी इस ओर से कुछ उदासीन नहीं थी। वह विनोद के साथ जीवन के मार्ग पर आगे बढ़ तो रही थी; किन्तु वह जानती थी, कि उसके पिता के मन में क्या है? ठाकुर रामगोपाल सिंह जब उस पर कुढ़ते या अपनी आँखों में असन्तोष भर कर

उसकी तथा विनोद की ओर देखते हुये भी मौन रहते; तब उसके हृदय में एक सन्देह-सा जागृत हो जाता, और वह अपने पिता के मन की एक-एक गति को बड़ी सतर्कता से समझने का प्रयत्नकरने लगती; किन्तु फिर भी उसका विनोद के साथ जीवन के मार्ग पर अग्रसर होना न रुकता। मानों वह एक ऐसी प्रचंड आँधी हो, जो अपने मार्ग पर अनेक सुदृढ़ अवरोधों को देखते हुये भी आगे बढ़ी जा रही हो।

चैत्र के दिन थे; और दोपहर का समय। ठाकुर रामगोपाल सिंह दोपहर का खाना खाकर अपने कमरे में पलँग पर लेटे हुये थे। वे पलँग पर लेटे-लेटे कुछ सोच रहे थे। क्या सोच रहे थे; कौन जाने, पर इधर कई दिनों से वे कनक के विवाह की बातचीत को लेकर अधिक व्यस्त थे। हो सकता है, कि कनक का विवाह ही उनके हृदय में आँधी बन कर डोल रहा हो। आश्चर्य नहीं, विचारों के पथ पर दौड़ते-दौड़ते रामगोपाल सिंह की आँखें झँपक जातीं; किन्तु बीच ही में रामगोपाल की पत्नी ने कमरे में पहुँच कर उनकी गिरती हुई उनींदी पलकों को रोक लिया; और वे बोल उठीं—क्या हुआ कनक के विवाह के संबंध में ?

एक प्रकार से सब ठीक हो गया है।—रामगोपाल ने अपनी पत्नी की ओर देखते हुये कहा।

रामगोपाल अपनी बात समाप्त कर कुछ विचार-मग्न से हो उठे। उनकी पत्नी ने बात सुनी तो, किन्तु उसने कुछ उत्तर न दिया। मानों रामगोपाल की बात सुनकर वह भी विचारों में

उलझ गई हो। रामगोपाल कुछ क्षणों तक मौन रहे; फिर अपनी पत्नी की ओर देखते हुये अपने आप बोल उठे—मैं लड़के को बुला आया हूँ। वह कल्ह दोपहर में कनक को देखने आयेगा।

इतनी जल्दी!—रामगोपाल की पत्नी रामगोपाल की ओर आश्चर्य-चकित दृष्टि से देखती हुई बोल उठी।

हाँ—राम गोपाल ने गंभीरता के पंख पर उड़ते-उड़ते कहा—कनक का विवाह अब हो ही जाना चाहिये; और फिर संयोग से लड़का मिल गया है। इसमें अब देर करना ठीक नहीं। जाने फिर ऐसा लड़का मिले या न मिले!

किन्तु!—रामगोपाल की पत्नी विचारों में ही डूबी-डूबी बोल उठीं—कनक से भी पूछ लिया है या नहीं! वह तो विवाह करने के लिये तैयार ही नहीं होती। विवाह की चर्चा चलाते ही ऐसी कुढ़ जाती है, कि कुछ पूछिये नहीं।

अपनी पत्नी की इस बात को सुनकर रामगोपाल ने आश्चर्य चकित दृष्टि से उसकी ओर देखा; और देखते ही देखते वे बोल उठे—कनक से पूछने की क्या आवश्यकता है? क्या सभी लड़कियो के पिता विवाह के सम्बन्ध में लड़कियों से पूछा करते है? विवाह के सम्बन्ध मे माता-पिता जो निश्चय करते हैं, वही अब तक लड़कियों को मान्य होता आया है।

पर!—रामगोपाल की पत्नी बोल उठीं—दूसरी लड़कियों और कनक में बड़ा अन्तर है। यदि दूसरी लड़कियों की ही श्रेणी

में कनक को रखना था तो फिर उसे इतनी स्वाधीनता क्यों दी, और फिर उसे इतना पढ़ाया क्यों ?

तो क्या—रामगोपाल बोल उठे—उसे स्वाधीनता और शिक्षा इसलिये दी, कि वह उच्छृंखल बनकर माता-पिता के कथन को न माने। शिक्षा और स्वाधीनता तो इसलिये दी, कि उसके हृदय में ज्ञान का आलोक उत्पन्न हो, और समाज के नियमों के भीतर रहकर 'क्या करना चाहिये, और क्या न करना चाहिये' इसे वह समझे, और समझ कर अपने जीवन का निर्माण करे।

शिक्षा और स्वाधीनता का यदि इतना ही उद्देश्य है—रामगोपाल की पत्नी ने कहा—तो मेरी समझ में माता-पिता को चाहिये, कि वे लड़कियों को शिक्षा से विलग ही रक्खें। क्योंकि शिक्षा से जब उनके हृदय में ज्ञान का आलोक उत्पन्न होगा, तब हो सकता है, कि वे समाज के नियमों और विधानों में औचित्य तथा अनौचित्य का निर्णय करने लगें; और माँ-बाप को उनका वह निर्णय उच्छृंखल प्रतीत हो।

रामगोपाल की पत्नी बात कह तो गई; किन्तु जब कह गई, तब उन्हें ऐसा लगा, कि वह जो कह गई, उसे वह न कहना चाहिये था। रामगोपाल ने विस्मय से चकित होकर अपनी पत्नी की ओर देखा; और साथ ही वे खीझ के स्वर में बोल उठे—तो क्या राय है तुम्हारी।

रामगोपाल की पत्नी ने रामगोपाल की ओर देखा। स्पष्टतः रामगोपाल की आँखों में खीझ मिश्रित तीव्रता नाच रही थी।

कह नहीं सकते उम तीव्रता से, या अपने पत्नी-कर्त्तव्यों से भय-भीत होकर रामगोपाल की पत्नी का उठा हुआ मन कुछ दब-सा गया, और वह अपने स्वर में नम्रता लिपेट कर बोल उठी—मेरी क्या राय है ? होगा तो वही, जो आप चाहेंगे। मेरे कहने का तात्पर्य तो केवल इतना ही है कि कनक से भी पूछ लेते। पढ़ी-लिखी लड़की है, कौन जाने क्या चाहती है ? मैं यह नहीं कहती कि यदि वह विवाह के संबंध में आपके आदेश का उलंघन कर दे, तो कुछ अच्छा करेगी; किन्तु यह भी तो अच्छा नहीं लगता, कि उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह किसी के साथ कर दिया जाय ! सोचिये तो उस सयय की स्थिति ! क्या कनक, या वह, जिसके साथ कनक का विवाह होगा, दोनों में से एक भी सुख का जीवन बिता सकेगा !

रामगोपाल की पत्नी ने अपनी बात समाप्त करके स्नेह से रामगोपाल की ओर देखा। मानों वह अतंक और तर्क के अस्त्र के कुंठित हो जाने पर अब उनके हृदय पर आधिपत्य स्थापित करने के लिये स्नेह का अंचल ग्रहण कर रही हो ! रामगोपाल ने अपनी स्त्री की ओर देखा; और इसमें सन्देह नहीं, कि उनका हृदय कुछ स्निग्ध भी हो उठा; किन्तु जैसे तीव्र हवा छोटे-छोटे बादल-खंडों को अधिक शीघ्र आकाश से उड़ा दिया करती है, उसी प्रकार रामगोपाल के हृदय की यह स्निग्धता भी त्वरित ही अदृश्य हो गई, और वे कुछ सोचते हुये बोल उठे—तुम क्या जानो इस बात को। मैं जानता हूँ, कनक क्यों विवाह करने से

अस्वीकार करती है ! आह ' 'मेरी भूल ही आज मुझे डँस रही है !

रामगोपाल अपनी बात समाप्त कर अधिक चिन्तित-से हो उठे, और ऐसा लगा, जैसे दुःख की एक भयानक आँधी ने उठकर उनके हृदय को आन्दोलित कर दिया हो। रामगोपाल की पत्नी ने भी रामगोपाल के हृदय में उठी हुई इस भयानक आँधी का कुछ अनुभव किया, और वह स्वयं भी उस आँधी की प्रगति को देखकर कुछ सहम-सी गई ! रामगोपाल कुछ देर तक मन ही मन उस आँधी में उड़ते रहे, फिर अपने ही आप आवेग के स्वर में बोल उठे—पर मैं ऐसा कभी न होने दूँगा ! वह महा कंगाल विनोद ! मैं नहीं जानता था, कि वह कनक के जीवन में एक विष घोल देगा।

रामगोपाल बात कह तो गये; किन्तु इस बात से उनके हृदय का कोना-कोना जैसे विकम्पन-सा हो उठा हो : और वे कुछ देर के लिये इसी विकम्पन में अपने को खो बैठे हों। हो सकता है, रामगोपाल उस विकम्पन में कुछ अधिक देर तक पड़े रहते, पर इसी समय उनकी पत्नी उन्हें सजग करती हुई बोल उठी— आपको यह बात कैसे मालूम हुई !

कैसे मालूम हुई—रामगोपाल अपनी पत्नी की ओर देखते हुये तीव्र स्वर में बोल उठे—आखिर मैं कोई बच्चा तो हूँ नहीं ! रोज ही, मैं न जाने कितने लोगों के पेट की बात निकालता हूँ। मैंने स्वयं कनक और विनोद की चिट्ठियाँ देखी हैं, किन्तु अब

सोस, देखी उस समय जब नदी बाँध को तोड़ चुकी थी । फिर भी……(कुछ सोच कर) मैं ऐसा कभी न होने दूँगा । अब जब कभी वह नारकीय इस द्वार पर दिखाई पड़ेगा, तो मैं उसका स्वागत झाड़ुओं से करूँगा !

रामगोपाल अभी अपनी बात समाप्त ही कर पाये थे, कि बगल के कक्ष से द्वार तक आकर कोई बोल उठा—मुझे कहने का आपको अधिकार है पिता जी; किन्तु आप एक ऐसे व्यक्ति को कुछ भी नहीं कह सकते, जिसका आप से कोई संबंध नहीं ।

रामगोपाल ने बगल के कक्ष की ओर देखा । कनक कक्ष के द्वार पर आकर कपाट से सटकर खड़ी थी । यद्यपि उसका सिर नत था, किन्तु उसकी आकृति जो आरक्त हो उठी थी, वह स्पष्टतः इस बात की सूचना दे रही थी, कि रामगोपाल ने अभी अभी जो बात कही, उससे उसका हृदय अधिक क्षुब्ध हो उठा है, और वह इस क्षुब्धता में मर्यादा की सीमा का उलंघन कर दे, तो आश्चर्य की बात नहीं । रामगोपाल कनक की ओर देखकर आश्चर्य-चकित हो उठे; और साथ ही उनके हृदय मे विचारों का एक बवण्डर भी दौड़ उठा ! रामगोपाल विचारों के उस बवण्डर में उड़ते हुये यह अनुभव करने लगे—"मानो वे विनोद को कटु शब्द कह रहे हैं, और कनक कर रही है उनका प्रतिवाद । विनोद का पक्ष ग्रहण करने में कनक चारो ओर से निश्चिन्त है । माता, पिता, नियम, मर्यादा सब पर केवल विनोद है ।" रामगोपाल कनक की ओर देखकर, सिर नत कर सोचने लगे । कुछ देर तक सोचते रहे; फिर

कनक की ओर बिना देखे हुये ही बोल उठे—हाँ, कनक तुम ठीक कह रही हो! मुझे सचमुच उस व्यक्ति के संबंध में कुछ न कहना चाहिये, जिससे मेरा कोई सरोकार नहीं; किन्तु कनक ……।

रामगोपाल बिना पूरी बात कहे हुये ही चुप हो गये, और जैसे कुछ सोचने-से लगे। कनक ने सिर ऊपर उठा कर रामगोपाल की ओर देखा; और साथ ही उसके अधर भी खुल पड़े—किन्तु क्या पिता जी!

कुछ नहीं कनक!—रामगोपाल ने विचारों के ही प्रवाह में बहते-बहते कहा—जाओ अपना काम करो। (फिर कुछ सोच कर) हाँ, देखो कनक, कल्ह तुम्हें देखने के लिये एक साहब आयेंगे। उनके साथ सुजनता का बरताव करना, भला!

रामगोपाल ने अपनी बात समाप्त कर कौशल से कनक की ओर देखा। कनक के हृदय में एक आँधी-सी चल रही थी, और जब उसने रामगोपाल की अन्तिम बात सुनी, तब उसके हृदय में दौड़ती हुई आँधी का वेग और भी अधिक उग्र हो उठा! साँसें तीव्र हो उठीं, और नथने रह-रह फड़कने लगे। कनक कुछ देर तक उस आँधी से मन ही मन खेलती रही; फिर आवेग-मिश्रित दृढ़ता के स्वर में बोल उठी—किन्तु पिता जी …… ।

बात निकलते-निकलते जैसे कनक के अधरों में ही चिपक कर रह गई हो। रामगोपाल ने कनक की ओर देखा। कनक अपने हृदय में प्रचण्ड आँधी का वेग छिपाये हुये चुपचाप खड़ी थी।

रामगोपाल कनक की ओर देखते हुये बोल उठे—क्या है कनक ! कहो, कहो, चुप क्यों हो गई ?

कनक ने रामगोपाल की ओर देखा। मानों वह मुख से कुछ न कह कर अपनी आँखों की मौन भाषा में ही अपने हृदय की संपूर्ण कथा को अंकित करने का प्रयत्न कर रही हो ; किन्तु जैसे बाँध को न तोड़ सकने के पश्चात् सरिता की लहरें विवश होकर दाएँ-बाएँ फैल जाती हैं, उसी प्रकार रामगोपाल की आँखों में नाचती हुई दृढ़ भावना को देखकर कनक के हृदय की आँधी विवश होकर पानी बन गई, और कनक आर्द्र कंठ से बोल उठी—कुछ नहीं, पिता जी, कुछ नहीं !

कनक का कंठ इतना आर्द्र हो गया था, कि रामगोपाल और उनकी पत्नी को, उसकी ओर ध्यान न होने पर भी, स्पष्टतः उसका अनुभव हुआ, और दोनों एक साथ ही कक्ष के द्वार की ओर निहार उठे; किन्तु कनक इसके पूर्व ही द्वार से हटकर कमरे के भीतर जा चुकी थी। रामगोपाल की पत्नी ने रामगोपाल की ओर देखा, और देखते ही देखते कहा—देखा आपने !

तुम देखो !—राम गोपाल विचारों की लहरियों पर दौड़ते हुये बोल उठे—मै तो इसके पूर्व ही देख चुका हूँ। किन्तु (चारपाई से उठकर कपड़े पहनते हुयें) मै इस संबंध में कनक की बात न मानूँगा।

रामगोपाल कपड़े पहन कर कमरे से बाहर निकल गये, और उनकी पत्नी कमरे में खड़ी-खड़ी देर तक विचारों के झूले

पर भूलती रही ! कौन कह सकता है, कि विचारों का भूला भूलते हुये उसके हृदय में क्या-क्या उठ रहा था !

[३]

"सरकारी कोष पर डाका, और उसके रक्षकों की हत्या !" पुलिस इन्सपेक्टर रामगोपाल सिंह कई दिनों से इसी बात को लेकर अधिक व्यस्त थे। यद्यपि घटना-स्थल पर कोई बन्दी न हो सका था; फिर भी गुप्तचरों की सहायता से उन्होंने इस डाके को एक नया रंग दिया, और कई युवकों को बन्दी बना कर तथा उन में दो-एक को इकबाली गवाह बना कर अभियोग का एक ऐसा स्वरूप गढ़ दिया, कि उसे देखकर बड़े-बड़े कानून-विशारद भी यह कहने लगे कि अवश्य इन युवकों में से कुछ को फाँसी हुये बिना न रहेगी !

अपराधियों की सूची जब समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुई, तब लोग देख-देख कर दंग हो गये ! सूची में एक-एक से अच्छे भले घरों के पढ़े-लिखे युवक थे। कुछ गिरफ्तार होकर जेल की कोठरियों में सड़ने लगे थे, और कुछ के बन्दी होने के आदेश प्रचारित किये गये थे। पुलिस बड़ी सरगर्मी से दौड़-धूप कर रही थी। जो गिरफ्तार नहीं हुये थे, उन्हें बन्दी बनाने के लिये, और जो बन्दी हो गये थे, उन्हें फाँसी या कालेपानी, जो कुछ भी हो सके, उपहार देने के लिये ! मानों फाँसी या कालेपानी का उपहार देना ही पुलिस अपने जीवन का महा धर्म समझती हो !

गर्मी के दिन थे, और दोपहर का समय। ठाकुर रामगोपाल

सिंह अभी आफिस से लौटकर अपने कमरे मे पलँग पर लेटे ही थे, कि कोई कमरे में प्रवेश करके बोल उठा—पिता जी !

ठाकुर रामगोपाल सिंह ने आगन्तुक की ओर देखा ! वह कनक थी। उसके एक हाथ में एक समाचार-पत्र और दूसरे हाथ मे कुछ और वस्तु थी, जिसे रामगोपाल सिंह पहले देख न सके। कनक दृढ़ थी, बहुत ही दृढ़ रामगोपाल कनक को रोज ही देखते थे; पर ऐसी संयत और गंभीर कनक को उन्होंने इसके पूर्व कभी न देखा था ! रामगोपाल कनक को देखकर अधिक विस्मित हो उठे, और विस्मय के ही स्वर में बोल पड़े—क्या है कनक ?

इस समाचार-पत्र में यह क्या छपा है पिता जी !—कनक बोल उठी—क्या यह सच है, कि इन्हीं युवकों ने सरकारी कोष को लूट कर उसके रक्षकों की हत्या की है ?

हाँ कनक, यह सच है !—रामगोपाल सिंह ने कनक की ओर देखते हुये उत्तर दिया।

इन युवकों को क्या दंड मिल सकता है पिता जी !—कनक ने अधिक गंभीर होकर पूछा।

अभियोग पूर्णरूप से प्रमाणित है कनक !—रामगोपाल सिह ने कनक की ओर देखते हुये कहा—इनमें से कुछ को फाँसी, और कुछ को कालेपानी का दंड मिलेगा।

रामगोपाल की बात को सुनकर कनक कुछ देर तक खड़ी-खड़ी सोचती रही; फिर अपना दूसरा हाथ आगे बढ़ा कर

बोल उठी—यह लीजिये पिस्तौल पिता जी ! इससे मेरी भी हत्या कर दीजिये !

रामगोपाल ने अधिक विस्मित दृष्टि से कनक की ओर देखा। सचमुच उसके हाथ में पिस्तौल थी। रामगोपाल कुछ क्षणों के लिये किंकर्त्तव्य-विमूढ़ से हो गये; और अपनी उसी परिस्थिति मे बोल उठे—कनक !

हाँ पिता जी ! मैं ठीक कह रही हूँ !—कनक दृढ़ता के साथ बोल उठी—यह पिस्तौल लीजिये, और मेरी हत्या कर डालिये ! आप न गोली चलायेंगे पिता जी, तो मैं अपने हाथों से गोली मार लूँगी। आपने जो भयानक पाप किया है पिता जी, उसका केवल एक यही प्रायश्चित्त हो सकता है।

मैंने पाप !—रामगोपाल सिह आश्चर्य-चकित दृष्टि से कनक की ओर देखते-देखते आश्चर्य ही के स्वर मे बोल उठे।

हाँ पिता जी !—कनक बोल उठी—अपने हृदय पर हाथ रख कर उत्तर दीजिये। क्या विनोद ने सचमुच सरकारी कोप लूटा है ? क्या उन्होंने सचमुच कोप के रक्षकों की हत्या की है ? क्या यह सच नही है पिता जी, कि आपने विनोद के साथ षडयंत्र करके उन्हें इसलिये अपराधियो में सम्मिलित किया है, कि मेरे और उनके जीवन का मार्ग अलग हो जाय; किन्तु कदाचित् आप यह नही जानते पिता जी, कि प्राण और आत्मा आपस में जुटने के पश्चात् फिर कभी विलग नहीं हुआ करते। मैं नहीं कहती पिता जी, कि आप उन्हे अपराधियों की सूची से अलग कर दें;

किन्तु मैं यह अवश्य चाहती हूँ पिता जी, कि या तो आप मेरा भी नाम अपराधियों की सूची में लिख दें, या इस पिस्तौल की गोली से मेरे हृदय को चीर कर दो टूक कर दें !

कनक अपनी बात समाप्त कर रामगोपाल की ओर देखने लगी ! मानों वह उनकी ओर देखकर उनसे अपनी बातों का उत्तर माँग रही हो। रामगोपाल ने आँखों में गंभीरता भर कर कनक की ओर देखा ! कनक पुनः बोल उठी—हाँ, पिता जी, मैं सच कहती हूँ ! आपके पाप का केवल एक यही प्रायश्चित्त हो सकता है ! लीजिये, यह पिस्तौल लीजिये, आपके जो हाथ मेरे भाल का सेन्दूर पोंछने के लिये आगे बढ़े हैं पिता जी, वही आगे बढ़कर इस पिस्तौल को भी ले लें !

कनक ने पिस्तौल रामगोपाल की ओर बढ़ा दिया ! रामगोपाल पर्वत की भाँति अचल थे ! केवल वे कभी-कभी कनखियों से कनक की ओर देख भर लिया करते थे ! रामगोपाल को मौन देखकर कनक पुनः बोल उठी—आखिर आपने उन्हें क्यों फँसाया पिता जी ? क्या अपराध था उनका ? वे मनुष्य हैं—मनुष्यों मे उज्वल विभूति हैं। पढ़ी हैं आपने उनकी रचनाएँ पिता जी ! उनकी एक-एक रचना मे मानवता का कंठ मिला हुआ है। मैं मानती हूँ पिता जी, कि मैं आपकी इच्छा के विरुद्ध जा रही थी; किन्तु क्या यह सच नहीं है, कि एक ऐसे मार्ग पर जा रही थी, जिससे आपके जीवन पर कभी कलंक न लगता ! फिर आपने अंधकार की काली चादर मुझ पर क्यों डाल दी पिता जी, क्यों ?

बात समाप्त करते-करते कनक की आँखों में आँसू छलक आये। रामगोपाल ने आँसुओं से भरी हुई कनक की आँखों को देखा। वे कनक की ओर देखकर कुछ देर तक सोचते रहे; फिर अप्रत्याशित गति से उन्होंने कनक के हाथ से पिस्तौल लेकर अपनी छाती की ओर धायँ-धायँ करके चला दी।

पिता जी!—कनक चीख कर रामगोपाल की छाती पर गिर पड़ी।

पिस्तौल की गोली भीतर तक जा चुकी थी, और साँसें टूट रही थीं। रामगोपाल टूटती हुई साँसों का सहारा लेकर बोल उठे—मैंने जो कुछ किया है, उसका यही प्रायश्चित्त है बेटी! तुम और विनोद......ईश्वर तुम्हारी कामना....

रामगोपाल के अधर बन्द हो गये; और कनक! उसे ऐसा लगा; मानों उसके पिता ने अपने कर्त्तव्य, और स्नेह का जो मूल्य दान किया, उसके समक्ष उसका मूल्य कुछ नहीं है, कुछ नहीं!!

पश्चात्ताप

दोपहर का समय था। सजी हुई लता अपने ऊपर के कमरे में डोल रही थी। शरीर से नहीं, मन से भी। कभी वह दर्पण के सामने खड़ी होकर अपने मुखड़े की ओर निहारती, और कभी सामने आले पर रक्खी हुई एक तस्वीर की ओर। लता के मन को दोनों में पर्याप्त अन्तर ज्ञात होता। लता जब दर्पण में अपने मुख को देखकर उस तस्वीर की ओर देखती तो न जाने क्यों उसके मुख की सुन्दरता स्वयं उसी को तुच्छ लगने लगती। लता के हृदय में रह-रहकर धड़कन उत्पन्न हो रही थी—'कौन जाने, ये भी स्वीकार न करें। आदमी तो सरल और सज्जन मालूम होते हैं। जब देख रहे थे, तब आँखों मे स्नेह और सहानुभूति भी तो थी!'

सहसा लता का डोलता हुआ मन रुक गया। उसने पीछे फिर कर देखा, ओज बड़ी उत्सुकता से कमरे की ड्योढ़ी लाँघ रहा था। वह लता का छोटा भाई था। उसकी उत्सुकता को देख कर

लता के मन मे कुछ-कुछ आशा बँधी। उसने स्वयं ही लपक कर ओज को अपने घुटनों के बीच छिपा लिया। वह ओज की ठोड़ी पकड़ कर उससे कुछ पूछना चाहती थी, पर ओज स्वयं ही बोल उठा, 'दीदी ! अब तू मुझे छोड़ कर कही न जा सकेगी ! जो आये थे, उन्होंने कहा है, कि वे तुम्हारे साथ विवाह न करेंगे। बड़ा अच्छा हुआ दीदी, न !'

लता के मन पर एक तुपार-सा गिर पड़ा। उसका मन मथ उठा। आँखें बरसने के लिये उनावली हो पड़ी ; पर ओज ! वह बडे ध्यान से लता की ओर उत्तर के लिये देख रहा था। किसी प्रकार अपने मन को रोक कर लता को कहना ही पड़ा, 'हाँ, ओज बड़ा अच्छा हुआ !'

ओज भाग कर वाहर निकल गया। लता चारपाई पर गिर पड़ी। तकिये मे मुँह छिपा-छिपा कर रोने लगी। कुछ देर के पश्चात् न जाने क्या सोचकर उठी, और आइने के सामने जाकर खड़ी हो गई। भाल पर सिन्दूर-बिन्दु चमक रहा था। आँखो मे लगी हुई काजल की हलकी रेखा आँसुओ से धुल चुकी थी। लता ने शीघ्र एक कपड़े के टुकड़े को उठा कर सिन्दूर-बिन्दु पोंछ दिया। सँवारे हुये वाल विगाड़ डाले, गहने उतार कर रख दिये, और साड़ी छोड़ कर एक दूसरी धोती पहन ली। अब वह सच-मुच असली लता थी, बनावट के नाम पर अब उसके शरीर पर कुछ न था। वह एक वार पुन. अपने उमड़ते हुये मन को लेकर दर्पण के सामने जाकर खडी हो गई। उसका रूप

उजड़ा हुआ था, चेहरा उदास था। लता ने फिर साड़ी और गहनों की ओर देखा। उसके मन का बाँध टूट गया और वह फिर चारपाई पर गिर कर सिसक कर रोने लगी। बड़ी देर तक रोती रही। रोते-रोते आँखें तक आरक्त बन गई थीं।

चार बज रहे थे। लता अपनी आँखों के कोप को लुटा कर गंभीर मुख-मुद्रा से चारपाई पर बैठी थी। अब उसके मन में दुख न था, वेदना न थी। दुख और वेदना की अन्तिम सीमा को वह पार कर चुकी थी। अब वह एक ऐसे स्थान पर खड़ी थी, जहाँ उसका मन साहस, और जागृति का अनुभव कर रहा था। वह सोच रही थी, अपने रूप पर और अपने पिता के कष्टों पर। उसके पिता उसके विवाह के लिये किस भाँति कष्ट उठा रहे थे, किस भाँति दर-दर अपमानित हो रहे थे, और उसके शरीर का काला रंग किस भाँति उसके विवाह में बाधक हो रहा था। लता सोचते-सोचते विद्रोहिनी-सी हो उठी। उसने निश्चय किया, अब वह विवाह न करेगी!

किन्तु एक बार पुनः लता के मन की दृढ़ता आँसुओं के रूप में फूट पड़ी। उसकी माँ ने जब उसके कमरे में प्रवेश किया, तब वह निरुपाय और असहाय की भाँति दौड़ कर उसके शरीर से लिपट गई। उसकी माँ ने लता का मुख जब ऊपर उठाया, तब उसका मुख भीगा हुआ था। माँ के नेत्रों से भी आँसू छलक पड़े · पर दोनों के आँसुओं में अन्तर था, बहुत अन्तर!

[२]

दस वर्ष बाद। रात के बारह बज रहे थे। चारों ओर सन्नाटा था। मनुष्य और पक्षी, सभी अपने-अपने घरों में सुख से सो रहे थे। पर कमल की कार जोरों से शहर की ओर भागी जा रही थी। कार की पहियों से भी अधिक सरसराहट कमल के मन में थी। वह रह-रह कर आकुल हो रहा था। यदि उसकी चलती तो वह एक ही छलाँग मे अपने इष्ट स्थान मे पहुँच जाता; पर विवश! रह-रहकर ड्राइवर को डाँट रहा था, 'और तेजी के साथ चलो!'

रोको!—एक बँगले के सामने पहुंच कर कमल ने कहा।

कार रुक गयी। कमल उससे कूद कर बँगले मे जा पहुँचा। बिजली की बत्ती जल रही थी। वह घबड़ाया हुआ इधर-उधर देखने लगा: पर कोई दिखाई न पड़ा। सहसा उसकी दृष्टि सूचना-घंटी पर पड़ी। उसके समीप जाकर स्विच दबा दी।

क्या है?—कुछ देर के पश्चात् एक स्त्री ने बाहर निकल कर कहा।

डाक्टर साहब!—घबड़ाये हुये स्वर में कमल बोल उठा—मेरी स्त्री बीमार है। बिलकुल मरने के निकट। दाई कह रही है. बच्चा पेट मे आड़ा पड़ गया है। दया कीजिये!

पर!—उस स्त्री ने उत्तर दिया—डाक्टर साहब तो सो रही हैं। उनकी तबीयत भी खराब है। शायद ही इस समय वे कहीं जा सकें।

नहीं, नहीं, ऐसा न कहिये !—कमल ने आकुल होकर कहा—उन्हें सूचना दीजिये। वे जो फीस लेंगी, मैं दूँगा।

स्त्री पीछे फिर कर कमरे में जाने ही वाली थी, कि उसने देखा, लेडी डाक्टर साहब। घंटी की आवाज़ से लेडी डाक्टर की भी नींद खुल गई थी। पास ही उनका कमरा था। कमल की दीनता-भरी वाणी ने उन्हें आकुल बना दिया। वे यह स्वयं कहती हुई बाहर निकल आईं 'घबड़ाइये नहीं। धीरज से काम लीजिये। मैं अभी चल रही हूँ।'

कुछ देर के पश्चात् जब कमल अपने घर लौटकर आया, तब उसके साथ लेडी डाक्टर और एक नर्स थी। कमल की स्त्री अरुणा रह-रह कर पीड़ा से कराह रही थी। लेडी डाक्टर ने उसे सान्त्वना दी, धीरज बँधाया। कुछ देर तक गर्भ की परीक्षा करने के पश्चात् लेडी डाक्टर ने कहा, बाबू जी अफसोस है, बच्चा पेट में मर गया है।

तो क्या करना चाहिये ?—कमल ने आशा भरी दृष्टि से लेडी डाक्टर की ओर देख कर कहा।

एक ही उपाय है !—लेडी डाक्टर ने उत्तर दिया—आपरेशन ! इन्हे शीघ्र मेरे अस्पताल में पहुँचाइये। मै प्रयत्न करूँगी। किन्तु अभी कुछ कह नहीं सकती।

× × × ×

सबेरे के दस बज रहे थे। कमल अरुणा की चारपाई के पास कुर्सी पर बैठकर उसके घाव की ओर देख रहा था।

आपरेशन बड़ी सफलता के साथ किया गया था, किन्तु फिर भी अरुणा की सुस्ती बढ़ती ही जा रही थी। नर्सें थोड़ी-थोड़ी देर के पश्चात् आती थीं, और अरुणा के स्वास्थ्य को देखकर उसकी सूचना लेडी डाक्टर को दे रही थीं। बढ़ती हुई सुस्ती का समाचार पाकर लेडी डाक्टर स्वयं दौड़ी हुई आई। उन्हें देखते ही कमल उठकर खड़ा हो गया। लेडी डाक्टर ने उसकी ओर एक दृष्टि फेंक कर कहा, 'बैठिये, बैठिये'!

लेडी डाक्टर और कमल की आँखें थोड़ी देर के लिये आपस मे जा मिलीं। दोनों कुछ सोचने लगे; मानों किसी बीती हुई घटना को स्मरण कर रहे हों। दोनों के मन किसी मंजिल पर पहुँचे या नहीं, किन्तु कुछ देर के पश्चात् लेडी डाक्टर ने अरुणा की परीक्षा करके कहा, बाबू जी मुझे अफसोस है। मैं अपने प्रयत्न में सफल न हो सकी।

अरुणा की साँसें उखड़ती जा रही थी। कमल की आँखो से टप्-टप् आँसू गिरने लगे। लेडी डाक्टर बड़ी देर तक कमल के चेहरे से ढुलकती हुई आँसू की बूँदों को देखती रही, किन्तु कुछ बोल न सकी।

[३]

दोपहर का समय था। लेडी डाक्टर अपने कमरे में पलँग पर सो कर एक पुस्तक पढ़ रही थी। नौकरानी ने किसी के आने का समाचार दिया। उन्होंने मिलने वाले कमरे मे जाकर देखा, कमल बाबू!

कमल ने उठकर अभिवादन किया। लेडी डाक्टर ने हाथ जोड़ कर उसका उत्तर देते हुये कहा, 'बैठिये, बैठिये, कहिये क्या आज्ञा है ?' साथ ही लेडी डाक्टर ने कमल के ऊपर दृष्टि भी डाली। कमल सूख कर काँटा हो गया था। आकृति-श्री उजड़ गई थी। आँखें धँसी जा रही थीं। लेडी डाक्टर को अधिक आश्चर्य हुआ। एक ही महीने में कमल में इतना परिवर्तन ! वह पुनः आश्चर्य के साथ बोल उठी, यह आपका क्या हाल है कमल बाबू ! क्या किसी भयानक बीमारी ने पकड़ ली है ?

'हाँ मिस लता !—' कमल ने दुख के स्वर में कहा— सचमुच भयानक बीमारी ने ही मुझे पकड़ ली है। ऐसी बीमारी ने पकड़ ली है, कि उसकी चिकित्सा संसार में हो ही नहीं सकती। आप जानती है मिस लता कि मनुष्य के हृदय को जब किसी ऐसे पश्चात्ताप की ठोकर लगती है, जिसमें मनुष्यता होती है, तो वह उसके लिये बड़े से बड़े रोग से भी अधिक दुखदाई प्रमाणित होती है। मेरे हृदय को भी ऐसी ही एक ठोकर लगी है। ठीक ही हुआ, जो अरुणा लुट गई। प्रकृति ने अरुणा को छीन कर मेरे हृदय में मनुष्यता की जो ठोकर मारी है, वह बिलकुल ठीक ही है मिस लता ! मैं आप से क्षमा चाहता हूँ।

लेडी डाक्टर का नाम मिस लता था। पाठक लता को अभी भूले न होंगे। वही लता, अब मिस लता थी, सुप्रसिद्ध लेडी डाक्टर। पाठक उस तस्वीर को भी न भूले होंगे, जिसे देखकर लता अपने मन में आशा बाँध रही थी। वह कमल की तस्वीर

थी। कमल ने अरुणा के साथ विवाह करके जीवन के क्षेत्र में आगे पैर बढ़ाया, और लता ने विवाह न करने का संकल्प करके मानव-सेवा का व्रत लिया। वह इसीलिये लेडी डाक्टर भी बनी थी। उसने धन भी पैदा किया, और नाम भी। उसका निज का अस्पताल था। वह अपने अस्पताल द्वारा मनुष्यों की सेवा कर अपने व्रत का पालन कर रही थी।

जिस दिन लता और कमल दोनों की आँखें एक दूसरे से मिलीं, दोनों ने एक दूसरे को पहचान लिया था। अरुणा की मृत्यु के पश्चात् ही कमल के मन में अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न हो उठे, किन्तु लता के मन में कुछ न था। उसका मन विकारों से बिलकुल साफ हो चुका था। इसीलिये जब कमल ने उस घटना की याद दिलाते हुये लता से अपने अपराध की क्षमा माँगी, तब लता ने कहा, जाने दीजिये, उस बात को कमल बाबू! संसार का यह स्वभाव ही है, कि वह सुन्दर वस्तु को अधिक प्यार करता है। देखिये, इसीलिये तो मैं भी इस सेवाव्रत को प्यार कर रही हूँ। क्योंकि मेरी दृष्टि में इससे बढ़कर सुन्दर संसार में और कुछ भी नहीं है।

किन्तु मेरे पाप का प्रायश्चित्त कैसे होगा मिस लता!— कमल ने दु:ख के साथ कहा—मैं ही आपके इस विरागी जीवन का कारण हूँ। यदि मैंने आपके साथ ......।

लता बीच ही में बोल उठी—जाने दीजिये उस बात को कमल बाबू! मैं इसे बिलकुल भूल चुकी हूँ। अब इसकी चर्चा न

कीजिये। मेरी दृष्टि में आप ने कोई पाप नहीं किया है, किन्तु यदि आप प्रायश्चित्त करना ही चाहते हैं तो मेरे भाई बन कर मेरी सेवा स्वीकार कीजिये।

कमल आँखें फाड़कर विस्मय से लता की ओर देखने लगा। उसे लता के चेहरे पर जो ज्योति दिखाई पड़ी, उससे उसके मन को यह दृढ़ विश्वास हो गया कि लता मानवी नहीं, देवी है।

सुहाग रात की कहानीयाँ

मधुर जीवन की मधुर स्मृतियाँ, स्त्री-पुरुषो के उछलते हुए हृदयो की सरस लोरियाँ, प्रेम का उफान, दिल की गुदगुदी, प्रकृति का वैचित्र्य, आनन्द का चित्र यह सब एक साथ ही।

'भाभी के पत्र', अभागे दम्पति', 'पहली भेंट' 'आपकी पत्नी' के रचयिता, सुप्रसिद्ध ग्रन्थकार, श्रीयुत व्यथितहृदय जी द्वारा लिखी हुई

(भूमिका लेखक डा० रामकुमार वर्मा)

पुस्तक मे पढ़िये। पढ़ते ही हृदय मधुर स्मृतियों से भर जायगा, और पैदा हो उठेगी दिल में गुदगुदी। आज ही आर्डर लिखिये और पाने की प्रतीक्षा कीजिये। मूल्य ३)

पुस्तक के विषय में पढ़िये। (भूमिका)

पत्र पत्रिकाओं तथा जनता द्वारा सम्मानित ग्रन्थ-रत्न पर

डा० रामकुमार वर्मा की भूमिका पढ़िये।

सुहागरात के नीलम जटित मणिमय सोपान से स्वर्ग और नर्क—केवल भावना की सफलता या विफलता के घने आवरण से विभक्त होकर—कितने समीप हैं! श्री व्यथितहृदय जी ने सुख और दुख की कुशल तूलिकाओ से प्रेम के विविध चित्र अंकित कर जीवन की चित्र- शाला में उपस्थित किए हैं। इन कहानियो में जब लेखक की कल्पना मनोविज्ञान की सूक्ष्म रेखाओं से अपना कौतूहलमय विस्तार करती है तो वह जीवन की एक सत्य घटना-सी ज्ञात होती है। इस दृष्टि से 'सुहागरात' 'लाल चूनरी' और 'पत्नी का हृदय' अत्यन्त सफल कहानियाँ है। घटनाओं की सरसता में परिहास की अनुचित तीव्रता और कहीं-कही शब्दों की अशुद्धता उपेक्षणीय है।

मैं श्री व्यथितहृदय को ऐसी आकर्षक कहानियाँ लिखने के लिए बधाई देता हूँ। वे मुझे प्रेम-शास्त्र के विशेषज्ञ ज्ञात होते हैं। मेरा विश्वास है, इन रस-संपन्न कहानियों से जनता की रुचि का परिष्कार होगा, साथ ही साथ उनका अपार हित भी 'सुहागरात' की कहानियाँ आजकल मासिक-पत्रों मे प्रकाशित होनेवाली प्रेम की कहानियों का निश्चय ही मार्ग प्रदर्शन करेंगी।

साकेत, प्रयाग
१२-३-४५

—रामकुमार वर्मा

प्रकाशक—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस।

ब्रान्च—कचौड़ी गली।